

**DDCE Utkal University**

**हिंदी (एम.ए.)**

**M.A. (Hindi)**

**Semester - III**

**PAPER - XIII**

**अनुवाद : सिद्धांत और प्रयोग**

**लेखक**

**डॉ. शंकरलाल पुरोहित**

**विषय सूची**  
**अनुवाद : सिद्धांत और प्रयोग**

- Unit - I** (क) अनुवाद परिभाषा, क्षेत्र और सीमाएँ  
(ख) अनुवाद का स्वरूप : कला अथवा विज्ञान
- Unit - II** (क) अनुवाद की प्रक्रिया और प्रविधि विश्लेषण  
(ख) अनुवाद तथा समतुल्यता का सिद्धांत
- Unit - III** (क) विविध प्रकार के अनुवाद : साहित्यिक अनुवाद- कार्यालयी अनुवाद  
(ख) अनुवाद की सार्थकता और प्रासंगिकता

**अंक विभाजन :**

तीन	आलोचनात्मक प्रश्न	$3 \times 12 = 36$
तीन	लघूत्तरी प्रश्न	$3 \times 8 = 24$
दो	अतिलघूत्तरी प्रश्न	$2 \times 5 = 10$

कुल = 70

सत्रीय कार्य = 30

---

कुल अंक 100

## युनिट -1

(क) अनुवाद परिभाषा, क्षेत्र और सीमाएँ

(ख) अनुवाद का स्वरूप : कला अथवा विज्ञान

## युनिट -I

### विषय सूची

- 1.0 भूमिका
- 1.1 अनुवाद की परिभाषा
- 1.2 अनुवाद की सीमाएँ
- 1.3 अनुवाद का क्षेत्र
- 1.4 सारांश
- 1.5 विज्ञान अथवा कला
- 1.6 सारांश
- 1.7 अभ्यास प्रश्न
- 1.8 सहायक ग्रंथ

## युनिट -1

### क) अनुवाद परिभाषा, क्षेत्र और सीमाएँ

#### 1.0 भूमिका :

अनुवाद की चर्चा करते समय आपने साहित्य और भाषा के बारे में काफी अनुभव प्राप्त कर लिया है। अब उसका प्रायोगिक रूप सामने है। हमारे सामने भाषा निर्माण - भाषा गठन की एक मजबूत नींव बन चुकी है। साहित्य का एक पक्ष इसका विस्तार है। क्षेत्रीय ही नहीं, भावात्मक रूप में भी अपनी सीमा लांघने की इच्छा होती है। अपनी, अपने क्षेत्र की, अपने देश और अपने समय की संपदा (बौद्धिक) को भाषा गत दायरे से निकाल कर वृहत्तर क्षेत्र में उसे प्रदर्शित करना अनुवाद का मुख्य लक्ष्य है।

प्राचीन भारत में गुरु शिष्य परंपरा में गुरु से सुनकर शिष्य ग्रहण करता था। यह अनुवाद का प्रारंभिक रूप है।

परंतु पश्चिम में ट्रांसलेट को परिवहन से जोड़ कर परिवहन का पर्याय बनाया। अनुवाद याने ट्रांसलेट (परिवहन) करना। अर्थात् एक भाषा में रचित सामग्री को लेकर अन्य भाषा क्षेत्र में पहुँचाना अनुवाद कहलाता था। इस व्यापक परिभाषा में अनुवाद का कार्य बहुत बड़ा हो जाता है।

#### 1.1 परिभाषा :

भर्तृहरि ने अनुवाद का अर्थ 'दोहराना' या पुनर्कथन' लिया है। अर्थात् जो बात कही जा चुकी है उसे उसी भाषा में या दूसरी भाषा में व्यक्त करना या दुहरा देना, अनुवाद है। कुछ शब्दों के हेर फेर के साथ आज सारा पश्चिमी जगत भी इसी परिभाषा के आधार पर अनुवाद कार्य को स्वीकार कर रहा है।

भारत में वैदिक भाषा के बाद जो परिवर्तन आया, वह ज्ञान फिर एक बार लोगों तक पहुँचाने हेतु उसकी टीका, अर्थ, भाषा व्याख्या आदि कार्य किया गया। संसार में यह अनुवाद का सर्वप्रथम रूप और प्रयोग है।

वही हाल पश्चिम में बाइबल को लेकर हुआ। मूल भाषा हिब्रू कालक्रम में अनुपयुक्त हो गई

तो बाइबल को प्रचलित ग्रीक, फिर अंग्रेजी में उतारना पड़ा । आज तक यह अंतरण चल रहा है । इसलिए नहीं कि यह काम अधूरा रहा या अप्रामाणिक था । वरन विद्वानों एवं बाइबिल के अध्येताओं ने सूक्ष्म से सूक्ष्मतर स्तर पर उतरकर उसको गहराई से प्रस्तुत किया । हिंदी में यह कार्य प्रमुखतः फादर कामिल बुल्के ने किया जो भारत में सर्वाधिक प्रचलित एवं आदरणीय माना जाता है । वैदिक एवं उपनिषदिक व्याख्या की लंबी परंपरा है । यास्क, शंकराचार्य आदि की लंबी परंपरा है ।

आधुनिक अनुवाद शास्त्र के पश्चिमी आलोचकों में नाइडा खूब प्रचलित हैं -

"Translating consists in to reducing one language the closest natural equivalent to the message of the source language first in meaning and secondly in style.

नाइडा ने अर्थ और शैली दोनों को ध्यान में रखने की बात कही है । मूल भाषा को लक्ष्य भाषा में अर्थ और शैली दोनों दृष्टि से समतुल्य होना चाहिए । नाइडा अनुवाद की भावात्मक दृष्टि की उपेक्षा नहीं करते \* ।

उसी प्रकार कैटफोर्ड ने कहा -

"Replacement of textual material in one language by equivalent textual material in another language."

यहाँ सिर्फ शब्दों का अंतर है । लगभग एक ही बात दोनों कहते हैं ।

न्यूमार्क टेक्सट की बजाय संदेश की चर्चा करता है । एक भाषा का संदेश दूसरी भाषा में प्रस्तुत करते हैं ।

अर्थात् तीनों विद्वानों ने कहा -अनुवाद में स्रोत भाषा (Source language ) की सामग्री को लक्ष्य भाषा (Target language) में प्रस्तुत करना है ।

अब यहाँ देखते हैं कि मूल पाठ में भाषा और विषय दोनों हैं । भाषा में उसकी शैली, शब्दों का स्तर आदि आते हैं । सामग्री में विषय वस्तु और भाव, सौन्दर्य, कलात्मक विशेषता आदि होते हैं ।

अनुवादक भाषा के सारे वैभव को देखता है और विषय की व्यापकता हृदयंगम करता है । इसे लेकर लक्ष्य भाषा में एक नये पाठ में उस मूल सामग्री को तैयार करता है । सजाता -संवारता है । यही अनुवाद कार्य है । भाषा के भाव के अलावा वह विषय को संप्रेषित करने पर पूरा ध्यान केंद्रित करता है । एक भाषा से दूसरी भाषा में समझाना यह अनुवाद का मूल लक्ष्य है । चाहे साहित्यिक हो अथवा कार्यालयीन अथवा वैज्ञानिक अनुवाद, सर्वत्र विषय ही प्रमुख होता है ।

---

\* Theory and practice of translation - Naida and Taber P. 13

दूसरे शब्दों में कहते हैं - अनुवादक अपने प्रयास में शब्दावरण भेद कर उस पाठ के सूक्ष्म भाव तक पहुँच कर अपनी भाषा में व्यक्त करता है । वह मूल के भाषागत आवरण का मोह छोड़ कर लक्ष्य में एक आवरण प्रस्तुत करता है । यहीं पर लक्ष्य में उसकी मौलिकता प्रकट होती है । उसमें सृजनात्मकता दिखती है । अब मूल छोड़ दे, अनूदित कृति की ओर गौर करें - टुकड़े-टुकड़े, शब्द, वाक्य, मुहावरे आदि, जोड़ कर बनाई गई कोई वस्तु नहीं, एक स्वयं संपूर्ण साहित्यिक कृति दिख रही है । स्वाभाविक एवं सहज सृजन लग रहा है । यही अनुवाद है ।’

## 1.2 अनुवाद की सीमाएँ :

क) आज तो अनुवाद क्षेत्र का विस्तार सीमातीत हो गया है । कला-विज्ञान ही नहीं चिंतन और जीवन का हर बिन्दु अपने क्षेत्र से निकल बाहर आने को आतुर है । वैश्वीकरण ने इस इच्छा को और भी गति प्रदान की है । विश्व अगर छोटा गाँव बन गया तो पास-पड़ोस में आना -जाना बहुत सहज भाव है । अतः इसकी व्यापकता में विस्तार आया है ।

उसी प्रकार आज वैज्ञानिक तकनीकी प्रगति के कारण उसके हाथ में अनेक औजार भी आ गये हैं । केवल शब्द ही नहीं, भावों की गहन पहुँच तक आसान हो गई । एक आयाम मशीनी अनुवाद ने दिया है इससे अनुवाद का क्षेत्र बढ़ा है । अनेक सीमाएँ टूटी हैं । साधन मिलने पर अनपहुँच क्षेत्रों और स्थानों तक अनुवाद पहुँच रहा है ।

मनुष्य दूर तक और गहराई से सोचने लगा है । अतः अनुवाद के संबंध में भी बहुत सचेतन हो गया । सतही समानार्थी अनुवाद को वह स्वीकार नहीं करता गहरे उसके भाव, विचार, लक्ष्य स्तर पर भी अनुवाद उसे संतुष्ट करे तब वह स्वीकार्य होता है ।

इस प्रकार हम जब अनुवाद की सीमा पर चर्चा करते हैं । एक ओर विस्तार दिख रहा है । दूसरी ओर संकोच हो रहा है । क्षेत्र में इसे विराट विश्व मिल रहा है । उसके स्तर को देखें तो सीमा संकोच होता जा रहा है । इन दोनों का कहीं मेल नहीं । दो अलग -अलग क्षेत्र हैं । फिर भी दोनों के साथ होने पर भी सीमा निर्धारित संभव है ।

## ए) भाषाई सीमा :

अनुवाद कार्य में स्थूल रूप में सर्वाधिक संबंध भाषा से है । अतः उसकी ज्यादातर सीमायें भाषा ही निर्धारित करती है । मुख्यतः भाषा दो तरह की (अनुवाद के संदर्भ में) होती हैं । निकटवर्ती उत्पत्ति, विषयवस्तु को लेकर, भौगोलिक दृष्टि से वह अगर आसपास के क्षेत्र की है तो उसकी सीमा

भिन्न होगी । परंतु भिन्न देश, विभिन्न काल, भिन्न जाति-धर्म से संबद्ध है तो सीमा भिन्न हो जायेगी । उदाहरण के लिए हिंदी - ओड़िया अनुवाद की वो सीमाएँ नहीं होंगी जो हिंदी -जर्मन या ओड़िया - जापानी अनुवाद की होंगी । उसी प्रकार कालगत अंतर भी अनुवाद की सीमाएँ निर्धारण करती है । समकालीन भाषा और दो -चार सौ वर्ष पुरानी भाषा से अनुवाद में जो सीमा आती हैं वह बाइबल के अनुवाद में देखी जा सकती है ।

भाषा में प्रयुक्त शब्द (जैसे बेटा, पुत्र, लड़का) ही नहीं उसके वाक्य भी सीमा तय करते हैं । कहीं विभिन्न भावोद्दीप्त वाक्य, कहीं खंडित वाक्य, तो कहीं लंबे वाक्य अनुवाद की सीमा तय करते हैं । कहीं वाक्य में कर्ता अंत में आता है, कहीं पर नकारात्मक शब्द भी अंत में (जैसे वह गया नहीं) आये तो अनुवादक को सीमा में रहना पड़ता है । उसी प्रकार शब्दों के कोशगत अर्थ की जगह भावनातिरेक में विशेष अर्थ हों तो वे अलग ही सीमा प्रस्तुत करते हैं । इनमें स्नेह, व्यंग्य, हास्य, क्रोध, प्रेम आदि विविध भावों के अधीन शब्दों के अपने अर्थ बदल जाते हैं । सृजनात्मक भाषा में बहुधा कोश से आगे विशेष अर्थ होते हैं । अतः सीमा को ध्यान में रख अनुवाद करना पड़ता है ।

## **बी) सामाजिक सांस्कृतिक सीमा :**

जब अनुवाद की दोनों भाषाओं के सामाजिक सांस्कृतिक आधार जितने दूर होंगे अनुवाद की सीमायें भी उतनी बढ़ती जायेंगी । भारतीय भाषाओं के आपसी अनुवाद में सांस्कृतिक निकटता रहने के कारण अनुवाद सहज ही कर पाते हैं । यूरोपीय क्षेत्र में ले जायें तो वहाँ के आचार-विचार, चाल-चलन बहुत भिन्न होते हैं । वहाँ की भाषा में प्रस्तुत करना बड़ी सीमा पैदा कर देता है । भारत में भी बांग्ला परंपरा और गुजराती सामाजिक व्यवस्था में भिन्नता मिलती है । पंजाब और केरल -कर्नाटक के पर्व-त्यौहारों में भिन्नता होती है । अतः अनुवाद की सीमा स्पष्ट हो जाती है ।

तमिल में कंबन की रामायण का हिंदी अनुवाद और हिन्दी की रामचरित मानस का तमिल में अनुवाद ऐसे दो उदाहरण ले सकते हैं । अथवा बलराम दास (ओड़िया) रचित दांडी रामायण का हिंदी में अनुवाद की बात कर सकते हैं । ओड़िशा में जो पहनावा है, जो खान-पान है, विवाह के समय की लौकिक -शास्त्रीय विधि-विधान हैं .... ऐसी अनेक बातें ले सकते हैं । उत्तर भारत (हिंदी भाषाई क्षेत्र) में कुछ रीति-रिवाज मिलते हैं, कुछ नहीं । कई रीति-रिवाज भी एक जैसी हैं , पर्व-त्यौहार भी एक जैसे हैं हिन्दूओं के भगवान एक हैं तो रीति-रिवाज भी एक ही होंगे । पर उनके अलग-अलग नाम दे दिये हैं । जैसे उत्तर भारत में 'तीज' है तो यहाँ ओड़िशा में 'रज' पर्व है । दोनों ही वर्षा ऋतु के आरंभ में कंवारियों के आनंदोल्लास के पर्व हैं । इनका अनुवाद बड़ी सतर्कता की मांग करता है । यहाँ कुछ

वस्तुओं का उल्लेख भर कर देने से वह अनूदित नहीं हो जाता । वस्तु, क्रिया, भाव आदि के नाम वहाँ की परंपरा में घुले मिले हैं परंतु उनको हिंदी में लिखने से पाठक तक वह संप्रेषण नहीं हो पाता । यह अनुवाद की सीमा है ।

कुछ संबोधन स्नेहाधिक्य अथवा क्रोध वश भिन्न अर्थ में प्रयुक्त होते हैं (जैसे माँ, बाप, दादा, नाना आदि) पर अनुवाद में इनका मूल आशय लेकर तदनु रूप अनुवाद अपनी विशेष सीमा प्रस्तुत करता है । इसी प्रकार 'श्रद्धा' शब्द ओड़िया में जिस भाव को, मूल्य को लेकर प्रयुक्त होता है, हिंदी में लगभग वह भाव और पुरुष नहीं रखता । ओड़िया में बड़ों की छोटों के प्रति स्नेह, अनुकंपा, सहानुभूति, अंतरंगता, भक्ति आदि को अभिव्यक्त करते समय 'श्रद्धा' शब्द का प्रयोग करते हैं । परंतु हिंदी में 'श्रद्धा' की विशेष व्याख्या आचार्य रामचन्द्र शुक्ल ने इसी शीर्षक निबंध में की है । परंतु वहाँ ऐसी कोई बड़े-छोटे की भावना, स्नेहमय, भाव धारा को सूचित करता है । यह सांस्कृतिक चलन की सूक्ष्म स्थिति होती है । इसे ध्यान में रखकर प्रयोग करना होता है ।

अनुवाद में संस्कृति का एक विशेष तत्व दूसरी में न मिलना आम बात है । तब अनुवादक प्रतिस्थापन करता है । यह बात तभी संभव है जब सांस्कृतिक रूप से दोनों निकट हैं । यहाँ पर पूर्ण समता तो संभव नहीं । आंशिक समानता को लेकर Second Best की तरह अनुवाद कार्य संपन्न करता है । इस भाषा संबंधी रुकावट के कारण वे अवधारणायें जैसी पहचानी जाती हैं । - मूल भाषा में, अनुवाद में वह रूप नहीं मिलेगा । यह अनूठापन आल्हाद, आश्चर्य प्रदान करता है, परंतु मूल को पूर्ण रूप में प्रस्तुत नहीं कर पाता । हालांकि दोनों की समानता के निश्चित मानदंड स्पष्ट नहीं हैं । इस प्रकार के अनुवादक और फिर पाठक द्वंद्व में पहुँच जाता है । अगर बहुत कठिन लगे तो अनुवादक इन अंशों को छोड़ देता है । यद्यपि यह सर्व निकृष्ट पथ है । पर अनन्योपाय हो वह इन्हें त्याग देता है । पाठक इनका आनन्द नहीं ले पाता । अपनी सीमा में ऐसे अंश बंध कर रह जाते हैं । यहाँ सामान्य पाठक का ध्यान रखते हुए सामान्य अनुवाद में ऐसे अंशों से जूझने की जरूरत नहीं होती । सांस्कृतिक आदान-प्रदान में यह प्रणाली अपनी सीमा के बावजूद, अत्यंत महत्वपूर्ण होती है ।

यहाँ अनुवाद में 'टी एल' की शैली पर विचार कर लेना उचित होगा । हिंदी रूपांतरण में हिंदी अनेक बोलियों का समूह है (वैसे तो हर चार-पांच मील पर बोली में अंतर आ जाता है) - भोजपुरी, अवधी, मैथिली, राजस्थानी, पहाड़ी, छत्तीसगढ़ी, मलावी... अनेक बोलियों का समाहार है । अनुवादक सही भाषा के चुनाव के समय इस विशाल विकल्प स्थिति में उलझ जाता है । कोई मार्गदर्शी सिद्धान्त नहीं पाता ! ऐसे में भाषा के किस बोली रूप को ग्रहण करे या फिर उर्दू आदि का सहारा ले, यह विराट विकल्पमय दृश्य उभय अनुवादक और पाठक के लिए सीमा बना देता है ।

अनुवादक संरचना में प्रदत्त सांकेतिक बिन्दु को पकड़े । यह संकेतात्मक शब्द कोश में ढूँढने से नहीं मिलता । वाक्य संरचना में यह संकेत छुपा होता है । संवेदनशील अनुवादक इसे सहज ही पहचान पाता है । यह ध्वन्यात्मक रूप अनुवाद के समय अनुवादकीय विशिष्टता की पहचान कर देता है । लेखक द्वारा प्रयुक्त भाषाशैली पकड़ कर उसमें प्रस्तुत करना विशेष सीमा रखती है ।

अनुवाद कार्य सांस्कृतिक कार्य है । यह वैज्ञानिक तकनीकी के रूप में नाप-तौल कर करना संभव नहीं । एक जीवंत कृति को अन्य भाषा -संस्कृति क्षेत्र में जीवंत कृति के रूप में प्रस्तुत करना पड़ता है । यह सबसे बड़ी चुनौती होती है । अनुवादक मूल के प्राणों से परिचित हो और लक्ष्य में जीवन्त्यास दे, यह उसकी सबसे बड़ी चुनौती है । ईट-गारे का ढांचा मकान नहीं होता, घर(Home) बनाने के लिए उसमें परिवार चाहिए । वैसे ही अनुवाद की प्राणवत्ता उसकी सीमा है, सौन्दर्य है, वैशिष्ट्य और यथार्थ है ।

### 1.3 अनुवाद का क्षेत्र :

अनुवाद का क्षेत्र बहुत विस्तृत है । यह क्रमशः विस्तृत होता जा रहा है । इसकी शुरुआत धर्म ग्रंथों के लोक भाषा में प्रस्तुत करने अनुवाद का प्रयोग हुआ था । विश्व की सभी भाषाओं में यही स्थिति थी । क्रमशः इसका विस्तार होने लगा । साहित्य के अन्य रूपों का लोक भाषा में अनुवाद के माध्यम से अंतरण किया जाने लगा । यह कार्य एक क्षेत्र, एक देश ही नहीं सारे विश्व में प्रचलित होने लगा । इस प्रकार साहित्य देश की सीमा लांघ महादेशों में फैल वैश्विक होने लगा । इस प्रकार विचार, भाव एवं चेतना के विस्तार में अनुवाद का प्रयोग क्रमशः सीमायें तोड़ने लगे ।

वेद, उपनिषद, ब्राह्मण ग्रंथों को आज हम अनुवाद के माध्यम से हृदयंगम कर रहे हैं । अन्यथा वैदिक व्याकरण तो दूर, पाणिनी तक को समझना इतना आसान नहीं है । बार-बार गीता, भागवत, महाभारत, रामायण के अनुवाद होने लगे । इससे कथानक में कवि प्रतिभा जुड़ कर नव-नूतन अर्थ और नूतन भाव विस्तार होने लगा । इस प्रकार हमारी परंपरा, हमारी संस्कृति, हमारे जीवन, हमारे प्राणों में नूतन भाव भरती रही । आज भी यह धारा प्रचलित है । इन अमर ग्रंथों का अनुवाद जारी है । पश्चिम के एक 'बाइबल' के अनुवाद में हजारों संस्थायें एवं हजारों लोग लगे हैं । इस प्रकार अनुवाद का क्षेत्र आज विस्तार पा कर बहुत बड़ा हो चुका है । 'ईसाइत' के इतने विविध रूप मत, और भेद मिल रहे हैं । पर मूल ईश्वर चेतना एक है । उसका आधार बाइबल अनुवाद के आधार पर विभिन्न दृष्टिकोण देता है । कुरान की मूल भाषा हर मुसलमान के लिए पवित्र है । परंतु उसका संदेश उसे अपनी भाषा में अनुवाद करने से ही समझ आता है । कुरान की आयतों का अर्थ उसके जीवन का अंश तभी बनता है जब वह उसे समझ कर उसके अनुसार आचरण करता है । यही अनुवाद का क्षेत्र आ जाता है ।

ज्ञान-विज्ञान के क्षेत्र में अनुवाद का एक भिन्न क्षेत्र है। यहाँ कला-संस्कृति की सूचना और विज्ञान का विस्तार होता है। एक भाषा में उपलब्ध ज्ञान-विज्ञान को अनुवाद से ही विस्तार मिल रहा है। विश्व के किसी कोने में उद्भावना हो, अनुवाद से हर क्षेत्र में वह शीघ्र फैल जाती है। एक भाषा इतना बड़ा बोझ वहन नहीं कर सकती, वह चाहे अंग्रेजी हो या चीनी। इसका माध्यम रेडियो, टीवी, सिनेमा, इंटरनेट, मोबाइल और अन्य इलेक्ट्रॉनिक मीडिया हो सकता है। सब में अनुवाद किसी न किसी रूप में अनिवार्य आवश्यकता बन चुका है। इसी प्रकार ज्ञान-विज्ञान एवं अन्य सूचना प्रसार के माध्यम पत्र-पत्रिकाएँ भी अनुवाद बिना पंगु बन जाती हैं। द्रुतगति से अनुवाद कर सूचना या संवाद विश्व में विभिन्न माध्यमों से प्रसारित, प्रचारित और विज्ञापित हो जाता है। अर्थात् विज्ञान का क्षेत्र भी अनुवाद के लिए अपरिहार्य बन गया है। सूचना प्रदाता क्षेत्र से सूचना या संवाद या विज्ञापन लेकर अनुवाद के माध्यम से विश्व के विविध क्षेत्रों तक पहुँचा देता है। दिनों का काम चंद सेकेंडों में हो रहा है। हजारों का काम कुछ हाथों से हो जाता है।

अंतर्प्रान्तीय स्तर पर अनुवाद युगों से हो रहा है। अंतः राष्ट्रीय अनुवाद बहुत पुराना नहीं है। अब विधानसभा, पार्लमेंट, यू.एन. आदि विभिन्न बैठकों में अनुवाद के बिना काम नहीं चल सकता। अब आवाज उठ रही है सवा सौ करोड़ भारतीयों का स्वर यू.एन. में हिंदी में सुना जायगा। अर्थात् भारतीय प्रतिनिधि के हिंदी स्वर को यू.एन. में लेकर अन्य स्रोत स्वीकृत भाषाओं में अनुवाद के माध्यम से वैश्विक बनाया जा सकेगा। संभावना उज्वल हो रही है। कुछ क्षेत्र हिंदी के महत्व के बारे में द्विमत रखें। परंतु अनुवाद की उपयोगिता से इनकार नहीं कर सकते। अतः उससे अपना उद्देश्य सिद्ध करते हैं।

इसी प्रकार व्यापार, शिक्षा, ट्रेवल, मेनेजमेंट, आईटी, राजनीति .... आदि जीवन के क्षेत्रों में अनुवाद अपरिहार्य हो चुका है। अंतर्राष्ट्रीय संबंधों की नींव अनुवाद पर टिकती है। विश्व को ग्लोबल बनाने में अनुवाद की भूमिका सबसे अधिक है। विविधताओं को लांघने और समता के दर्शन कराने या विस्तार करने में अनुवाद का महत्व बहुत अधिक रहा है। विश्व में संचार माध्यमों की गति दिन पर दिन बढ़ती जा रही है। परिवहन के साधन सस्ते, विश्वसनीय और द्रुत हो रहे हैं। इस प्रकार आपसी समझ-बूझ, परिचय, स्नेह - प्रेम, पारस्परिक सौहार्द्र की दुनिया में वृद्धि के लिए अनुवाद का विशाल क्षेत्र है। पहले विवाह कर लड़की ससुराल जाती तो एडजस्ट होने में समय लगता, अब नहीं। पर पढ़ने, रिसर्च करने, विशेषज्ञता प्राप्त करने के लिए नये इलाके में जाकर अनुवाद के माध्यम से भाषा एवं परंपरा जान कर तेजी से अपने लक्ष्य तक पहुँच जाता है। आज यह जरूरत हर तरफ महसूस हो रही है। एक व्यक्ति दस भाषाएँ नहीं सीख सकता। पर उनमें लिखी अपनी जरूरी पुस्तकें अनुवाद के माध्यम से प्राप्त कर सकता है। सिनेमा रातों रात अनूदित होकर विश्व भर में प्रसारित हो जाता है।

आज विश्व में मशीन को लाकर अनुवाद का क्षेत्र और विस्तृत किया जा रहा है । व्याकरणिक जटिलताओं, भाषागत यूनिक फिचर के कारण एक क्षेत्र का ज्ञान अथवा अनुभव दूसरे क्षेत्र में जाने में रुकावट आ रही है । परंतु धीरे-धीरे सब बिन्दु तलाश कर इन अड़चनों को दूर किया जा रहा है । ज्ञान जैसा सरल विषय भाषाई लीकों में उलझ कर रोका नहीं जा सकता । सारे विश्व के लिए अनुवादनीय सामग्री प्रस्तुतिकरण चल रहा है । इससे वैश्वीकरण सिर्फ बाजारीकरण का क्षेत्र भर नहीं रहेगा । इसमें संस्कृति, कला, साहित्य, परंपरा, इतिहास, भूगोल, राजनीति ... सारे क्षेत्रों को वैश्विक धरातल पर लिया जा सकेगा । इसमें गति मशीन भर देगी । मशीनी अनुवाद में भी व्यापक सफलता मिल सकेगी । हम आज कविता, कहानी, उपन्यास, नाटक के अनुवाद को बड़ी सफलता मान बैठते हैं । जीवन के अगणित अन्य क्षेत्र अनुवाद के चरागाह हैं । वहाँ की सामग्री अपने-अपने क्षेत्र से निकल विश्व दरबार में पहुँचने लगेगी तब अनुभव होगा कि हम सब मनुष्य हैं । मानवता -विश्व बंधुत्व और सर्वोपरि भारत का हजारों वर्ष का संकल्प 'कृण्वेहो विश्वमार्यम्' अथवा 'जगत उद्धार हेउ' ( ओड़िया कवि भीम भोई) साकार हो सकेगा ।

#### 1.4 सारांश :

इस प्रकार इस इकाई में हमने 'अनुवाद' की संकल्पना पर विचार किया । 'अनुवाद' का विभिन्न युगों में विभिन्न अर्थों में प्रयोग हुआ है । नये युग के विद्वानों, विशेष कर पाश्चात्य मनीषियों ने इस पर क्या चिंतन किया, इस पर विवेचन किया ।

अनुवाद से बहुत आशायें की जाती हैं । परंतु हम भूल जाते हैं कि यह कोई 'सर्वोषधि' नहीं है । इसकी अपनी सीमायें हैं । सांस्कृतिक, राजनैतिक, साहित्यिक आदि विभिन्न क्षेत्रों में अंतरण या समतुल्य भाव -विचार सूचना को प्रस्तुत करना संभव नहीं होता । अतः उस पर बहुत अधिक निर्भर करने में सतर्क रहना होगा । जैसे हमेशा अनुवाद निर्भर जाति क्रमशः पंगु होने लगती है, मौलिक रचना, सृजन और दृष्टि शक्ति दुर्बल होने लगती है । इन बातों पर परोक्ष रूप में प्रकाश डालना जरूरी है । ज्ञान-विज्ञान को अनुवाद कर भंडार भरना एक दृष्टि से ठीक है, परंतु उसी पर निर्भर करने से मौलिकता पर (ओरिजिन) पर प्रभाव पड़ने की संभावना से इनकार नहीं कर सकते ।

अनुवाद का क्षेत्र हमारी आशाओं और अपेक्षाओं से भी अधिक विस्तृत है । जीवन के विराट फलक को स्पष्ट करने और रंग भरने में अनुवाद की भूमिका अत्यंत महत्वपूर्ण है । वैश्वीकरण को केवल बाजारीकरण नहीं, वास्तव में मानवीय एकीकरण के क्षेत्र में अनुवाद की भूमिका पर प्रकाश डाला गया है । ज्ञान-विज्ञान -कला संस्कृति के सभी क्षेत्रों में अनुवाद की जरूरत हो रही है । भारत का वैश्वीकरण का अपना दृष्टिकोण इसीके माध्यम से सफल होगा, इस पर भी विचार किया गया है ।

## ख) अनुवाद का स्वरूप

### 1.5 विज्ञान अथवा कला :

अनुवाद कार्य सारी दुनिया में होता रहा है । अतः यह प्रश्न वैश्विक है कि यह कार्य विज्ञान है अथवा कला ? यहाँ विज्ञान और कला के संबंध में एक धारणा स्पष्ट कर लें ।

किसी कार्य में विज्ञान की तरह वैज्ञानिक शैली का अनुसरण करते हैं तो वह विज्ञान है । इसमें प्रयोगशाला में या अन्य विधि से परिणामों की प्रत्यक्ष जांच संभव होनी चाहिए । इसमें भावों का प्रभाव अथवा भावुकता प्रधान शैली न हो, वरन तथ्य प्रधान शैली या वस्तुनिष्ठता को महत्व दिया जाये । कर्ता गौण हो जाता है । कार्य के अनुसार गति होती है । अतः इसमें किसी शैली के वेरियेशन की कोई जगह नहीं रहती ।  $2+2 = 4$  की तरह अनुवाद का रास्ता सीधा होगा । कहीं विकल्प का संशय नहीं । अथवा सौन्दर्यशील चेतना के कारण अलंकरण प्रधान न हो कर विषयानुसार निर्णय, निष्पक्ष सत्य का कथन होगा । अभिभूत होने जैसी पक्षधरता को स्थान नहीं होगा । विकल्पों या वैज्ञानिक रूप में नियंत्रण होता है । मशीन प्रयोग कर उसका समाधान होता है । 'ग्रे ओटिंगर' मानते हैं कि अनुवाद एक वैज्ञानिक प्रक्रिया है । मशीन प्रयोग कर सफल अनुवाद की दिशा में बहुत प्रगति की है । यहाँ मानव मस्तिष्क की बजाय मशीन ब्रेन स्थानापन्न भाषा प्रस्तुत करने की दिशा में प्रयत्नशील है । उसमें पूरी सफलता न मिलना उसे अवैज्ञानिक नहीं कह सकते । आज नहीं तो कल, भाषाई घटकों की पहचान कर एक-दूसरी भाषा में लाना ले जाना वैसे ही हो जायगा जैसे अब बोला हुआ पाठ टाइप होने लगा है । अथवा एक विधि में टाइप सर्वत्र सम रूप में उपलब्ध है (जैसे युनीकोड में प्रयास जारी है) विश्व विज्ञान में प्रगति कर अनुवाद प्रक्रिया की सारी जटिलता सुलझाने में लगा है ।

कुछ हैं जो अनुवाद कर्म में कलात्मक सूक्ष्मताओं के कारण उसे 'कला' कहते हैं । यहाँ सर्जक कलाकार की तरह अनुवादक दूसरे भाषा क्षेत्र में नया रूप देता है । यह बात ज्यादातर कविता, कहानी, नाटक, उपन्यास आदि के अनुवाद पर लागू होती है । इन सृजनात्मक कृतियों के अनुवाद में विषय, भाषा, शैली, अनुगूँज आदि भाषा से इतर बातें उसे महत्व रखती हैं । उनके अनुवाद में अनुवादक की सृजन क्षमता ही उपयोगी होगी । शब्द दर शब्द या वाक्य दर वाक्य समान सांचों का अनुवाद संभव नहीं होगा । अगर कर भी लें तो वह नई प्राणवंत रचना नहीं बन पाती । इसीलिए 'राबर्ट फ्रास्ट' का यह कथन महत्वपूर्ण है - साहित्यिक कृति की अपनी एक विशेषता होती है । अनुवाद में उसे बनाये रख पाना सहज नहीं रह पाता । बहुत सारा अंश भाषा में लिपटा होने के कारण अनानूदित रह जाता है । यह छूटा

अंश ही कविता है। गोपीनाथ महांति के 'परजा' (उड़िया) उपन्यास में परजा जीवन के पर्व-त्यौहार, वन-पर्वत जीवन की अनुभूतियाँ और व्यवहृत सामग्री बहुत कुछ अंग्रेजी में अनूदित नहीं हो पाई। आलोचकों का मानना है कि वह अंश भी उपन्यास के प्राणों का अंश है। अतः वहाँ कला के स्तर पर अनुवाद आंशिक संभव हुआ है। वैज्ञानिक रूप में उसे छान कर काफी अंश अंग्रेजी में प्रस्तुत कर भाषाई कलात्मकता से उसकी भरपाई कर दी गई। इसमें वह कृति पाठक-आलोचक के लिए ग्रहणीय बन गई। इस प्रकार यह अंग्रेजी की जीवंत कृति कलात्मक मानों पर भी खरी उतरी है। पाठक को छूटे हुए पर कोई अफसोस नहीं रहा। अनुवादक ने कला सापेक्ष पुनःसृजन का कार्य खूब चतुराई से किया है। इससे संप्रेषण के मुद्दे पर वह ग्रंथ अत्यंत महत्वपूर्ण बन गया। पाठ की संरचना और बनावट को अनुवाद के एकदम भिन्न क्षेत्र होने के कारण एक नयी आधारभूत संरचना और बुनावट प्रस्तुत करने की क्षमता का परिचय दिया है। शैली का मुद्दा भी सहजता से सुलझाया। इस प्रकार अनुवाद कला के दायरे में सही उतरता है। अगर कहीं कुछ छूटा है तो अनुवाद के पाठक का उससे कभी साबका नहीं पड़ेगा और वह जो प्राप्त हुआ उसीके आनन्द में संतुष्ट है। उसे मूल की वह पुनः संरचित कृति मूल का आनन्द प्रदान करती है। यहाँ उसे किसी पुरातत्वविद या वनवासी अध्येता की तरह अध्ययन नहीं करना। उनके संप्रेष्य अंश से रूबरू होकर वह संतुष्ट हो जाता है। यही अनुवाद कला का क्षेत्र है। यहाँ पर 'छूटना या जोड़ना' पाप नहीं माना जाता। यह 'ललित कला' के दायरे में आकर कितना अभिव्यक्त, कितना संकेतित ऐसे प्रतिशत का हिसाब नहीं रह जाता। यहाँ मूल एकक और अनूदित कृति एकक रूप में सामने रहती है। दोनों की अपनी स्वायत्तता, स्वायंभुवता अनुवादक के अपने आधार से बनती है। जैसे मूल कलाकार सर्जन करता है, जीवनानुभवों को एक कृति का रूप देता है, उसी प्रकार अनुवादक इन अनुभवों का आत्मीय बन कर इन्हें अपना बनाकर फिर सृजन रूप देता है। इन्हीं में भाषा, भाव, छंद, शैली, संकेत अर्थछवि आदि उभरती गढ़ी जाती है। उसकी सृजन प्रतिभा के बल पर यह नई कृति प्रस्तुत होती है। यहीं उसकी कला की परख होती है।

यहाँ एक शब्द "Flowering" के अनुवाद को लें। कामिल बुल्के इसे 'फूल आना' लिखते हैं।

हजारी प्रसाद द्विवेदी इसे 'पुष्पन' कहते हैं। परंतु अज्ञेय ने 'कुसुमन' कहा।

तीनों सही हैं। पर अज्ञेय में इसका पुनर्सृजन है।

लेकिन आलोचक दोनों मतों से संतुष्ट नहीं हैं। न अनुवाद पूरी तरह वैज्ञानिक हो सकता है और न यह कलात्मकता के बिना संभव है। ज्ञान-विज्ञान का विषय हो अथवा सूचना सामग्री, सब को भाषा में ले कर ही अनुवाद किया जाता है। कुछ विषय वैज्ञानिक साधना से भाव निर्धारित होने एवं अर्थ भी निर्धारित (तकनीकी शब्दावली की तरह ..) होने के कारण रूपांतरण संभव है फिर भी कहीं कहीं कलागत सूक्ष्मता को जोड़े बिना सही स्तर प्राप्त नहीं होगा। उसी प्रकार सृजनात्मक कृति में वैज्ञानिक

विकोडीकरण बिना यह सही रूप में अनूदित नहीं होगी । विषय कहीं का कहीं चला जायेगा । यहाँ मशीन जितनी दक्षता लागू न हो परंतु अनुवादक को आटोनोमी देकर अराजक स्थिति भी नहीं बना सकते । कुछ निर्धारित सीमाओं, नियमों में काम करना होगा । यहाँ पर अनुवादक को 'शिल्प' की ओर ले जाते हैं । इसमें उपयोगी कला(Functional Art) कहते हैं । यह ललित कला मात्र नहीं । वरन बेहतर रूप में 'चारु कला' कहते हैं । इसकी शिक्षा दी जाती है । इसका अनुवादक अभ्यास भी करता है । तब अपना स्तर बना पाता है । इसी दौरान अनुवादक का सौन्दर्य बोध विकसित होता जाता है । जैसे तुलसीदास कहते हैं - 'बालकपन में राम कथा सुनी । तब मैं रहेउ अचेत' और फिर बड़े हो जाने, अध्ययन, शिक्षण और अभ्यास के बाद 'रामचरित मानस' रची जाती है ।

इस प्रकार कह सकते हैं - अनुवाद संश्लिष्ट और जटिल प्रक्रिया है । उसके विभिन्न चरणों पर अनुवादक विभिन्न भूमिका निभाता है । साहित्यकार की सर्जनात्मक प्रतिभा, वैज्ञानिक की तर्कणा शक्ति और उपयोगी कला में पायी जाने वाली शिल्पगत दक्षता आदि सभी गुणों की अपेक्षा करते हैं । (अनुवाद विज्ञान की भूमिका : के. के. गोस्वामी) परंतु विषय भिन्न होने पर इन तीनों भिन्न-भिन्न क्षमताओं का प्रयोग भिन्न रूप में होता है । फिट जिराल्ड और हरिबाबू कंसल के कार्यों में अंतर इस बात को स्पष्ट कर देता है । अर्थात् अनुवाद वह सामग्री के अनुसार भिन्न -भिन्न क्षेत्रों में (कला - विज्ञान-शिल्प) भिन्न आकार धारण करती है ।

## 1.6 सारांश :

यहाँ संक्षेप में हमने 'अनुवाद' की परिभाषा पर विचार किया है । इसमें विभिन्न विद्वानों एवं कृतियों का उदाहरण देकर स्पष्ट किया । 'कला-विज्ञान और शिल्प' वाली बात लेकर अनुवाद कार्य पर चर्चा की गई है । ललित साहित्य का अनुवाद और वैज्ञानिक तकनीकी सामग्री के अनुवाद में भिन्नता पर चर्चा की गई है । मशीनी अनुवाद के लाभ और सीमाओं पर संकेत किया गया है ।

## 1.7 अभ्यास प्रश्न

### निम्न के दीर्घ उत्तर दीजिए :

1. अनुवाद की परिभाषा दीजिए ।
2. पश्चिमी चिंतकों की अनुवाद संबंधी धारणा पर प्रकाश डालिए ।
3. अनुवाद का क्षेत्र परिभाषित कीजिए ।
4. अनुवाद कार्य की सीमाओं पर विचार कीजिए ।

### निम्न के संक्षिप्त उत्तर दीजिए :

- i. अनुवाद की संस्कृति सीमा पर विचार डालिए ।
- ii) क्या अनुवाद कार्य वैज्ञानिक कार्य है ?
- iii) राजनीति के क्षेत्र में अनुवाद का क्या महत्व है ?
- iv) भारत में प्राचीन अनुवाद परंपरा का परिचय दीजिए ।

## 1.8 सहायक ग्रंथ :

1. साहित्यानुवाद - संवाद और संवेदना : आरसू, वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली
2. अनुवाद विज्ञान की भूमिका : के.के. गोस्वामी - राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली
3. अनुवाद सिद्धांत और प्रयोग : जी. गोपीनाथन, लोकभारती, इलाहाबाद
4. Art of translation - R. Raghunath. - Bharatiya Anuvad parished, New Delhi
5. Art of translation - Theodare Savary - Cape, London

## युनिट-II

(क) अनुवाद प्रक्रिया और प्रविधि विश्लेषण

(ख) अनुवाद तथा समतुल्यता का सिद्धांत

## युनिट -II

### विषय सूची

- 2.1 भूमिका
- 2.2 अनुवाद प्रक्रिया का अर्थ
- 2.3 अनुवाद के चरण
- 2.4 अनुवाद - पुनरीक्षण/विश्लेषण
- 2.5 पुनरीक्षण के सोपान
- 2.6 अनुवाद तथा समतुल्यता का सिद्धांत
- 2.7 ओड़िशा में अनुवाद की परंपरा
- 2.8 सारांश
- 2.9 अभ्यास प्रश्न
- 2.10 सहायक ग्रंथ

## युनिट-II

### क) अनुवाद प्रक्रिया और प्रविधि

#### 2.1 भूमिका :

अनुवाद किसी भी कार्य की तरह एक निश्चित विधि-विधान पूर्वक किया जाता है। हालांकि हमारे देश में आज भी अनुवाद सिखाने की विधिवत कोई संतोषजनक व्यवस्था नहीं है। बस, कुछ अंश कविता/ कहानी/नाटक/ उपन्यास उठा कर कलम चलाने बैठ जाते हैं। इसी प्रकार 'मारग सोई जाकर मन भावा' की तरह सब अपने-अपने ढंग से एक-एक मार्ग खोल देते हैं। तभी इतनी अव्यवस्था फैली हुई है। दक्षिण के अनुवादों को उत्तर वाले कोई महत्व नहीं देते। पूर्व के अनुवाद पश्चिम में पढ़े नहीं जाते। पश्चिम के अनुवाद चर्चित होकर भी सीमा में बंधे रह जाते हैं। आपसी सांस्कृतिक अपरिचय जैसे का तैसा बना रह जाता है। अनूदित पाठ एक और अनस्वीकार्य पाठ बन कर रह जाता है। सारा श्रम व्यर्थ हो जाता है। अतः अनुवाद कर्म हेतु दक्ष और समर्पित अनुवादक न मिलें, तो भी भाषा एवं संस्कृति से परिचित, व्याकरण के स्थूल नियमों से परिचित लोग तो हों! मूल के वाच्यार्थ के साथ उसका व्याख्यार्थ और लक्ष्यार्थ नहीं आता है तो वह कैसा अनुवाद है?

हमारे देश के सृजनशील व्यक्ति अनुवाद करते थे। वे औसत से कहीं अधिक मेधाशाली, ज्ञानवान और समर्पित हुआ करते थे। उनका अनुवाद आम अनुवाद नहीं कहलाता। वे मौलिक कृतिकार के पद पर बड़े आदर से विराजमान हैं। यह स्थिति मध्यकालीन साहित्य के बहुत बड़े अंश पर सर्वत्र लागू होती है। परंतु आज वह स्थिति नहीं। उन्हें अनुवाद के संबंध में मूलभूत प्रक्रिया (प्रोसेस) और प्रविधि की जानकारी होना जरूरी हो गया है। आज पश्चिम में लंबी और गहन प्रशिक्षण पद्धति बन चुकी है। अनुवाद करने नहीं, सिखाने और विश्लेषण के बड़े-बड़े संस्थान बन चुके हैं। विश्वविद्यालयों में 'अनुवाद विभाग' में पंद्रह-बीस प्रोफेसर नियमित रूप से नियुक्त हैं, काम कर रहे हैं। हमारे देश से मैनेजमेंट, विज्ञान, व्यवसाय, तकनीक सीखने तो हजारों छात्र वहाँ जाते हैं, लेकिन अनुवाद सीखने प्रायतः कोई नहीं जाता। जब कि हमारे यहाँ अनुवाद सीखने की प्रवृत्ति ही नहीं मिलती। हर व्यक्ति अपने को अपनी भाषा का जानकार और अन्य भाषा की सामग्री अनुवाद करने में समर्थ समझता है। उसे कोई यह नहीं बता पाता कि अनुवाद में भाषा व्यवहार की सामान्य क्रिया नहीं है। कविता-कहानी लिखने की तरह ही यह भी सृजनात्मक प्रक्रिया है। यह सृजनशक्ति ही अनुवाद को सार्थक रूप प्रदान

करती है। अतः आइए इस अध्याय में अनुवाद करने के विभिन्न सोपानों पर चर्चा करें। इस पर वैज्ञानिक ढंग से चिंतन-मनन, विश्लेषण-विवेचन पश्चिम में ज्यादा हुआ है। अतः पश्चिमी विद्वानों के विचारों को यहाँ ज्यादा महत्व दिया गया है।

## 2.2 अनुवाद प्रक्रिया का अर्थ :

अनुवाद कार्य में दो भाषाओं का उपयोग होता है। एक समझते और हृदयंगम करते हैं। दूसरी में समझाते और हृदयंगम कराते हैं। इस सारे कार्य का नाम है 'अनुवाद प्रक्रिया'। इसमें दुहरी प्रणाली होती है। मूल भाषा की संरचना देखें - इसमें मुख्यतः ध्वनि, स्वर, अक्षर, शब्द, पदबंध और वाक्य होते हैं। इनको व्यवस्थित करने की एक निश्चित नियमावली, व्यवस्था होती है। इसे उस भाषा का व्याकरण कहा जाता है। उसी तरह जिसमें अनुवाद करना होता है, उसकी भी अपनी इकाइयाँ होती हैं और फिर उनका आपसी घटकों को आमने-सामने लाकर प्रयोग करना पड़ता है। जैसे अंग्रेजी के वाक्यों में एसवीडी (कर्ता, क्रिया, कर्म) के रूप में या फिर कर्ता का विस्तार, क्रिया के विस्तार के रूप में कर्म का विस्तार और फिर वाक्य मिलता है।

अनुवाद के समय दूसरी भाषा में यह वाक्य क्रम बदल कर प्रयोग करता है - कर्ता का विस्तार, कर्म का विस्तार, अंत में क्रिया का विस्तार करता है। यह अनुवाद की प्रक्रिया का आधार है। इसके विभिन्न चरणों पर सुविधा के रूप में चर्चा कर रहे हैं।

## 2.3 अनुवाद के चरण :

**यूजेन नाइडा** ने अनुवाद के तीन चरण बताये हैं।

- 1) विश्लेषण
- 2) अंतरण
- 3) पुनर्गठन

### \* विश्लेषण

#### अ) भाषा के स्तर :

अनुवादक सर्वप्रथम मूल पाठ हाथ में लेता है। इस समय वह पाठ के शब्द-वाक्य-पद के स्तर पर अर्थ ग्रहण करता है। जटिल और अनेकार्थी वाक्यों की पहचान कर लेता है। उसकी व्याकरणिक संरचना पर विचार कर लेता है। मूल का एक रूप वह पहचान लेता है। यह कार्य भाषा के स्तर पर होता

है । इसमें हमारी सहायता भाषा की बनावट करती है । मूल पाठ का संदेश इसीमें निहित होता है । इनमें लाक्षणिक और व्यंजनात्मक अर्थ भी होते हैं । शब्दों के स्तर पर उनके अनेकार्थी रूप पर ध्यान दिया जाता है । इसी प्रकार शब्द के परस्पर साथ आने पर नया अर्थ आता है । परंतु समस्त (समास किये गए) शब्द का कोशगत अर्थ कभी तो सुरक्षित मिल जाता है, कभी उस अभिव्यक्ति के संदर्भ में छुपा होता है । यह विशेष अर्थ की सूचना देता है । इसी प्रकार मुहावरों के अर्थ केवल परसर्ग लगा कर बदल जाते हैं ।

जैसे : (किसी की) आँख लगना - नींद आना  
 (किसी से) आँख लगाना - प्रेम करना  
 (किसी पर ) आँख लगना - ललचा जाना ।

इस प्रकार भाषिक अभिव्यक्ति के संकेतार्थ का कोशगत अर्थ के अलावा व्यंजना में है । इसे समझ कर सही संदेश प्राप्त किया जाता है । यहाँ वाक्य की अर्थ व्यवस्था और अर्थ क्षेत्र पर ध्यान रखना होता है ।

**आ) विषयवस्तु के स्तर पर :** अनुवादक भाषा के माध्यम से उस विषय को ग्रहण करता है जो उसमें निहित है, और संकेतित है अथवा द्योतित है । अगर वह वैज्ञानिक या तकनीकी विषय है तो उसे समझने लायक ज्ञान जरूरी है । विशेषज्ञ चाहे न हो, उसे समझने लायक आधारभूत ज्ञान तो होना चाहिए ।

जैसे (Transfer) शब्द का

- 1) हस्तांतरण
- 2) स्थानान्तरण

दोनों संदर्भ देख कर अनुवाद करना होता है । उसी प्रकार (Communication) शब्द का बहु अर्थी प्रयोग देखें

- 1) पत्राचार (कार्यालय में)
- 2) संचार (प्रेषण के अर्थ में )
- 3) संप्रेषण (साहित्य के अर्थ में )

इसकी सही विषयवस्तु ग्रहण करने हेतु अनुवादक को संदर्भ और परिस्थिति पर विचार करना होता है । शब्द अपने आपमें बहुत सीमित अर्थ देता है । जब प्रयोग करते हैं तो उसका क्षेत्र, वह परिस्थिति, वे पात्र और वह वातावरण सबमें अपना अर्थ विस्तार कर लेता है । कोश तो एक दृष्टि देता

है। व्यवहार तो असीम होता है। वहाँ उसकी पहुँच बहुत होती है। शब्द दूसरे शब्दों के साथ संबंध पद के माध्यम से नयी छाया में आ जाता है। एक अभिनव फील्ड प्रस्तुत कर देता है। उसे विभिन्न पगडंडियों में से एक चुननी होती है। जो उसे राजमार्ग से अनायास जा मिलती है। यह अंतर वाक्य संबंध भाषा की ताकत बनता है। संस्कृति और परंपरा का वाहक होता है। इसमें बहुज्ञता काम आती है। उसमें सही चुनाव कर अर्थ बिठाना अत्यंत महत्वपूर्ण होता है। यह भाषा की ताकत दिखाता है।

वनवासी जीवन, ग्राम जीवन और शहरी जीवन में विषय एवं वस्तु की विविधता बढ़ती जाती है। मशीनीकरण से इसका स्तर और भी ऊँचा हो जाता है। इनके आपसी संयोग से अनुवाद का दायरा खूब विस्तृत हो जाता है। अनुवादक की पहुँच वहाँ होनी चाहिए। उसी तरह 'रस' शब्द का साहित्य में जो अर्थ है, रसायन शास्त्र में भिन्न है। इसी प्रकार केमिकल से भिन्न अर्थ औषधिशास्त्र में आयुर्वेद के पंडित बताते हैं (जैसे बसंत कुसुमाकर रस)। अर्थात् विषय के अर्थ ग्रहण में उसके संदर्भ को ध्यान में रखना निहायत जरूरी है।

इस शब्द की समझ से मूल भाषा और लक्ष्य भाषा का संबंध स्पष्ट होता है।

इस प्रकार **बाथगेट** (Studies of Translation model 1980) ने अलग पुस्तक लिखने से पूर्व **न्यूमार्क** के साथ (Theory and craft of translation in 1978) लिख कर अनुवाद को आधुनिक भाव ग्रहण करने की दृष्टि से भाषा सिद्धांत रखा। शब्द प्रतिशब्द अर्थात् (Inter successive translation) की बात कही। ज्यादातर अनुवादक इस पद्धति को अपनाते हैं। शब्दों के अनुवाद लेते हुए आगे बढ़ते हैं। पर इसमें अनुवादक पूरी तरह पाठोत्तरण नहीं कर पाता। शब्दों की बजाय अनुवादक पूरे पाठ को अपने मानस में ग्रहण करता है। इससे वह पाठ के साथ मानसिक तौर पर जुड़ता है। शब्दों से प्राप्त ज्ञान आगे बढ़ कर उस भाषा में निहित भाव, शैली, प्राण आदि के साथ समझ बनाता है। इस परिचय, आत्मीयता से एक तरह का समन्वय (बाथगेट के शब्दों में) स्थापित होता है।

**डॉ. भोलानाथ तिवारी** ने हिंदी में इसे 'पाठ पठन' कहा है। पाठक मूल का पठन (अध्ययन Study) करता है। डा. रवीन्द्रनाथ श्रीवास्तव और डा. कृष्ण कुमार गोस्वामी इस अध्ययन को एक और दिशा में आगे बढ़ाते हैं। भाषा को प्रतीक मान कर उनका प्रतीकों के स्तर पर विश्लेषण होता है। यह प्रतीक ही संप्रेषण का आधार होता है। उसे समझ कर अनुवादक अपने को प्रस्तुत करता है। समृद्ध करता है। वह विषय को अनुभव करता है। उसकी गहराई तक पहुँचता है। अनुवाद प्रक्रिया का यही प्रथम चरण होता है। इस प्रस्तुति करण में अनुवादक मूल की भाषा, भाव, छंद, संकेत आदि विविध आधारों को ग्रहण करता है। अतः यह अत्यंत महत्वपूर्ण क्षेत्र है। अनुवादक द्विवागीश के रूप में यहाँ प्रथम वाक् याने मूल को धारण कर लेता है। मूल पाठ का वह अच्छा और सार्थक पाठक बनता है। अपनी पूरी समझ, ज्ञान, कौशल के साथ मूल का पाठ करता है। यही उसका एक

तरह से प्रस्तुति पर्व है । अनुभव संपन्न और नौसिखिये अनुवाद का यहाँ बड़ा अंतर होता है । केवल भाषा ज्ञान से काम नहीं चलता । उसके मर्म तक पहुँचने की क्षमता भी होनी चाहिए । पाठ केवल शब्दों में ही नहीं रहता He must be able to read between the lines यह अनुवादक की पाठ ग्रहण की क्षमता का निदर्शन होता है । सृजनशील साहित्य में भाषा का Deeper structure अनुवादक के लिए बड़ी चुनौती होती है । Surface structure में वह पाठ के एक स्तर तक आसानी से पहुँच जाता है । पर सृजन के गहन तक प्रवेश की क्षमता ही अनुवादक की असल परीक्षा घड़ी होती है । उसे 'काव्य भाषा' और 'सामान्य भाषा' के अंतर को समझते हुए पाठ की काव्य भाषा (साहित्यिक विशेष स्तर) तक पहुँच कर उसे ग्रहण करना होता है । अनुवाद प्रक्रिया का यह प्रथम पर्याय है । इसे सही ढंग से पार किये बिना भ्रमित होने की संभावना होती है ।

### ✽ भाषान्तर/अंतरण :

इस सारे प्रस्तुतिकरण अथवा प्रस्तुति पर्व से अनुवादक नये क्षेत्र में छलांग लगाने को प्रस्तुत हो जाता है । (जैसे पृथ्वी से चन्द्रमा पर उतरने के लिए एस्ट्रोनॉट तैयार होता है, उस तरह नहीं) पुरी में श्रीजगन्नाथ गुंडिचा (अपनी मौसी के यहाँ जाने) यात्रा करने से पूर्व 108 घड़ों से स्नान करते हैं । उसी समय उन्हें जुकाम हो जाता है तो उनकी बीमारी या स्वास्थ्य के लिए एकांतवास कर शारीरिक स्वस्थता प्राप्त करते हैं । बाह्य रूप में बड़दांड पर रथों का निर्माण होता है । पहंडी बिजे कर उन्हें रथों में ले जाकर गुंडिचा मंदिर में बनी अंतरबेदी पर बिठाया जाता है । वैसे इस अंतरबेदी पर विराजमान महाप्रभु के दर्शन का विशेष माहात्म्य है । अतः भक्त बड़ी संख्या में आतुरता से खड़े हैं । उनका सारा नित्यनैमित्तिक कर्म चलता है । उधर रसोबड़ा सक्रिय हो उठा है । वैसे ही अभड़ा(अन्न -व्यंजन आदि) की प्रस्तुति प्रक्रिया शुरू हो चुकी है । चारों ओर आनन्द ही आनन्द भरा है । यह अभड़ा तो श्रीमंदिर की विशेषता है ! पर आड़प मंडप में जब विराजमान हो चुके हैं, तो यहाँ भी वही व्यवस्था लागू हो चुकी है । दाल, भात, बेसर, खटा, महुँर, भांति-भांति की सब्जियाँ, सब कुछ वैसा ही ठाठ ! बही आडंबर !

प्रातः बाल भोग से लेकर अर्ध रात्रि में पौढ़ तक में कोई कमी नहीं रहेगी । वैसे ही वेश परिवर्तन और वेश धारण होगा । फिर नाना शृंगार होंगे । वस्त्राभूषणों की छटा विशेष ! दूर-दूर से आये भक्त दर्शन कर धन्य हो जाते हैं । पहले दिन से सात दिन तक तो नित्य नैमित्तिक दर्शन की परंपरा चलती है । बीच में एक दिन लक्ष्मी चुपचाप आकर मान में भर लौट चुकी हैं । महाबाहु तक सारी खबर पहुँच चुकी है । पता ही नहीं चला कि सात दिन बीत गए । आज आठवां दिन है । महावेदी पर । सायंकाल आरती का विशेष आयोजन है । आड़प मंडप में अद्भुत साजसज्जा हुई है । कतार में भक्त दर्शन हेतु खड़े हैं ।

अतः द्वार खुलने में विलम्ब हो रहा है । सांध्यवेश में सजे महाप्रभु के सांध्य दर्शनों की बात अनोखी है । वास्तव में आड़प मंडप में आज सांध्य वेश और संध्या आरती दर्शन हेतु बहुत बड़ी संख्या में दर्शन उपस्थित हैं । भक्तों का उत्साह कोई सीमा नहीं मानता । आज महाप्रभु के अधरों पर बंकिम मुस्कान भुवनमोहिनी है । महाप्रभु राजराजेश्वर वेश धारण कर चुके हैं । भक्त भी भीड़ में उझक-उझक कर निहार रहे हैं । बच्चों को कंधों पर बिठा दर्शन करा रहे हैं । देर रात गए तक भारी भीड़ लगी रही है । कोई पास के गांव से बैलगाड़ी पर बैठ कर आया है । बूढ़ी माँ को लाया है - सांवरे ठाकुर के आड़प मंडप में दर्शन करा ले । अंतिम दिनों में सांध्य दर्शन का सौभाग्य कोई मामूली बात है । यह 'साहाण मेला' (जन साधारण के लिए दर्शन) है । भक्त और भगवान के बीच की सारी दूरी मिट चुकी है ! कोई व्यवधान इस घड़ी नहीं रह जाता । प्रत्यक्ष प्रभु के भक्त दर्शन करता है, वार्तालाप चलता है ! आखिर परिवार के सदस्य हैं । कोई व्यवधान इस घड़ी नहीं चलता । इससे न बतियायें तो फिर कब ऐसा अवसर मिलेगा । सारे काम छोड़ कर पधारे हैं जगत के नाथ - जगन्नाथ - भक्त प्रवर - सांवरे सरकार ! उन्हें प्रेम से कहो, रूठ कर कहो । गुस्से में गाली - गलौज कर कहो । सब एक समान है । प्रभु की लीला ऐसी ही है । यह आड़प मंडप की लीला, दरबार लीला इतनी अंतरंग है - इसे जो देखे, जो जाने सो ही समझे । इसमें विधि निषेध से ज्यादा बढ़ कर सन्मुख खड़े होना है । दोनों हाथ ऊपर कर पूर्ण समर्पण भाव भक्त व्यक्त कर दें । बस, इतने में सब विधि-विधान संपन्न हुये समझ लें । यहाँ शास्त्र, वेद, पुराण, मंत्र, तंत्र कथा, भजन, जणाण सब पीछे छूट जाते हैं । ये सांवरे ठाकुर तो नयनों से ही कानों का काम लेते हैं । नयन में ही हृदय समाया है । इस विशाल नयनों (चकानयन, चकाडोला) में ही इनका सर्वांग एकीभूत है । अतः आँखें खोल चकानयन के दर्शन कर लो । जी भरता ही नहीं । बार-बार आँखें उन नेत्रों में बंध जाती हैं । बाष्पाकुल नेत्र कुछ नहीं देख पाते तो भक्त झुंझला जाता है । ये आँसू कहाँ छुपे थे ? ये भी दर्शन करने उतर आते हैं । भक्त बार-बार पोंछता है - हथेली उलटा कर - पर आँसू विकल हो फिर उतर आते हैं - सांवरे संगी --- इन के दरसन बिन कोई कैसे छुपा रहे !!! तन - मन , आत्मा सब धन्य हो रहे हैं । कैसी अनूठी है यह सांध्य बेला । इस दर्शन में सब कुछ की प्राप्ति भरी है । चतुर्वर्ग तो बहुत कम पड़ जाता है । इन दर्शन में - आड़प मंडप के इस सांध्य दर्शन में भक्त एक परिपूर्णता प्राप्त कर लेता है ! मध्यरात्रि तक तांता लगा रहता है । तब बड़ी मुश्किल से विराम दिया जाता है । भक्त, जो नहीं पहुँच पाये, दर्शन नहीं कर पाते, कतार में पीछे रह जाते, वे लौट रहे हैं । निराशा नहीं है । संभावना बनी है । कोई बात नहीं महाप्रभु के विश्राम का वक्त हो गया । कल प्रातः तो इस बेदी को त्याग बाहर आ रहे हैं । प्रातः रथारूढ़ होंगे ही । तब अबाध दर्शन करेंगे । रथ रजू को छू कर, खींच कर, रथ चालन के भागी बनेंगे ! जीवन धन्य हो जायेगा । कोई विमन भाव नहीं । यहाँ महाप्रभु की विद्यमानता में कोई क्यों हताश होगा ? सब आनन्द मन से लौट रहे हैं । आज वैसा दिन अविस्मरणीय है ।

सनमुख होहि जीव मोहि जबहिं ।

जनम कोटि अघ नासहिं तबहिं ॥

इस विग्रह की ओर उन्मुख होना ही बहुत है -

प्रातः वही चहल-पहल शुरू । यह बाहुड़ा (प्रत्यागमन) यात्रा का दिन । द्वार खुलते ही द्वारपाल पूजा, सूर्यपूजा, सूर्य होम आदि प्रातःकालीन पूजार्चन संपन्न कर लेते हैं । वेश परिवर्तन किया जाता है ताकि यात्रा के लिए उन्हें सुसज्जित कर लें । तब भोग लगता है । फिर शुरू होती है पहंडी ! एक-एक कर उसी क्रम में विग्रहों को लाकर रथारूढ़ करते हैं जिस क्रम में श्रीमंदिर के सामने रथारूढ़ किया था । अब गजपति महाराज छेरा पहरा(रथों पर सोना की मूठ की झाड़ू लगाना) कर रथों को यात्रा हेतु प्रस्तुत कर देते हैं । वही तीनों रथों पर जाकर पूजा -अर्चना की जाती है । काठ के घोड़े(प्रतीक स्वरूप) जोते जाते हैं । वही लंबी रस्सियाँ संयुक्त कर दी जाती हैं । महाप्रभु के दर्शनार्थ बड़दांड पर लोकारण्य हो जाता है । आज पहले वाला विलंब नहीं होता । घोंस यात्रा वाले दिन से आज की यात्रा में कुछ अंतर आ जाता है । श्रीमंदिर, रत्नसिंहासन और सर्वोपरि महालक्ष्मी का स्मरण हो आता है । कितने दिन हुए इन सब को छोड़े ! यहाँ की लीला में कुछ स्मरण ही न रहा !

बाहुड़ा यात्रा के दिन हर काम में एक अजब-सी फुर्ती दिख रही है । बड़दांड पर उपस्थित भक्तगण रस्सियों को लेकर चल पड़ते हैं । पूरा प्रयास होता है कि संध्या तक तीनों रथ सिंह द्वार तक पहुँच जायें । इसी जल्दबाजी में रथों के पहिये कुछ इधर उधर हो जाते हैं । डाहुक रथ पर से पताका हिला संकेत कर रथ रोकता है । फिर दिशा सीधी की जाती है । वही वाद्यों का निनाद, महाप्रभु का जैकारा .... और तीनों रथ एक के पीछे एक कर दक्षिणाभिमुखी चल पड़ते हैं । एक के बाद एक, अगर सब यथारीति चला तो, सूर्यास्त से पूर्व तीनों रथ आ कर श्रीमंदिर के सामने खड़े हो जाते हैं । अगर विलंब हो ही गया, तो फिर अगले दिन प्रातः तीनों को सिंहद्वार के सामने पहुँचना पड़ता है । सब का अपना-अपना दायित्व । आकर्षण है । कुल मिला कर दयितापति के तत्वावधान में इस विराट यात्रा को सुचारू रूप से संपन्न करना है ।

इतनी लंबी यात्रा ! फिर ठाकुरों को रथों से अवतारण कर श्रीमंदिर में पहंडी की जल्दी नहीं रहती । भक्तों के निमित्त बड़ दांड पर सोनावेश होना जरूरी है । श्रीमंदिर में तो साल में चार बार स्वर्णवेश में सज्जित होते हैं । परंतु वहाँ सब उनके दर्शन नहीं कर सकते । ये सब दइतापति करते हैं ।

आपने देखा श्रीमंदिर से स्वयं ठाकुरजी को अपने सिंहासन से अवतरण करा श्रीगुंडिचा मंदिर ले जाते हैं । श्रीमहाप्रभु में कोई परिवर्तन नहीं । उनके दर्शन, उनकी दैनंदिन विधि-विधान सब यथावत चलता है । बस, वहाँ पूजा ब्राह्मण करते हैं, यहाँ अपने पर वह दायित्व दैयतापति पर न्यस्त रहता है ।

यह श्रीमंदिर से श्रीगुंडिचा की यात्रा ही मूल भाषा से लक्ष्य भाषा की यात्रा है । इसमें विषय वस्तु प्राणवत है । इसमें मूल विग्रह को दूसरे मंदिर में यथावत स्थापित करना है । मगर ठाकुरजी बड़े हठीले होते हैं । सांवरे सरकार कभी सहज आज जाते हैं । कभी कहीं अड़ जाते हैं । टस से मस नहीं होते । अनुवादक जानता है कि मूल विषय को ब्रह्म की तरह कितने आदर, स्नेह -ममता के साथ लाना होता है । तब वहाँ पूजा-अर्चन का आनन्द .. उत्साह और उत्सव प्राप्त होता है । अनुवादक अनुवाद करते समय इसी प्रक्रिया से गुजरता है और फिर वही आनन्द -उत्साह और उत्सव प्राप्त करता है । यह यात्रा अनुवादक के लिए किसी पवित्र यात्रा (स्थयात्रा) की तरह होती है । वह उसमें पूरी तरह आस्था -विश्वास और समर्पण के साथ डूब जाता है । मूल लेखक के साथ-साथ पूरी यात्रा संपन्न करता है ।

इसी प्रकार हम भाषान्तरण के विराट क्षेत्र में उभय भाषा और संस्कृति की दृष्टि से जाते हैं । पहले भाषा में क्या करते हैं इस पर विचार कर लें ।

1) पूर्ण पुनर्विन्यास - एक भाषा में कही गई बात उसके भाव को दूसरी भाषा में व्यक्त करने होते हैं । वही सूचना देनी होती है ।

ध्यान में रहे कि मूल की अभिव्यंजना और शैली को महत्व दिया जाय ( जैसे व्यंग्यात्मक है, उपदेशात्मक है, विनयात्मक अभिव्यक्ति है ) यहाँ पर 'मूल पाठ' की बात ध्यान में रहती है । यह नये पाठक के लिए बोधगम्य हो और अधिक से अधिक संप्रेषणीय हो । इसलिए कहीं कुछ छोड़ता है तो कुछ जोड़ता है । प्रसिद्ध अनुवाद विशेषज्ञ जुलियाना हाउस इसे परोक्ष 'अनुवाद' की श्रेणी में रखती है । इसमें जो पाठ बनकर आता है वह अनुवाद जैसा लगेगा ही नहीं । मौलिक का आनन्द देता है ।

इस कार्य में तीन विकल्प होते हैं :

ए) मूल के शब्द जैसे के तैसे लिपि बदल कर रख दिये जाते हैं -

School -	स्कूल
Office -	आफिस
Sir -	सर

बी) शब्दों का विश्लेषण करके अनुवाद -

Cardiologist -	हृदयरोग विशेषज्ञ
Post Mortem	शव व्यवच्छेद करना

सी) मूल के विशेष पद के लिए अनुवाद भाषा में उपयुक्त अर्थ के साथवाला शब्द चुनना -

Lion's share -	प्रमुख भाग
Head on Collission -	आमने सामने टकराना

डी) मूल के लिए नया शब्द गढ़ लेना -

प्रचलित धारणा हेतु एकदम नया शब्द देना पड़ता है ।

बसंतरा घट (बैसाख के महीने में तुलसी के पौधे के ऊपर एक छोटी-सी हांडी में छेद कर झुला दिया जाता है जिससे धीरे-धीरे तुलसी के पौधे में पानी गिरता रहे । ) ऐसा कई क्षेत्रों में होता है । कहीं नहीं । तो इसका अनुवादक क्या करे ? इसलिए ऐसे शब्दों को ज्यों का त्यों रख दिया जाता है । यह कह कर 'बासंती घट' रखा गया ।

Radio - आकाशवाणी

Television - दूरदर्शन

ई) मूल को सहज करने कुछ और शब्द या शब्दांश जोड़ देना -

Functional- प्रयोजन मूलक

बड़दांड - जगन्नाथ मंदिर के सामने 'विशाल पथ'

एफ) कभी-कभी मूल भाषा की रूढ़ अभिव्यक्ति का अनुवाद संभव न हो, किसी प्रकार संप्रेषणीय उक्ति प्रस्तुत संभव न हो तो उसे छोड़ दिया जाता है ।

इस प्रकार हम देखते हैं अनुवाद कर्म में सबसे जटिल काम इसी स्तर पर होता है । कुछ लोग कहते हैं यहाँ अनुवादक **परकाया प्रवेश** करता है । परंतु 'मूल की कृति को आत्मा में प्रवेश कराना' ज्यादा उचित होगा । अनुवादक कहीं नहीं जाता, वह तो मूल को आत्मस्थ करता है और फिर उसका पुनरुत्पादन कर देता है । इस कार्य में अनुवादक अपने भाषा ज्ञान का सहारा लेता है । संरचना प्रस्तुति में बड़ा कौशल प्रदर्शन करता है । यह मानसिक रूप में काफी श्रम की मांग करता है । अनुवाद की अधिकांश भाषानुगत, संस्कृतिगत, परंपरागत, प्रचलन गत समस्यायें इसी स्तर पर उसके पांवों में रुकावट बनती हैं । परंतु अनुवादक विभिन्न उपाय अवलंबन कर रास्ता निकाल उनसे साहस के साथ जूझता है । हर कृति अपने ढंग की अनूठी चुनौती लेकर आती है । अनुवादक का अनुभव उस वक्त सामना करने में साहस प्रदान करता है । इस नये क्षेत्र में वह अपने कौशल-बल से आगे बढ़ता है । नई अभिव्यक्ति में वह नई रचना प्रस्तुत करता है । यहाँ शब्दों का प्रयोग ही नहीं पूरी भाषा प्रयोग के स्तर पर उसे कार्य करना होता है । अनुवादक पूरे भाषा क्षेत्र में पैतरा मार कर नये के लिए प्रस्तुत होता है ।

“बस, इसे लेकर उसकी गिरस्ती, सारा कूड़ा-करकट । मगर यह कूड़ा उसे भला लगता है । छान तले नाक-कान रौंधता घना-घना धूआँ उसे भला लगता है । क्योंकि सब उसका है, इसलिए ।”\*

---

\*'परजा' का यह छोटा-सा अंश है, पृ. -10

यह बहुत छोटा-सा अंश महांती के महान उपन्यास 'परजा' के प्रारंभ में है ।

हिन्दी की वाक्य रचना है । परंतु यह किसी रूप में खड़ी बोली नहीं कह सकते । क्या जरूरत पड़ी ऐसी एक गैरस्टाण्डर्ड हिंदी डालने की ? अनुवादक ने पहचाना है कि 'परजा' ओड़िशा के घोर पहाड़ जंगलों की निवासी जाति है । उनकी भाषा, परंपरा, जीवन शैली ओड़िया जाति की 'मानक' नहीं कही जा सकती । इसके हिंदी रूपांतरण में गोपीनाथ जी ने शैली को और स्तर को सम्मान देते हुए गिरस्ती (गृहस्थी), घना(गाढ़ा), जैसे शब्द रखा । 'भला लगता' ऐसे क्रिया प्रयोग उनकी निरीहता और सरलता दर्शाने वाले पद हैं । सब उसकी संज्ञा कर्म क्रिया परंपरा से हट कर है । आज स्वयं विश्लेषण करने पर लगता है गोपीनाथ महांती ने उन अक्षर तक न जानने वाले समुदाय, को ओड़िया भाषा में प्रस्तुत करने का पहला प्रयास, किस प्रकार नयी ओड़िया में रचा । उसी को ध्यान में रख कर अनुवाद में इस 1943 ई. की हिंदी शैली में वह जीवन प्रस्तुत कर रहा है, मानो उसे बहुत कच्ची हिंदी आती है । यह हिंदी कच्ची नहीं, परंतु हिंदी बोलियों का एक मिलाजुला रूप है जो इसके आजादी के ठीक पहले व्यवहृत होता था । परंतु इसमें संप्रेषण के स्तर पर कोई दिक्कत आज भी नहीं आती । अतः ऐसे भाषा स्वरूप को सहर्ष स्वीकृति दी गई है । अनुवाद के इस स्तर पर भाषा प्रयोग दर्शाने के लिए यह उदाहरण दिया गया है । हालांकि ग्रंथ में इसे पुनर्गठित किया गया है । इसकी चर्चा अगले अंश में की जा रही है । दोनों क्रियाओं का समेकित रूप इस फाइनल अनुवाद में देखा जा सकता है । अब अगले चरण में यह विचार किया जा रहा है ।

साहित्य अकादेमी ने आगे चल कर पुरस्कृत साहित्य का अनुवाद करने की महती योजना बनाई । परंतु इसमें बहुत कुछ श्रेष्ठ साहित्य अनूदित होने से रह जाता है । इसी परंपरा में एक महान उपन्यास 'छः माण आठ गुण्ठ' (फकीरमोहन सेनापति) आता है । सच कहा जाये तो इसकी रचना प्रेमचंद से भी काफी पहले हो चुकी थी । लेकिन भाषागत बंधन के कारण वह केवल ओड़िशा भर में रह गया । अतः साहित्य अकादेमी का ध्यान ऐसी रचनाओं की ओर शुरू में ही चला गया । उस वक्त अनुवादकों की बहुत बड़ी कमी थी । जो आज तक चली आई है । अतः चाहते हुए भी वह पूरी नहीं हो पाई । 'छः माण आठ गुण्ठ' किस परिस्थिति में युगजित नवलपुरी को अनुवाद हेतु दी गई यह कहना बड़ा कठिन हो रहा है । यहाँ तक कि लोग नवलपुरी जी के जीवन के बारे में भी कुछ नहीं बता पा रहे हैं । उनकी भाषा ज्ञान संबंधी पृष्ठभूमि जान पाना कठिन है । इतना तो स्पष्ट है कि वे मुक्तिबोध के काफी अर्से तक सहयोगी रहे । वे जब ओड़िशा आये तो अनसूया प्रसाद पाठक से घनिष्ठता बनी । उसी में ओड़िया अनुवाद का गहरा मित्र सहयोगी के रूप में उपलब्ध हो गया । इसके अलावा यह भी कठिन है कि नवलपुरीजी ने ओड़िया किन परिस्थितियों में, कहाँ और किस स्तर तक सीखी । इनके कार्य का पुनःनिरीक्षण भी हुआ या नहीं, यह कहना कठिन है । परंतु उपन्यास के नाम को बदल जिस हिन्दी

मुहावरे में डाला, उससे इतना तो स्पष्ट है कि नवलपुरीजी की हिन्दी पर पकड़ बहुत अच्छी थी। यही कारण है कि आगे चलकर गोपीनाथ महांति के कालजयी उपन्यास 'अमृत संतान' के अनुवाद का प्रश्न आया तो अकादेमी ने उन्हें ही अनुबंधित किया। परंतु अब नवलपुरीजी ने उपन्यास का नाम नहीं बदला। लेकिन 'अमृत संतान' और 'छः बीघा जमीन' दोनों में धरती पुत्रों की कहानी है। ये भारतीय साहित्य में ग्राम जीवन के दो महाकाव्य ही हैं। भले ही रचना विधान औपन्यासिक शैली में हैं, और नवलपुरी जी को ऐसी कविताओं की गहरी पकड़ थी। उन्होंने दोनों उपन्यासों में जीवन की गहराई तक जाकर हिन्दी का सही मुहावरा चुना। दुर्भाग्य से आलोचकों की नजर नहीं पड़ी। लम्बे अरसे तक दोनों छपकर गोदामों में पड़े रहे। नामवरजी, विद्यानिवास मिश्र जी जैसे हिन्दी के मूर्धन्य विद्वानों ने इनका नोटिस लिया। तब जाकर इन दोनों को भारतीय साहित्य में कुछ स्थान मिला। दोनों कृतियाँ सलीके से पुनः मुद्रित होकर प्रकाश में आयी।

### \* पुनर्गठन :

अब तक हमने ज्यादातर विश्लेषण पाठ के पठन का किया। फिर पाठ के विश्लेषण का आयोजन किया। तब जाकर उसे भाषा के क्षेत्र से निकाल लक्ष्य भाषा में कौशल पूर्वक अवतरण किया। यहाँ भाषा का रूप चुना गया। मुहावरों -कहावतों की खोज की गई। एवं नई भाषा का चोगा 'इस्त्री कर' अथवा सिर्फ 'धो-साफ' कर अंतरण किया गया। इसमें हो सकता है कहीं खुरदरापन आ जाये। लक्ष्य भाषा का स्वभाव न पकड़ा हो। यह 'अनफिल्टर्ड स्टेज' में वहाँ मूल की कई बातें आ जाती हैं, उन पर अनुवादक की नजर रहती है। तब उसे तीसरे चरण में कुछ काम की जरूरत पड़ती है। विद्वानों ने इसे अनुवाद की विभिन्न स्तरों पर पुनर्व्यवस्था माना है।

यहाँ पहले 'व्याकरणिक पुनर्व्यवस्था - देख लें' ओड़िया में (Negative) अथवा नकारात्मक शब्द अंत में आता है। जैसे-

‘से गला नाहिं’

मुं ए काम करि पारिबि नाहिं

मना करिबि नाहि ।

ऐते दिन केहि बंचिब नाहिं ।

से एते राशि मंजुर करिबारे सक्षम नुहें ।

ऊपर के वाक्यों में पांच भिन्न -भिन्न प्रकार की नकारात्मक स्थितियाँ हैं। हिंदी व्याकरण

व्यवस्था में इन्हें क्रिया से पूर्व रखना होगा । अनुवाद के बाद यह पुनर्गठन अत्यावश्यक है । अतः इनका हिंदी रूप है :

वह नहीं गया ।  
मैं यह काम नहीं कर सकूंगा ।  
इनकार नहीं करूंगा ।  
इतने दिन कोई नहीं जीता  
वह इतनी राशि मंजूर नहीं कर सकता ।

वाक्य के पुनर्गठन की प्रक्रिया में लंबे और जटिल वाक्य को संक्षिप्त करना तो बहुत जरूरी होता है । अंग्रेजी में चार -पांच पंक्ति का वाक्य लिखना आम बात है । उसका हिंदी करते समय अंत से उठाकर शुरू में लाना पड़ता है और पूरी तरह पुनर्गठन करते हुए उसके एकाधिक वाक्य प्रस्तुत करने पड़ते हैं । ओड़िया के 'माटी मटाल' उपन्यास का पहला वाक्य ही बीस लाइन का पूरा पैराग्राफ एक वाक्य है उसके आठ पैराग्राफ और लगभग चालीस वाक्य विभिन्न आकार के बनाने पड़े हैं । इनमें गोपीनाथी महाकाव्यात्मक शैली तो नहीं रह सकी । वरन छोटे-छोटे वाक्यों में उस लय को पुनर्गठित कर उसे पुनः एक नई तान-भाव के साथ दिया गया है । परंतु न्यूनतम, संशोधन और परिवर्तन से भी अनुवाद संभव है । यहाँ 'ये पक्षी जिसका व्याकरण' में संकलित सारलादास की जगन्नाथ वंदना का एक अंश उद्धृत कर रहे हैं -

जय नीलाचल नाथ अगति तारण ।  
जय रमापति प्रभु मान उद्धारण ।  
हे कमला कर मुख पांडव रक्षक  
सो मुख दर्शन से पाप न रहे अंतिम ।  
बड़े देवल में विराजते बज्रस्नेही  
उड़ा रहे हैं पताका पतितपावनी ।  
मैं पतित मेरी विनती सुनने में अक्षम,  
क्वा हूँ प्रभु अजामिल से भी अधम ।  
जिसे तार दिया कटाक्ष मात्र में प्रभु  
वैसे ही दृष्टि करें मुझ पर हे प्रभु ॥ ( ये पक्षी जिसका व्याकरण, पृ. 19)

यह अंश लेखक और प्रभु के बीच सीधा संवाद है । इसमें भाषा का वह आंतरिक अनगढ़,

अधूरापन और अकाव्य रूप मिल रहा है । सारलादास की पंक्तियाँ गायक के लिए बहुत कुछ संभवनाएँ छोड़ देती हैं । हिंदी में इतनी न हो तो भी गायक के लिए कुछ स्कोप बचा रहता है । इसे शब्द गिनकर पूरा नहीं कर सकते । अतः अनुवाद में उसे अधूरा पर बेमेल लगता है । वह गायक के लिए बचा है । वह अपने सुर-तान, गायकी से पाटता है । तब सारलादास को हिंदी में काव्यरूप में पढ़ा जा सकता है । इस संकलन में लगभग चालीस भजन, जणाण, आरती, निवेदन आदि कविताएँ हैं । इनका रचनाकाल पांच सदियों तक व्याप्त है । अतः इनके अनुवाद में छंद, यतिपात, भावाभिव्यंजना और शब्द संयोजन आदि अनेक बातें अनुवाद में रूकावट डालती हैं । ऐसे में सब छंद, अलंकार भाषा प्रभाव बदला है । उनका निवेदन अक्षुण्ण रहे इस पर विशेष ध्यान रहा । भाषा से बढ़ कर भावशबलता का रूपांतरण कर रहे हैं । भाषा का अनुवाद कर नहीं सकते । भाव तो भाषा रूपी वाहन पर सवार हो कर चलता है । यहाँ हिंदी पर आरोहण कर उसका पुनर्गठन करते हुए इतना सफर तय किया गया है । ये कविताएँ अपने-अपने युग का आत्मनिवेदन हैं । महाप्रभु के आगे विभिन्न भाव लेकर निवेदन कर रही हैं । अतः हिंदी की धारा में अनूठा अटपटा या अनहोना रूप नहीं है । बहुत सहज भाव से कुछ आगे पीछे कर प्रस्तुत कर रहे हैं । अनुवाद का पुनर्गठन भाग इन कविताओं को हिंदी के लिए पठनीय बना रहा है । कोशिश रही है कि मूल का अर्थ और अभिप्राय दोनों सीधे, प्रत्यक्ष और सहज भाव से व्यंजित हो रहे हैं । मूल भाषा में भजन, जणाण, प्रार्थना .... वही अर्थ ग्रहण हो रहा है । पंक्तियों का अनुवाद यह निवेदन -आवेदन में समर्थ है । समतुल्य के विकल्पों की जरूरत ज्यादा नहीं पड़ती । पाठक इन्हें बुद्धि से नहीं, हृदय से ग्रहण करता है । सीधे हृदय का संपर्क करती हैं ।

परंतु दूसरी ओर फकीर मोहन सेनापति की भाषा एकदम भिन्न है । वे कथानकों में हास्य-व्यंग्य पैदा करने के लिए तीक्ष्ण गुण वाले टेढ़े शब्द प्रयोग करते हैं । अतः अनूठा प्रयोग किये गए हैं । अनुवादक उनके आशय को ले कर हिंदी पुनर्गठन कर कैसे प्रस्तुत करता है, एक छोटा-सा उदाहरण दे रहे हैं -

“प्याज खा लेने के प्रायश्चित्त के रूप में श्याम ने तो ब्राह्मण भोजन कराया, पर मंगराज के घर की और चंपा को हाट भेज कर जो प्याज मंगाती हैं, उसका क्या होता है ? बातों के चक्कर में पड़कर हम यह मान गए कि चंपा प्याज मोल ले आती है । पर इतने से क्या होता है ? मोल तो लिया पर खाने का कौन-सा प्रमाण है ?” पलांड गुंजन चैव’ को खाना ही तो मना किया है मनु ने कि और कुछ ? मोल लेने से ही कोई पतित हो जाता है । इसका विधान कहाँ है शास्त्र में ? भद्र घरों की महिलाओं के दोषादोष की आलोचना करने वाले निंदकों की बातों का उत्तर देने को हम रत्ती भर भी तैयार नहीं हैं ।” (छै बीघा जमीन -फकीर मोहन सेनापति -अनुवादक - युगजीत नवलपुरी - सन् 1959)

भाषा का हिंदी में एकदम शुद्ध रूप है । परंतु फकीर मोहन की व्यंग्यात्मकता को भी नवलपुरी ने

सुन्दर ढंग से बरकरार रखा । इस अंश के अंतिम वाक्य में व्यंजित हो रहा है । इसका एक और स्पष्ट उदाहरण यहाँ देना समीचीन लग रहा है । अगले अंशों में व्यंग्य को किस प्रकार भाषा पुनर्गठित अंतर में तीखे भाव भर रहे हैं -

“दोपहर को मंगराज चालान हुए । हाथों में हथकड़ी थी । चौकीदार और बरकंदाज घेरे चल रहे थे । बीच में मंगराज सिर पर अंगोछा डाले मुँह नीचा किये चल रहे थे । गांव के लोग यात्रा में निकली काली के जुलूस की तरह देख रहे थे । आगे -आगे दारोगा था, पीछे-पीछे मुंशी । मंगराज की इस दुर्दशा को देखकर गांव का कोई आदमी व्याकुल हुआ था कि नहीं, यह ठीक -ठीक बताने में हम नितांत असमर्थ हैं ।” (छै बीघा जमीन - फकीर मोहन सेनापति -अनु. युगजीत नवलपुरी)

यह अंश मंगराज के पतन का प्रारंभ सूचित कर रहा है । सेनापति का दृष्टिकोण यहाँ पर नवलपुरी ने हिंदी सिंटेक्स के लिहाज से पुनर्गठित कर सारा व्यंग्य, आक्रोश, संवेदना, सहानुभूति सबको सुरक्षित रखा है । यह महत्व की बात है । अनुवादक का यह गुण विशेष बता देता है । वरना महान कृति के साथ न्याय नहीं हो पाता । महान कृति में संरचना के स्तर पर भी ये बातें अंतः बाह्य होती हैं । उन सबको अनुवादक चुनौती की तरह लेकर सुरक्षित रखता है । नयी संरचना में स्थापित कर देता है । तभी वह अनुवाद में भी महानता के गुण प्रस्तुत कर सकती है । अन्यथा अनुवाद सतही हो कर कृति उपेक्षणीय बन जाती है ।

अब तक व्याकरणिक पुनर्गठन करते रहे । यहाँ भाषा के रूप, आकार, सौन्दर्य, वैशिष्ट्य आदि को लेकर चर्चा एवं उदाहरण देते रहे । थोड़ा -सा उस कृति के अंतरतम में भी झाँके । यह पक्ष भाषा से हट कर भाव, विषयवस्तु अथवा अंतरात्मा से जुड़ा है । हिंदी -ओड़िया में इसे बहुत दूर का नहीं मानते । ओड़िया-गुजराती में दूरी ज्यादा है । उसी तरह हिंदी अंग्रेजी से भी हिंदी -हिब्रू या हिंदी -फ्रेंच में है । यहाँ संस्कृति पक्ष का अंतर संशय पैदा करता है । ‘बंगाल में बच्चे खेलते हैं, मछली पकड़ने की गंध में उछलते हैं’ अब इसे गुजराती में क्या कहें ? वहाँ के पाठक को मछली की गंध से उबकाई होने लगती है । पुनर्गठन की छूट देंगे तो वहाँ लड्डू बनने और उसकी महक की बात में उछलने का प्रसंग पुनर्गठित करेगा । यह उसके अंतःकरण में, अंतरात्मा में रह कर पुनर्गठित करता है । सब इस दृष्टि से सहमत नहीं शब्दांश अनुवाद में मछली का मछली चलेगा ।

परंतु ‘मां रे ए पटकु आ’ यहाँ ओड़िया में बेटी को स्नेहवश ‘मां’ कहा । आगे बेटे को ‘बापा’ भाई को ‘नना’ आदि संबोधन करते हैं । यह संबोधन शैली हिंदी अनुवाद में सतर्कता के साथ ली जाती है । इसका कोश के साथ संबंध नहीं । शैली और आंतरिक अभिव्यक्ति मुख्य है । अतः हिंदी अनुवादक इन सब संबोधनों को सही परिप्रेक्ष्य में रख कर पुनर्गठित करता है ।

‘तुम’ शब्द का प्रयोग उभय ‘तुम’ और ‘आप’ के लिए कर सकते हैं । परंतु हिंदी में आदर के

लिए 'आप' होगा, कभी 'तुम' नहीं हो सकता। वैसे ही 'श्रद्धा' शब्द अनुजों के लिए प्रयुक्त होगा हिंदी अनुवाद में ऐसा अंतर नहीं होता। 'श्रद्धा' बड़े-छोटे सब के लिए प्रयुक्त होती है। यहाँ पर उचित एवं संगत देखकर पुनर्गठन करने में ही अनुवादक की सचेतनता स्पष्ट होती है। वरना सारा प्रयत्न बेढंगा और बेतरतीब हो जायेगा। अनुवादक का उद्देश्य कभी सफल नहीं हो सकेगा।

इसी घटक में यह करना समीचीन है कि अनूदित अंश को सजाना संवारना होता है। उसे सहज और नैसर्गिक रूप प्रदान किया जाता है। अनुवादक को अब मूल का क्षेत्र छोड़ कर अनूदित भाषा-भाव के जगत में स्थापित करना है। यहीं पर आगा-पीछा सजाना-संवारना, जोड़ना, तोड़ना, सुलझाना पड़ता है। यहाँ पर कला पक्ष विशेष होता है। अनुवादक का कला कारीगरी का वैशिष्ट्य उभर कर कृति को विशेष स्थान प्रदान करता है। यहाँ के नियम बहुत कुछ अनुवादक अपने नीति नियमानुसार ही निर्धारित करता है। दूसरे शब्दों में अनुवादक का सृजनशील रचनाकार का दर्जा ही प्रक्रिया में मिल पाता है। यहीं जो छूट लेकर काम करता है न केवल उसकी रुचि वरन उसकी क्षमता सौन्दर्य प्रियता एवं भावविभोरता का भी स्तर खुल जाता है। अनुवादक को स्पष्टतः अपना पक्ष खोलना पड़ता है। सारे अवगुंठन उखड़ जाते हैं। सच कहें तो अनुवादक इस स्तर पर पारदर्शिता के जरिये मौलिक रचनाकार के नजदीक हो जाता है।

## 2.4 अनुवाद - पुनरीक्षण/विश्लेषण :

मूल अर्थ, भाव एवं संवेदना को अक्षुण्ण रख मूल की ध्वनि तथा यथासंभव आकार को मूलवत  $d$ ,  $_p$  HSA rē ntHāre(Vēṣh ~ Z OnZār b nA ZānX Hg dīrō? Bg \_InZārj U A rā \_ē' rBZ (Vetter & Evaluator)की महत्वपूर्ण भूमिका रहती है। अनुवादक अपने प्रवाह में तथा विभिन्न दबाव के अंतर्गत अनुवाद कार्य करता चलता है। उसका नियंत्रण, दिशा संशोधन एवं हितैषी जो है, वह है पुनरीक्षक। अनुवादक यदि हृदय है तो पुनरीक्षक उसका विवेक बनता है। उसके चित्र की भ्रमित उड़ान को, हृदय के घोड़ों की अनियंत्रित दौड़ को पुनरीक्षक नियंत्रण करता है।

वास्तव में देखा जाय तो पुनरीक्षक अनुवाद का संशोधन, संवर्धन, परिवर्धन करता है। बैंक में रुपये देने से पहले उन्हें दो बार गिन लेता है। कमी या त्रुटि रहे तो उसे सुधार लेता है। यह 'तीसरी आँख' का काम करता है। अनुवाद की दोनों आँख से कुछ छूट जाये तो अनुवादक की तीसरी आँख इसे पकड़ ले। यहाँ एकांडटेबिलिटी अनुवादक के साथ-साथ पुनरीक्षक पर भी आ जाती है।

पहले कर्म पुरुष अनुवादक है और दूसरा उसे परिष्कार देने वाला कर्म पुरुष पुनरीक्षक होता है। यदि संभव हो तो तीसरा एक और कर्म पुरुष होता है : मूल्यांकक। वह मूल और अनुवाद का तुलनात्मक अध्ययन कर उचित-अनुचित, ग्राह्य - अग्राह्य का निर्णय करता है। पुनरीक्षक निष्ठावान,

समर्पित भाव और तटस्थ विचारयुक्त होना जरूरी है। मूल्यांकन की सबसे बड़ी आवश्यकता उस की विषय और भाषा पर दक्षता है। जो सामने सामग्री है, साधिकार उस पर निर्णय देने की क्षमता होनी चाहिए। यह कार्य करने हेतु उसका कद भी ऊंचा हो और काठी ठोस हो। वरना उसकी रचनात्मक आलोचना को अथवा परिवर्तन संबंधी दृष्टिकोण को अनुवादक स्वीकार ही नहीं करेगा। वह उपेक्षा करेगा या ठुकरा देगा। अपने को अनुवादक कभी 'अकुशल कारीगर' मान ही नहीं सकता। उसी तरह मूल्यांकन में भी यह भाव कतई न हो कि हर हाल में कहीं न कहीं त्रुटि निकाल कर अपने को विशेष प्रतिपादित करना है। अगर प्रस्तुत पाठ ग्राह्य है और अपनी दृष्टि से एक स्तर को छू रहा है, तो उससे छेड़छाड़ की जरूरत क्या है ?

एक पाठ के दो अनुवाद हो सकते हैं। अपर की दृष्टि को महत्व देना पड़ेगा। अपने को ही यह कह कर कि 'धरती का बीच यही है, चाहे जिधर माप लें, हमने तो ये खूंटा गाड़ दिया।' सर्वज्ञ का ढोल पीटने के लिए मूल्यांकन करने पर कठिनाई पैदा हो जाती है। मूल्यांकन को कस्टम अधिकारी कहा गया है जो अपनी आँख का इस्तेमाल एक्सरे मशीन की तरह करेगा कि विदेश से आये सामान को पारदर्शी जांच कर वारा-न्यारा कर दे।

एक पाठ का अनुवाद करने के लिए अनुवादक कई तरह की पद्धतियाँ अपना सकता है। (जैसे 'हरि अनंत हरि कथा अनंता' का उदाहरण दिया जाता है) इसमें किसी एक अनुवाद को अंतिम पाठ नहीं कहा जा सकता। श्रेष्ठता की कोई ऊंचाई नहीं हो सकती। एक अनुवाद को आधार बना मूल्यांकन दूसरा पाठ प्रस्तुत कर सकता है। अतः पुनरीक्षण और पुनरीक्षक की सीमाएँ और शक्तियाँ स्पष्ट रहनी चाहिए।

1. पुनरीक्षक को सबसे महत्वपूर्ण भाव पर दृष्टि निबद्ध करनी होगी। भाव की रक्षा हुई या नहीं? अनुवाद में कहीं अनुवादक भावों की दृष्टि से स्वयं हावी होकर मूल के भावों को डाइल्यूट कर अनावश्यक छेड़छाड़ तो नहीं कर रहा? वह अपने अहं के वशीभूत होकर दी गई 'तोड़-फोड़' क्षमता का दुरुपयोग न करने पाये। अनुवादक को भावों का संपादन करने की छूट प्रायः नहीं होती है।

2. जो भाव उह्य रखा है, अनुवाद में उसे भी शब्द कौशल से उह्य रखने का प्रयास करना चाहिए। यह मूल की मंशा होती है। और इसमें वह साहित्यिक कुशलता का परिचय देता है। ओड़िया में यह बहुधा देखा जाता है कि वक्ता वाक्यों में अपना लिंग स्पष्ट नहीं करता - पुरुष है या स्त्री। हिन्दी अनुवाद में इसे उह्य रखना लगभग असंभव है। परंतु पुनरीक्षक उसे कुछ राह बता सकता है यहाँ पुनरीक्षक 'ठीक' नहीं करता, 'सटीक' बनाने का मार्ग तलाशता है।

3. मूल्यांकक को भाषा के स्तर पर गहरी परख होनी चाहिए। क्योंकि टी एल (Target Language) में अनुवादक प्रायः अपनी रौ में बहक जाता है। अथवा सबसे बड़ा खतरा मूल के भाषाई ढांचे का

होता है। उसकी शब्दावली, पदबंध, वाक्य संरचना, शैलीगत वैशिष्ट्य से पहला संपर्क आता है। व्यक्तिगत रूप में रुचि के अनुरूप उनके प्रेम में पड़ बहुत सी चीजें वह ग्रहण कर लेता है। अनुवाद में वे शब्द, पद, वाक्य बिना छेने हुए (Unfiltered) आ जाते हैं। टीएल में उनकी उपस्थिति पर अनुवादक उतना सचेत नहीं रह पाता। (क्योंकि मूल की उन वस्तुओं से उसे प्रेम जो है) अतः पुनरीक्षक और मूल्यांकक दोनों को इन प्रत्येक स्तर पर अपनी बेबाक टिप्पणी देनी होती है। यह सारा कार्य व्याकरणिक स्तर पर भाषाई ढांचे (Language structure) को दुरुस्त करना कहा जा सकता है। यह सूक्ष्मस्तर (Microlevel) पर किया कार्य है।

4. मूल्यांकक में वृहद् दृष्टि (Macrolevel) की भी जरूरत पड़ती है। एसएल की संस्कृति यहाँ अक्षुण्ण है या नहीं। मूल के परंपरागत मूल्यों की कहीं अनदेखी तो नहीं हो रही। पुनरीक्षण में यह सरसरी निगाह डालने पर भी स्पष्ट हो जाता है। इस रिश्ते-नाते, छोटे-बड़े का व्यवहार, पर्व-त्यौहार, कुछ कर्मकांड (जैसे जन्म, विवाह, मरण) कुछ मान्यताओं (जैसे ईश्वर संबंधी, आत्मा, पृथ्वी, आकाश, पुनर्जन्म, आत्मा एवं चंद्रमा के लिंग, प्राण, आँख के वचन आदि मान्यताओं)के प्रति दृष्टि साफ होनी चाहिए। मूल शब्द का वचन अनुवाद में कैसे रूपांतरित हो, अगर मूल शब्द स्वयं अनुवाद में स्वीकार है। इस तरह की कुछ सर्वमान्य बातों का ध्यान रखना पुनरीक्षक के दायरे में आता है।

5. संप्रेषणीयता पर पुनरीक्षक या मूल्यांकक की कड़ी नजर रहती है। आखिर पाठक तो अनुवाद ही पढ़ेगा। मूल तक जाने का अवसर उसके पास शायद ही कभी आये। अतः टीएल की भाषा में जो सामग्री प्रस्तुत है वह अब टीएल की है, एसएल (source Language)की छत्रछाया न रहे। ऐसे में टीएल का पाठ संप्रेषणीय होना बहुत जरूरी है। पाठक तकजितना अधिक संप्रेषणीय होगा, अनुवाद उतना ही सफल माना जाता है। इस दृष्टि से अनुवाद के प्रयासों को 'सान चढ़ाने' (To polish)को भी पुनरीक्षक या मूल्यांकक कर सकता है। यहाँ पुनरीक्षक के अपने खजाने में क्या है, इसे ध्यान में रखा जाये। संदेश और मूल की दृष्टि (Message and stance) दोनों को अनुवादक टीएल में लाता है। पुनरीक्षक का काम यहाँ सर्वाधिक महत्व रखता है कि यह संदेश और यह दृष्टि टीएल के पाठक तक पहुँच जाये। इसमें आयी रुकावटों का पता लगा कर वह उन्हें जोड़-तोड़ कर समतल बना देता है। अगर सांस्कृतिक अंतरंगता के उद्देश्य से अनुवाद किया गया है तब तो इसकी आवश्यकता और भी बढ़ जाती है।

6. उपरोक्त दृष्टि से यह बात उभर कर आती है कि क्या हर पाठ का अनुवाद किया जाना चाहिए? आज भी दयानंद सरस्वती के महान ग्रंथ के दो अध्यायों को किसी अनुवाद में नहीं जोड़ा जाता। सरकार द्वारा निषिद्ध सामग्री का तो वैसे भी अनुवाद कानूनन अपराध है। उसकी चर्चा नहीं कर रहे। कुछ लोगों की सोच ऐसी भी है - मैंने जो लिखा वह अपने पाठक के लिए है। अनुवाद कर हिन्दी

पाठक तक पहुँचे यह दूसरे स्तर की अथवा गौण स्तर की बात है । यह बात उनकी अपनी दृष्टि से ठीक है । परंतु साहित्य का संदेश और विषय वृहत्तर क्षेत्र में पहुँच कर अपनी पहचान दे । वास्तव में साहित्य अपने स्वार्थ के लिए नहीं, पर (चाहे वे अपने संबंधी हों या दूर देश के) समाज के लिए होता है । यह युगों से आदर्श माना गया है । अतः अनुवाद की आवश्यकता पर यहाँ विचार की जरूरत नहीं । परंतु एक बात स्पष्ट है - एक पाठ अपने क्षेत्र, अपने समुदाय को संबोधित होता है । अब उसमें कई तरह के अनुभव, उक्तियाँ, हास्य, व्यंग, कटुतावश आ जाती हैं, परिस्थिति जन्य कुछ कठोर प्रतिक्रियाएँ उस पाठ में मिल जाती हैं । सांस्कृतिक संबंध दृढ़ कराते समय इनकी क्या उपयोगिता रह जाती है ? दूसरे, हिन्दी पाठकों को उन प्रतिक्रियाओं को परोसने से क्या वह उद्देश्य साधित हो सकेगा ? यहाँ उदाहरणार्थ - मरहठिया ढंग, मारवाड़ी या मानुष, किसी बंगाली का वक्तव्य 'ओड़िया एक भाषा नाय', किसी तेलुगू की ओड़िया के प्रति व्यंग्यात्मक मुहावरायुक्त उक्ति, छत्तीसगढ़ी के सरल व्यवहार पर विद्रूपभाव आरोप युक्त उक्ति.... ऐसे अनेक अवसर मिलते हैं । अनुवादक बहुधा निस्पृह रह अनुवाद करता जाता है, पुनरीक्षक या मूल्यांकन यहाँ पर संकेत कर सकता है । कुछ कटु उक्तियाँ अब अपना संदर्भ खो चुकी हैं, कुछ में सामाजिक कटुता बढ़ने की संभावना रहती है, अनुवाद के माध्यम से उनका विस्तार न करना विज्ञता का परिचायक होगा, सांस्कृतिक संबद्धता में भी सहायक होगा । इस पर यहाँ कोई बंधा-बंधाया नियम अथवा मान्यता उपलब्ध नहीं है । यह मूल्यांकक के स्वविवेक की सबसे ज्यादा मांग करता है । सांस्कृतिक दृष्टि से यह एक महत्वपूर्ण मुद्दा है जिस पर मूल्यांककों या पुनरीक्षकों ने प्रायः ध्यान नहीं दिया है । पूरी अनुवाद प्रक्रिया पर यह किसी विशेष अंकुश की बात नहीं है । यहाँ कुछ उक्तियाँ अथवा प्रोक्तियाँ हैं । संसार में कोई साहित्यकार घृणा, द्वेष, छींटाकसी अथवा दरार पैदा करना नहीं चाहता । मूल लेखन के समय में वे वचन या उक्ति सार्थक रही हों, महत्व रखती रही हों, तो भी अब अनुवाद के समय उन्हें महत्व न देने पर मूल कृति की कोई हानि किसी दृष्टि से नहीं होती है । अतः अनुवाद का मूल लक्ष्य पाने के लिए अनुवादक, पुनरीक्षक/ मूल्यांकक (जहाँ जरूरत हो) को कुछ छूट देने पर विचार किया जाना चाहिये । संक्षेप में कह सकते हैं कि - पुनरीक्षक पहले स्वयं में निम्न बातें देख लें :

1. एसएल एवं टीएल में पूरा अधिकार है ।
2. अनुवाद के पुरीक्षण लायक धीरज, निष्ठा होनी चाहिए ।
3. उसमें तटस्थभाव (निरपेक्ष रूप में निर्णय दे सकने की क्षमता) होना चाहिए ।  
वरना अतिवादी (पक्ष-विपक्ष) दृष्टि से अनुवाद के प्रति अन्याय कर देगा ।
4. शैली की बात आने पर पुनरीक्षक देखे कि अनुवादक की जगह मूल की शैली को वाधा दे रहा है या नहीं ।

5. पुनरीक्षक संशोधन एवं संपादक बनने की क्षमता रखता है ताकि उसे निखारे और भाषादि की दृष्टि से परिष्कृत करे ।
6. मूल की साहित्यिक बारीकियों की रक्षा होनी चाहिए, उह्य रखने वाली बातों का खुलासा न कर तदनुरूप से उन्हें उह्य रखने का प्रयास करे ।
7. शब्द चयन, व्याकरणिक स्तर, वाक्य सौष्ठव, वाक्यों की अन्विति, अवतरणों की संरचना, भाषा का भावानुकूलन, विचार प्रवाहन, भाव-प्रवण स्थितियों के संदर्भ में पुनरीक्षक में जागरूकता होनी चाहिए ।
8. भाषा विश्लेषण की क्षमता हो ताकि अनुवाद में भाषागत वैशिष्ट्यों की रक्षा संभव हुई या नहीं, इस पर दृष्टि रख सके । उसमें अगर कहीं अभिधात्मक प्रयोग हैं, व्यंग्यार्थक उक्तियाँ हैं, उन पर बारीकी से निगाह रखे । वरना भाषा को अगर अनुवादक सपाट बना देता है, सूक्ष्म भाषा को अनुवाद में इकहरी बना डालता है तो फिर पुनरीक्षकों के हस्तक्षेप लायक स्थिति हो जाती है ।
9. अनूदित सामग्री की छाया, शब्द या मुहावरों पर पड़ रही है तो पुनरीक्षक रसास्वादन में आने वाली वह बाधा दूर करने लायक हो ।
10. अगर अनुवादक एक विशेष लक्ष्य से अनुवाद कर रहा है (जैसे राष्ट्रीय संहिता, आपसी भाईचारा, अपनी मूल की अस्मिता की राष्ट्रीय मानचित्र में पहचान) तो वहाँ पुनरीक्षकों को आवश्यक बाधक उक्तियों, अनुग्रह निथारने में पीछे नहीं हटना चाहिए । अगर अनुवाद में ऐसा अंश आ भी गया हो तो पुनरीक्षक अपने विवेक का प्रयोग कर उनमें उपलब्ध चुभन, आंच, खरास पर विशेष ध्यान दे सकता है । इससे अनुवादक का लक्ष्य पूरा होना ही सुनिश्चित होगा ।

वास्तव में अनुवादक के हाथ में चाबुक नहीं, कुम्हार के हाथों की तरह चाक पर गीली माटी संवारने की स्थिति होनी चाहिये । इसके लिए पुनरीक्षक और अनुवादक में आपसी रिश्ता संहतिपूर्ण हो । वह यों ही उलट-पुलट कर उसे अपनी सांस्कृतिक दृष्टि प्रदान कर देता है तो यह जातीय हानि होगी । उलटे अगर (अडंगे) डालने की प्रवृत्ति अपना ले तो भी उसी तरह जातीय क्षति करेगा । ओड़िया उपन्यासों में बहुतों को पुनरक्षीक की कलम से गुजरने का सौभाग्य नहीं मिला । कुछ ऐसे हैं जो पुनरीक्षक की टेबुल पर बरस-दो बरस पड़े रहे । जो हो इन अतिवादी स्थितियों से अनुवाद का अहित होता है । अतः ऐसी उदारता पुनरीक्षक में होनी चाहिए ।

यह लेखकीय स्वीकृति भी उन सब के लिए जरूरी होती है । वैसे कथा प्रवाह बाधित न हो यह मूल लेखक जरूर चाहेगा ।

जैसे रचनाकार कोई होता है । कालांतर में अनुवादक दूसरा कोई होता है । फिर वह उसका पुनर्गठन कर कर लेता है । पर अंतिम चरण पुनरीक्षण कोई तीसरा करे तो ज्यादा अच्छा होता है । कई बार तो स्वयं मूल लेखक अनुवाद का पुनरीक्षण करता है । जहाँ तक कुछ छूटजाने का प्रश्न है, वह आसानी से पकड़ता है । जहाँ अर्थान्तर हो जाता है । वहाँ भी मूल पकड़ लेता है । परंतु अनुवाद की भाषा पर टिप्पणी करते समय मूल उतना अधिक महत्वपूर्ण नहीं रहेगा । अनूदित कृति की भाषा मूल लेखक की भाषा कभी नहीं होती । अतः वह दक्षता लगभग नहीं मिलती । अनावश्यक हस्तक्षेप से अनुवाद का स्तर बदलने की संभावना रहती है । फिर भी अनुवाद में मूल का सहयोग किसी भी स्तर पर हो, सकारात्मक ही होता है । इसमें संदेह नहीं किया जा सकता । पुनरीक्षण में भी मूल लेखक का लक्ष्य अनुवाद के स्तर को सुधारना ही होता है । परंतु कई बार अधिक स्नेह वश बंदरिया बच्चे को पेट से चिपा कर रख, भागती दौड़ती है । ठीक है पर स्नेहवश पेट में भींच दे तो बंदरिया का दम घुट सकता है । यह अपने आप में एक आशंका बनी रहती है । अतः पुनरीक्षण हेतु किसी तीसरे निष्पक्ष व्यक्ति के पास भेजा जाता है । बड़े-बड़े सरकारी - गैरसरकारी संस्थान इस पर विशेष ध्यान देते हैं । बिना पुनरीक्षण करवाये, वे उस से सकारात्मक टिप्पणी बिना बिलकुल नहीं छाप सकते । परंतु ऐसे सरकारी पुनरीक्षक प्रायः हलके स्तर पर इस काम को लेते हैं । अनुवाद में गहरे नहीं उतरते । फलतः यह काम अधूरा रह जाता है । यहाँ पश्चिमी चिंतकों का दृष्टिकोण भी उल्लेखनीय है । डरेडा, नायडा न्यूमार्क, केटफोर्ड आदि इसको आवश्यक नहीं मानते । वे समझते हैं कि पुनर्गठन के स्तर पर ही संशोधन पूरा हो जाता है । जब कि भारतीय चिंतक इससे सहमत नहीं होते । वे पुनरीक्षण को आवश्यक मानते हैं ।

पुनरीक्षण का सबसे बड़ा गुण डाक्टर की तरह कृति से तो लगाव आंतरिकता से रखेगा । परंतु कृतिकार से निरपेक्ष होगा । वह बेबाकी से उसको देखेगा । भाषा, व्याकरण, छंद, अलंकार, तुक या लय, ध्वनि समता -समानता आदि के स्तर पर देखभाल करेगा । यहाँ पर उसकी दृष्टि आलोचक की तरह क्षीर विवेकवाली होगी । जो त्रुटि है, उसे देखकर स्पष्ट संकेत करता है । परंतु भाग्यवश वह निर्मम अथवा भिन्नमतावलंबी हुआ तो पुनरीक्षण के बहाने वह क्षति कर सकता है । अतः सही व्यक्ति से पुनरीक्षण होना चाहिए । उसे कृति से लगाव हो, कृतिकार से नहीं । तभी न्याय कर सकेगा । अनुवाद के गुण-दोषों का विश्लेषण कर सही संकेत मिल सकेंगे । तब जाकर उसका पुनर्लेखन संभव होगा । वह एक नई रचना स्वयं संपूर्ण होकर मूल की वाहिका बन सकेगी । विभिन्न सोपानों की चर्चा कर रहे हैं :

## 2.5 पुनरीक्षण के सोपान :

i) **पाठ-पठन** : पुनरीक्षण में सर्वप्रथम दोनों पाठों का पठन जरूरी है । यहाँ मूल और अनूदित पाठ का अनुवाद में आ रहा है या नहीं । कहीं कुछ अनजाने छूट तो नहीं रहा । तीसरे शब्द भ्रम

में पड़ कर कहीं वह दूर तो नहीं जा रहा । इस प्रकार अनुवाद को एक प्रामाणिकता प्रदान की जाती है । उसी तरह मुहावरे या कहावतों के लिए जो रूप अपनाये जाते हैं उन पर ध्यान दिया जाता है । साधारणतः उनको ग्रहण करने में सतर्कता बरतनी पड़ती है । वरना पुनरीक्षक को अंगुली निर्देश कर संशोधित रूप बताना जरूरी होता है । उदाहरण स्वरूप 'घरडीह' उपन्यास के अंत में है कि उस देहरी पर संध्यादीप नहीं जला । यहाँ अनुवादक ने देहरी की जगह पोखर की सीढ़ी कर दिया । पुनरीक्षण के दौरान उसे संशोधन करना पड़ा कि यह पोखरतट पर तुलसी चौहरा पर दीप जलाने का प्रसंग नहीं है । घरवाली न रही तो घर में संध्यादीप कौन जलायेगा ? वह सांस्कृतिक प्रसंग यहाँ सन्निवेशित है जो अनुवादक अपनी धुन में भूल जाता है । इसे सुधारने का काम पुनरीक्षक आलस्य या उपेक्षा करता है तो कृति के प्रति न्याय नहीं करता । साधारणतः कुछ नवसिखिये भी अनुवाद में कदम रखते हैं । उनके प्रति ये पुनरीक्षण की सहानुभूति सजगता और मार्गदर्शन महत्व रखता है । ऐसी अशुद्धि दूर कर अनूदित पाठों के लिए सुधारना जरूरी है । नवअनुवादकों को भी प्रोत्साहन देना होता है । तब तो पुनरीक्षण अत्यंत आवश्यक है । प्रतिष्ठित अनुवादक भी अगर अपने समगोष्ठी से पुनरीक्षण करा ले तो इसे हेठी अपमान या हीनता की बात नहीं मानी जा सकती । कृति के हित में इसे आवश्यक माना जाता है ।

## ii)विषयगत अंतर :

कभी-कभी अनुवादक संदर्भगत विचार किये बिना भिन्नार्थ शब्द का प्रयोग कर बैठता है । जैसे हमने पीछे 'रस' शब्द के कई अर्थ देखे । संदर्भ पर ध्यान दिये बिना विषय से हट कर दूसरा शब्द प्रयोग करे तो यह भटक जाता है । हम जानते हैं कि (Compound) शब्द का रसायन में जो अर्थ है, घर के लिए 'कंपाउंडवाल' में कंपाउण्ड का एकदम भिन्न अर्थ है । उसी तरह जब हम 'स्कूल' शब्द का प्रयोग विद्यालय से हट कर चिंतनधारा (School of philosophy) में करते हैं तो अलग-अलग क्षेत्र हैं । उसी तरह (Will) शब्द का अर्थ क्रिया के संदर्भ में अतीत वाचक अर्थ में आता है । परंतु कोई अपनी वसीयत लिखता है तो वहाँ यह संदर्भ दूसरी जगह ले जाता है । उसी प्रकार (Stand) शब्द का क्रिया में अर्थ खड़े होना है । मगर संज्ञा में प्रयोग करने पर वह 'खंभा' बन जाता है । यह शब्द के संदर्भ बिना विषय की सही सूचना देने में असमर्थ रहेगा । प्रयोग में वह हमें गलत स्थान पर पहुँचा देगा । अतः पुनरीक्षण के समय इन सारी विविध स्थितियों पर ध्यान रखना जरूरी होता है । अगर पुनरीक्षक चूक जाता है तो फिर सुधार की और कोई स्थिति नहीं आती ।

### iii) शैली :

हमने पहले भी देखा कि विषय के अनुसार शैली होती है । भाषा की स्थिति वैसे ही बदलती जाती है । भाषा का यह चमकीलापन अनुवादक को अपने कार्य में दिखाना उचित है । पुनरीक्षण पाठ में शैलीगत रूप उभर आता है । यह उसका मुख्य लक्षण है ।

गौर करना होगा कि अत्यंत गंभीर विषय का अनुवाद तदनु रूप गंभीर शैली में करना होता है । उदाहरणार्थ अंग्रेजी का निमंत्रण पत्र है । अब हिंदी में विवाह का निमंत्रण पत्र उसी के अनुवाद से नहीं बन सकता । क्योंकि अंग्रेजी शैली में वह औपचारिकता में है । हिंदी में वह एक मांगलिक कार्य, धर्मकार्य में शामिल होकर शुभाशीष देने जैसा कार्य है । अतः भाषाई विनम्रता, भाषा में धार्मिक दृष्टि से प्रचलित शब्दों का व्यवहार, कुछ मंगल चिन्ह -स्वस्तिक, ॐ, श्रीगणेशाय नमः, प्रजापतये नमः मंत्र (जैसे गणेश अथवा विष्णु संबंधी मंत्र, वेदमंत्र आदि का यथास्थान उपयोग करना पड़ता है ।) इस प्रकार हिंदी की सांस्कृतिक परंपरा, चलन आदि के अनुरूप परिवर्तन परिवर्द्धन जरूरी है । वहाँ सरलीकरण कर देने पर एकदम अग्राह्य हो जाता है ।

उसी तरह कार्यालयीन भाषा या व्यावसायिक भाषा में बहुत अधिक विनम्रता या दिखवा रखते हैं तो वह एकदम अव्यावहारिक बन जाती है । वहाँ देखना है कि भाषा हिंदी है परंतु उसका रूप तत्सम प्रधान है, समास शैली में है या देशज शब्दों के उपयोग से सरलीकृत है । वहाँ पर अनुवादक ने तकनीकी शब्दों की उपेक्षा तो नहीं कर दी है । अब तो भारत सरकार के लिए सुप्रीमकोर्ट का आदेश है - राजभाषा हिंदी में अनुवाद अथवा अन्य प्रयोग के समय तकनीकी एवं वैज्ञानिक शब्दावली आयोग द्वारा निर्मित शब्दावली का प्रयोग ही मानक होगा । भिन्न-भिन्न राज्यों द्वारा अपने ढंग से निर्मित पर्यायवाची वाली शब्दावली नहीं होनी चाहिए । यहाँ शैली के नाम पर विविध रूप अब स्वीकार्य नहीं होंगे । ऐसे में पुनरीक्षक को उनसे परिचित होना होगा । यथास्थिति उनका संशोधन करना पड़ता है । प्रामाणिकता लाने के लिए यह नितांत जरूरी होता है ।

बहुधा अनुवादक स्वयं अपने कार्य का पुनरीक्षण कर लेता है । इसमें उसका अपना अहं (Ego) सुरक्षित रहता है । परंतु पाठ के हित में अन्य कुशल अनुवादक से पुनरीक्षण कराना एक बेहतर विकल्प है । इसमें 'एक से भला दो' वाली कहावत सार्थक होती है । डाक्टरी भाषा में इसे कहते हैं - 'सेकेंड ओपीनियन लेना' । कुछ चीजें मूल के ध्यान में नहीं आ पाती । अतः दूसरा पाठ करा लेना बेहतर होता है । इसमें अहं का प्रश्न नहीं रहता । अनायास , अनजाने रह गई त्रुटि का संशोधन हो जाता है ।

सच कहा गया है कि अनुवाद की जांच हो जाती है । सुधार हो जाता है और कुछ हद तक संपादन भी होता है । अतः पुनरीक्षण का पर्याय अनुवाद करने के बाद जरूरी होता है ।

\*\*\*

## ख) अनुवाद तथा समतुल्यता का सिद्धांत

### 2.6 अनुवाद तथा समतुल्यता का सिद्धांत :

पश्चिमी अनुवाद संबंधी चिंतकों ने अनुवाद के विविध पक्षों पर व्यापक विचार और विश्लेषण किया है। उन्होंने भाषागत और भाव अथवा विषयगत अंतरण दोनों पर गहराई से विचार किया। कृति का शरीर ही नहीं उसके प्राण अथवा आत्मा दोनों होते हैं। अनुवाद में दोनों का अंतरण होता है। भाषा पीछे छूट जाती है, परंतु उसके संकेतों का वहन होता है। आत्मा अथवा प्राण को नई भाषा के जरिये अनुवाद पुनःस्थापना करता है। यहाँ बिहारी लाल का दोहा स्मरण में आता है -

“दुखी होहुगे सरल हिय, बसत त्रिभंगी लाल ।”

गले, कमर, घुटनों -तीनों जगह बांकी मुद्रा वाले कृष्ण मेरे सरल(सीधे) हृदय में कैसे खड़े होंगे ? उन्हें कष्ट नहीं होगा ? अतः मैं अपने हृदय या मन को भी वैसे वक्र बनाये हूँ। अर्थात् उनके स्थापन हेतु वैसा ही वक्र आकार निर्माण किया है।

‘समतुल्यता’ शब्द हम यहाँ गणित के शब्द का प्रयोग कर रहे हैं। वहाँ पर (=) समानता के लिए व्यवहार करते हैं। जैसे  $3-2 = 2-1$  को कहते हैं। अनुवाद में उसी लहजे में बांयी तरफ मूल भाषा और दाहिनी तरफ लक्ष्य भाषा रख कर मिलान करते हैं। तब उसमें कम-अधिक की चर्चा उठती है। यह उद्देश्य बराबरी के स्तर पर नहीं। यहाँ पर दिशा समान हो, भाव समान हो और स्तर एक जैसा हो। यहाँ गणितीय तुलना की बात नहीं है। यहाँ संदेश पहुँचाने का मामला है। केटफोर्ड और नाइडा ने जो विचार रखे हैं वे अभिव्यक्ति के स्तर पर तुलनीय हैं। मूल और अनुवाद की अभिव्यक्ति का भाषा तथा अर्थ के स्तर मिलान करते हैं। लेकिन नाइडा ने पाठ में निहित अर्थ को दोनों में तुलना कर देखा है उसी प्रकार शैली पर गौर करते हुए तुलना करते हैं।

इसके अलावा डा. के.के. गोस्वामी ने सामाजिक -सांस्कृतिक संदर्भ, शैलीगत सौन्दर्य और पाठ की विशिष्ट भूमिका की बात उठायी है। अतः उन्हें पाश्चात्य चिंतकों का वर्गीकरण स्वीकार्य नहीं होता। वे संशोधन करते हैं। शब्दानुवाद, आगत शब्द, शब्द निर्माण, क्रम परिवर्तन, रूपांतरण, अनुकूलन, लिप्यंतरण, भावानुवाद आदि की भूमिका को स्पष्टतः स्वीकारते हैं। तदनुसार समतुल्यता की चार विभिन्न स्तरों पर विचार करने की बात उन्होंने कही है :

## 1. भाषापरक समतुल्यता :

यहाँ पर भाषा सामग्री को लेकर समतुल्यता निर्धारित होती है। स्रोत भाषा की तथा लक्ष भाषा की -

शब्द	और	शब्द
पदबंध		पदबंध
वाक्य		वाक्य

इन तीनों भाषाई इकाइयों में लक्ष्य भाषा के साथ तुलना कर निष्कर्ष निकाले जाते हैं।

सबसे छोटी इकाई 'शब्दों' की है

कुछ **शब्दों** का अनुवाद शब्द स्तर पर समतुल्य देख सकते हैं :

	हिंदी	ओड़िया
Office	कार्यालय	कार्यालय
Production	उत्पादन	उत्पादन
Crowd	भीड़	भीड़
Sky	आकाश	आकाश

उपरोक्त में हिंदी और ओड़िया दोनों अनुवाद समान हैं। अंग्रेजी से दोनों भाषाओं में अनुवाद कैसे समतुल्य हो रहा है, यह देखने योग्य है।

इसी प्रकार '**पदों**' का रूपांतरण भी समतुल्य देखा जा सकता है -

	हिंदी	ओड़िया
Chief Justice	मुख्यन्यायाधीश	मुख्यन्यायाधीश
General manger	मुख्य प्रबंधक	मुख्य प्रबंधक
Govenrment School	सरकारी विद्यालय	सरकारी विद्यालय
Armed Forces	सैन्य बल	सैन्य बल
Old Generation	पुरानी पीढ़ी	पुरुणा पीढ़ी

**वाक्य** स्तर पर समतुलनात्मकता विशेष महत्व रखती है।

I went home	मैं घर गया
This is his bag	यह उसका थैला है

Dowry is not abolishid in India भारत से दहेज समाप्त नहीं हुआ ।

अगर मुहावरेदार वाक्य आ जाते हैं तो लक्ष्य भाषा में कई बार मिल जाते हैं, कई बार उसी तरह के अन्य मुहावरों से काम चलाते हैं

Mind and Matter	जड़ चेतन
Leap and Bounds	रात दिन फलना फूलना
In long run	लंबी अवधि में
Fall in love	प्रेम करना
To go to dogs	बरबाद होना

मूल भाषा के गद्य, पद्य, कथा, नाटक आदि में भी यह बात शामिल है । इनकी शैली अनूदित कृति में मिलान कर देखना होता है ।

## 2. शैली परक समतुल्यता :

2) शैली परक समतुल्यता : यहाँ पर अभिव्यक्ति की शैली का महत्व है । इसे अनुवाद में मिलाया जाता है ।

- i) औपचारिक
- ii) अनौपचारिक
- iii) लिखित
- iv) मौखिक
- v) समाजिक
- vi) प्रयुक्तिपरक

ये छः शैलियाँ मुख्य मिलती हैं । ये शैलियाँ हर भाषा की अपनी -अपनी होती हैं । इसे लखनवी भाषा में 'अंदाज' कहा जाता है । कहने का कायदा या तरीका भिन्न-भिन्न होता है । अनुवादक में लक्ष्य में समान लहजा या शैली का प्रयोग किया जाता है ।

उर्दू                      हिंदी

जैसे - तशरीफ लाइए      बैठिए, बिराजमान होइए

कृपया पधारिए -Please, come in.

गद्य-पद्य नाटकादि की शैलियों में से यहाँ एक कविता का उदाहरण देना उचित होगा ।

प्रसिद्ध रूबाइयत ऊमर खय्याम/ हरिवंश राय बच्चन ने उनके अंग्रेजी (फिटजिराल्ड कृत) अंश का हिंदी रूप यहाँ प्रस्तुत है :

With me along some strip of Herbage strow  
That just divides the desert from the sown.  
While name of slave and sultan scarce is known  
and pity sultan Mahamud on his throne.

इस का रूपपरक समतुल्य अनुवाद (नाइडा की भाषा में) यहाँ दिया जा रहा है :

“चलो चल कर बैठें उस ठौर,  
बिछी जिस थल मखमल-सी घास ।  
जहाँ पर शस्य श्यामला भूमि  
धवल मरु के बैठी है पास,  
जहाँ कोई न किसी का नाथ,  
भूपति महमूद सिहाए भाग,  
जहाँ हमको यदि देखे साथ ।”

यहाँ पर मूललक्ष्य प्रभावोत्पादकता है इस शैली में हिंदी यह प्रदान करने में सक्षम है । एक कृति के कई तरह से अनुवाद प्रस्तुत करते हैं । शैली को लेकर यह विविधता आती है । हाँ अनुवादक के अनुभव, क्षमता और दृष्टि का प्रभाव भिन्न-भिन्न रूप देता है । इसी को मैथिली शरण गुप्त, सुमित्रानन्दन पंत, केशव प्रसाद पाठक आदि के रूबाइयत के अनुवादों से मिला कर भिन्नता देखी जा सकती है । शैली बदल रही है । मूल अर्थ और अभिव्यक्ति का आशय अक्षुण्ण रहता है । यह कविता में ज्यादा प्रयुक्त होता है । नाटक या कथा या निबंध में उतना स्पष्ट रूप नहीं बनता । क्योंकि कविता में कल्पनाशीलता बहुत अधिक होती है । भाषा में रचनाकार जितनी ऊँची उड़ान भरता है, अनुवादक को लक्ष्य में उतना ही उड़ना पड़ता है ।

परंतु भाषाश्रयी पाठ का अनुवाद बहुत कठिन है । उपेंद्रभंज का ‘वैदेहीश विलास’ राम कथा का रीतिशैली में रचित महाकाव्य है । ये शब्द और उनके अर्थ वैचित्र्य का सौन्दर्य ओड़िया की विशेषता है । यहाँ छंद भी ओड़िया का अपना है । सिर्फ काव्य विश्वविश्रुत है । एक-एक छंद के कई अर्थ संभव हैं । उसी तरह बिहारी के दोहों में एक-एक शब्द के अर्थ बदल कर उन्हें भिन्न धरातल पर प्रस्तुत कर सकते हैं । अर्थात् भंज और बिहारी काव्य का संदेश अथवा कथ्य उनकी भाषा में पूरी तरह लिपटा, गुंथा है । ऐसी संश्लिष्ट जटिल और बहु स्तरीय भाषा का प्रयोग किया है कि अनुवादक एक अर्थ लेकर अनुवाद

करे तो दूसरा काव्याशय छूट जाता है । ऐसे में अगर गद्यानुवाद करे तो उस शैली के किरच-किरच हो जाते हैं । सारे अलंकार और छंद के स्तर पर प्रयासों पर पानी फिर जाता है । लिप्यंतरण करने पर भी (चूंकि बहुत कुछ संस्कृतनिष्ठ अर्थात् समास परक छंदों का प्रयोग है) पाठक के लिए संप्रेषणीय नहीं हो पाता । "Poetry cannot Be translated"

काव्यानुवाद संभव नहीं । अगर करता है तो वह एक नया (अनूदित भाषा का) पाठ होता है । मूल को अनुवाद में दुहराया नहीं जा सकता । इस शैली से जो छंद क्षति होती है, वह अत्यंत हास्यास्पद होती है । मूल की गरिमा, गंभीरता और गहनता को अक्षुण्ण रख पाना दुरुह होता है ।

अनुवाद के पूरे क्षेत्र में यह रीति परक काव्य ही हर भाषा में सबसे बड़ी चुनौती होता है । सृजनतात्मक साहित्य में भारतवर्ष रामचरित मानस (तुलसीदास) और भागवत (जगन्नाथ दास) को पाकर गौरवान्वित है । मानस के सिर्फ ओड़िया में पंद्रह से अधिक प्रकाशित अनुवाद हैं । हाल ही प्रो. राधाकांत मिश्र ने चौपाई, छंद में ओड़िया में रूपांतरण किया है । परंतु भागवत का हिंदी रूप अब तक सामने नहीं आया । क्योंकि यह नवाक्षरी छंद ओड़िया में सर्वाधिक ललित छंद हो गया । भागवत की भाषा का सरलतम रूप, गूढ़तम दर्शन एवं ललितलीलाओं को लेकर अतीव सहज गति में बढ़ता है । इस शैली का हिंदी अनुकरण तो संभव है । परंतु हिंदी में वह लालित्य और वह माधुर्य लाना संभव नहीं । अतः हर प्रयास गद्य में उलझ कर रह जाता है । इस प्रकार शैली का सागर पार कर सरलतम काव्य को एक क्षेत्र से दूसरे में पहुँचाना बहुत बड़ी चुनौती है । प्रो. राधाकांत समतुल्य ओड़िया प्रयोग से मानस को सफलता पूर्वक पहुँचा सके हैं । भागवत की शैली लाना अभी भी किसी हिंदी अनुवादक के लिए संभव नहीं हुई । हम यहाँ पर भारतीय भाषा के अनुवाद में उदाहरण के रूप में ओड़िया में अनुवाद की कुछ चर्चा कर रहे हैं ।

## 2.7 ओड़िया में अनुवाद की परंपरा :

आधुनिक राजनैतिक आड़िया का चित्र 1 अप्रैल 1937 को सामने आया । परंतु उड्र, उत्कल, कर्लिंग, त्रिकर्लिंग ..... आदि नामों से यह भूमि आर्यावर्त में प्राक ऐतिहासिक युग से अभिन्न अंग रही है । आर्यावर्त का इतिहास, यहाँ की कला, संस्कृति, धर्म, परंपरा आदि कोई भी चीज इस भूमि के बिना अधूरी रही है । युग-युग में, विशेषकर पूर्व- ऐतिहासिक युग में यहाँ समृद्ध मानव संस्कृति के प्रमाण मिलते हैं । आगे चल कर एक समृद्ध - संपन्न और उच्च स्तर की सभ्यता इस क्षेत्र में रही है । यह बात भी विविध प्रमाणों से स्पष्ट है । वैदिक युग में आकर इस भूमि ने भारतीय सभ्यता को ज्ञान का अंश दिया है । इसका प्रमाण वेदों की पिप्पलाद शाखा है । आज भी मयूरभंज जिले में इस शाखा के ब्राह्मण और इस धारा के ज्ञाता उपलब्ध हैं । भंडारकर इंस्टीच्यूट में जब वेदों का संपादन चल रहा था तब पिप्पलाद

शाखा का संपादन कार्य भुवनेश्वर में हुआ था । तभी वेदों की अनुपलब्ध अनेक ऋचाएँ महानदी घाटी में उपलब्ध हुई । इस प्रकार उत्कल में ज्ञान, धर्म, आध्यात्म, कला, कौशल आदि का प्रचलन और विस्तार भारतीय सभ्यता के साथ-साथ चलता रहा है । इस यात्रा में अनेक पड़ाव आये हैं । आधे से अधिक हिस्सा तो आज भी पहाड़ों और जंगलों के कारण अगम्य अथवा दुर्गम्य बना हुआ है । सरकार की हजार चेष्टाओं के बावजूद इस पर्वतीय एवं वनांचल में शिक्षा का समुचित प्रचार-प्रसार संभव नहीं हो सका । लोग उसी दस हजार वर्ष पुरानी शैली में जीवन यापन कर रहे हैं । फर्क इतना ही पड़ा है कि खान-पान में बदलाव आ गया है । उनकी बात यहाँ समीचीन होगी । बाकी पश्चिम का समतल भाग और पूर्व एवं दक्षिण के उपकूली क्षेत्र परिवर्तन के दौर से गुजरे हैं । यद्यपि पूर्वी घाट पर्वतमाला ने दक्षिण का रास्ता रोका उत्तर भारतीयों को यहाँ आने में महानदी, वैतरणी आदि नदियाँ खाई खोद कर खड़ी हो गई । फिर भी यह क्षेत्र एकांतिक अथवा अगम्य कटा हुआ इलाका कभी नहीं रहा । सारे भारत के साथ इसका संपर्क अटूट रहा है । पहाड़ों, नदियों, जंगलों ने दीवार या खाई खड़ी नहीं की । इनके कारण राजनैतिक सीमाएँ बनी । परंतु जनता का भारतीय जीवन से एकात्मक भाव हमेशा बना रहा है । इतना ही नहीं इस क्षेत्र के लोगों का मनोबल सागर भी नहीं तोड़ सका । कलिंग वीरों की नौकाएँ रोम तक रेशम पहुँचाया करती थी । पूर्व में बाली, जावा, सुमात्रा, वोर्णियो, श्याम और थाइलैंड तक कलिंग वणिकों की नौकाएँ अबाध गति से यात्रा करती थी । सिंहल द्वीप तो बहुत करीब का व्यवसायिक ही नहीं, सांस्कृतिक और धार्मिक आदान-प्रदान का क्षेत्र बना रहा । उन दिनों बर्मा भारत का ही एक अंश था । इस प्रकार कलिंग वीरों का कार्य क्षेत्र दक्षिण के चोल, पाण्ड्य, राष्ट्रकूट और कई लोगों की तरह जल-स्थल उभय में समान रूप से छाया हुआ था । इससे हम अन्दाज कर सकते हैं कि यह सभ्यता एक समय में विश्व में कितनी महान बनी हुई थी । यही कारण है (संभवतः) श्रीकृष्ण ने कलियुग में साक्षात् श्रीजगन्नाथ रूप धारण कर लीला के लिए इसी क्षेत्र को चुना था और श्रीजगन्नाथ जी के आने के बाद इस का महत्व भौतिक से बढ़कर आध्यात्मिक, धार्मिक हर दृष्टि से अतुलनीय बन गया ।

इसके बाद तो श्रीजगन्नाथ भूमि सभी संस्कृति और सभ्यताओं (भारत से बाहर, यूनानी, इरानी, आदि) के लिए आकर्षण का केंद्र बन गयी । भारतीय धर्मों में और उनकी शाखाओं में प्रसिद्ध जैन, बौद्ध, सिख सबके लिए यह अत्यंत पवित्र स्थल और उनकी क्रीड़ा भूमि बन गया । खंडगिरि, उदयगिरि की गुफाएँ, पुरी के मठ और मंदिर हजारों वर्ष से इन परंपराओं को वहन करते रहे हैं । यह क्षेत्र श्रीजगन्नाथ जी का साम्य और मैत्री का संदेश विश्व को युगों से देता आ रहा है । इसी कारण असंख्य यात्री युगों से यहाँ आते रहे हैं । पता नहीं किस युग की परंपरा में शंकराचार्य, रामानुज, निंबार्क, आदि संत यहाँ आकर श्रीजगन्नाथ जी का दर्शन करते रहे । इसकी परंपरा का विस्तार करते रहे हैं और अपनी दृष्टि यहाँ से ले देकर विकसित करते रहे हैं । यह धारा गुरु नानक, कबीर, श्रीचैतन्य महाप्रभु, मीरा,

तुलसी से होती हुई विद्यानिवास और अज्ञेय को ले आजतक अक्षुण्ण है । रेल चलने के बाद आने-जाने वाले यात्रियों की संख्या बढ़ गई । परंतु यहाँ का साहित्य यहीं पुनर्नवीकृत होता रहा ।

भाषा कालांतर में अप्रचलित हो जाने के बाद उस ज्ञान-विज्ञान और कला, कौशल को तत्कालीन भाषा में रूपांतरित किया गया । इसमें उसी तरह की महक आती है जैसे वेद श्रुति युग से उतर कर लिप्यन्तरित होते हुए लिखित रूप में उद्बुद्ध हुई । यह सामग्री रूपांतरित हो हमारे सामने जब आई तो नाथ और सिद्धों का उज्वल रूप सारे उत्कल में छाया हुआ था । तब कुछ कम शिक्षित लोगों के हाथ में पड़कर उनमें कई जगह लौकिक और स्थानीय मौखिक (Oral culture) संस्कृति का समावेश हो गया । इसमें तत्कालीन विकसित भाषा ही नहीं बहुत कुछ समकालीन परंपरा का अंश भी मिलकर एक-मेक होता गया । यह परिवर्तन कुछ अर्थों में समृद्धि का सूचक था । तो कुछ दृष्टि से हास का संवाहक बना । इस काल में लिखी गुणाढ्य की कथाएँ पूर्व युग की परंपरा का नवीकरण ही कही जाएगी । उसी प्रकार नाथ और सिद्धों की वाणियों में भी ज्यादातर वही प्रचलित परंपरा का नवीकरण मिल जाता है । जैन कृतियों में जो परिवर्तन आया उसके प्रमाण संभवतः ओड़िशा में लुप्त हो गए । उसी तरह बौद्धों की जातक कथाएँ यहाँ के तत्कालीन साहित्य में भिन्न रूप लेकर जीवित रह सकी । जैसे पत्थर की बनी बुद्ध मूर्ति पर जगह-जगह सिंदूर का लेप देकर ग्राम देवता बना दिया गया । उसी प्रकार बौद्ध परंपरा के उदाहरण भरे पड़े हैं । इस साहित्य को अनुवाद धारा से जोड़ने में कुछ लोगों को आपत्ति हो सकती है । वे इसे मौलिक साहित्य मानते हैं । इसमें छन्द, अलंकार एवं काव्य शास्त्रीय अनेक मर्यादाओं को ध्यान में रखकर उन्हें उच्च स्तरीय साहित्य कहा जा सकता है । इस दृष्टि में कोई विवाद की गुंजाइश नहीं है । परंतु यह भी स्वीकार करना होगा कि इन नाथों, सिद्धों को पूर्वजों से जो कुछ मिला है, वह कम नहीं है । इनके रूप और आकार में ही नहीं, आत्मा में भी इनके पूर्वजों का दर्शन समाया हुआ है । इसी कारण यह साहित्य अनुवाद से मुक्त नहीं कहा जा सकता । इसकी अनुवाद के साथ स्थिति और गहराई अलग चर्चा का विषय है । परंतु धारा यहीं नहीं रुकती ।

एक कृति जयदेव की 'कृष्ण राधा' के प्रेम का अद्भुत रूपांतरण है । यह कोई मौलिक अभिव्यंजना नहीं है । बाद में गीतगोविन्द के अनेकानेक उत्तराधिकारी पैदा होते रहे हैं । इनमें अनुवाद की एक उत्कृष्ट शैली मिलती है । राजा-महाराजाओं, सामान्य कवियों, गीतकारों, लोकगीत गायकों आदि सबने इसे अपनाया है । यह ओड़िशा की अनुवाद धारा का अनुपम उदाहरण है ।

गीतगोविन्द अपने समय में ही श्रीमंदिर से निकलकर राजस्थान के उदयपुर तक पहुँच गयी । बाद में यह कृति गुजरात और बंगाल तक चारों तरफ पहुँच गयी । अनुवाद के क्षेत्र में भारतीय साहित्य का यह मील का पत्थर है । गीतगोविन्द के संगीतमय होने के कारण इसका बहुत अधिक महत्व हो जाता है । अनुवाद का एक नया आयाम यहाँ जुड़ गया । अब तक अनुवादक भाषा का ही कलाकार

होता था लेकिन गीतगोविन्द के बाद अनुवाद के लिए संगीतकार होना उसका एक विशिष्ट गुण माना गया । अब स्पष्ट हो गया अनुवादक प्रायोगिक कलाओं में अपनी पहचान बना ले तो वह समर्थ अनुवादक बन सकता है ।

संगीत के अलावा पात्र और कथानक, इन सबका महत्व अपनी-अपनी जगह पर है । कवि ने उसका भरपूर लाभ उठाया । कवि केवल भक्ति ही नहीं, प्रेम, प्रकृति और कला इन सबको संगठित रूप में समेकित करता है । तब जाकर गीतगोविन्द का पद सामने आता है । लेखक ने इसके आधार पर अपनी सारी क्षमता को दाव पर लगा लिया । वह कृत्ति विश्व विश्रुत हो तो फिर और भी मुश्किल हो जाती है । गीतगोविन्द में कथा का तार बहुत सूक्ष्म है । परंतु है अत्यंत दृढ़ । सच कहा जाए तो सारे युग में यह कविता छाया हुई थी । हर दरबार में अपने - अपने राष्ट्रकवि थे । और दुर्भाग्य से जयदेव ऐसे किसी राजदरबार के कवि नहीं थे । परंतु गीतगोविन्द का अनुवाद पद्य और गद्य उभय में हुआ । सारे देश के कोने-कोने में अपने संस्कृति और वैभव के कारण ही नहीं, वरन् इसे पठनीयता के मानदंडों के कारण भी छू पाना अन्य के लिए मुश्किल है । इस युग में कुछ लोगों का मानना है कि हम एक नये युग में प्रवेश कर रहे हैं । इन नयी मान्यताओं और नये मूल्यों के सामने परंपरागत मूल्यों को धराशायी होते देख रहे हैं ।

इस भूखंड में स्वयं गीतगोविन्द अनुवाद का विषय बन गया है । इसके आधार पर संस्कृत में अनेक रचनाएँ मिली जो इसकी शैली में लिखी गई हैं । परंतु ज्यादातर में देश के विभिन्न भागों में इसकी टीकाएँ उपलब्ध हुई हैं । आगे चल कर विभिन्न ढंग से इसके दृश्य रस प्रस्तुत किये गये । यहाँ तक कि लोक शैली में (संस्कृत से हटकर) भी बहुत कुछ गीतगोविन्द के आधार पर रचा गया है । अब धीरे-धीरे संस्कृत से हटकर प्राकृत और अपभ्रंश में प्रवेश करते हैं । इस युग में पूर्ववर्ती रचनाओं का फिर एक बार संस्कार होता है । परंतु इनमें नाटक, भाण, यात्रा ... अदि प्रमुख हैं । इन सबमें विषय वस्तु उसी परंपरा से ली गई है । इसमें नया बहुत कम लिखा गया है । ओड़िया भाषा के निर्माण की यह प्रारंभिक अवस्था है । इसमें मुख्यतः छोटी-छोटी स्तुतिपरक, प्रशंसामूलक एवं विभोर होकर आर्दशात्मक रचनाएँ प्रमुख रही । इन्हें किसी पूर्व धारा का अनुवाद तो नहीं कह सकते, परंतु इनमें तत्कालीन स्थिति के अनुरूप पुनर्नवीकरण का प्रयास मिलता है । इनमें बौद्ध और जैन की धार्मिक आध्यात्मिक चेतना से प्रभावित रचनाएँ अधिक हैं । कविता का (विशेषकर तुकान्त कविता) का प्रभाव घटने के कारण छन्द के बंधन कविता पर ढीले होने लगे । अतः इस युग में गद्य और काव्य बहुत करीब आ गये । यहाँ तक अवधूत नारायण स्वामी की रचना को आज भी गद्य या पद्य कहने में असमंजस होता है । क्रमशः ओड़िया साहित्य का विकास होने लगता है । यद्यपि पुरी और ओड़िशा संस्कृत का गढ़ था परंतु धीरे-धीरे ओड़िया साहित्य ने वह स्थान अधिकार कर लिया । चौदहवीं सदी में सारला दास ने आकर

अनुवाद को नयी दिशा और दृष्टि प्रदान की । रामायण, महाभारत भारतीय अनुवाद साहित्य को युग-युग में नये अर्थ प्रदान करते रहे । 13वीं -14वीं शताब्दी में एक बहुत बड़ा मोड़ आया । जन भाषाओं में इस विषय को लेकर काफी कुछ मंथन हुआ । महाभारत यहाँ पर वरीयता प्राप्त करती है । मूलतः संस्कृत का फ्रेम लेकर ओड़िया में कथा का रंग भर गया ।

आज भी विद्वानों में इस बात को लेकर मतभेद है कि महाभारत (ओड़िया) के रचनाकार सारला दास एक व्यक्ति थे, अथवा लंबे समय में कई व्यक्तियों ने क्रमान्वय में इतनी बड़ी रचना की । जो हो, सारला महाभारत का भाषागत, रचनागत, शास्त्रीय अध्ययन करने पर इसमें उपलब्ध ढांचा बहुत समृद्धि की सूचना देता है । सच कहा जाए तो ओड़िया में संस्कृत - पुराण में अनुवाद को दिग्दर्शन देने वाला यह प्रथम महाकाव्य है ।

भारतीय साहित्य में ऐसा अनुवाद कार्य छुटपुट रूप में कई जगह हुआ है । परंतु ओड़िया में इसने एक समृद्ध परंपरा का रूप धारण कर लिया । राजनीतिक परिस्थितियों के कारण ओड़िशा की समृद्धि रुक गई थी । पूरा क्षेत्र एक तरह से मुख्य धरती से कट गया था । बैल गाड़ियों से आवागमन तो चलता रहा, परंतु व्यापक प्रवाह के प्रमाण नहीं मिलते । अतः देश की सामान्य जनता श्रीजगन्नाथ जी के नाम से तो परिचित थी, परंतु संस्कृत से दूर होती गई । इसमें बड़ा नुकसान यह हुआ कि हम नयी पीढ़ी में प्राचीन ज्ञान की धरोहर और अनुभव की संवेदना दोनों से प्रत्यक्ष संपर्क नहीं रख पाये । धीरे-धीरे भाषा भी ओड़िया के रूप में यहाँ संस्कृत से अपभ्रंस होते हुए उसकी उत्तराधिकारी बनी । परंतु उस अनुभव के बिना यहाँ गहरा परिचय अधूरा था । अतः सबसे पहले पंचरात्र (रामायण, महाभारत, गीता, भागवत और ब्रह्मसूत्र) इनका प्रचलित भाषा में रूपांतरण बहुत जरूरी था । मूल संस्कृत से जनता का संपर्क ही नहीं था । केवल कुछ धार्मिक कर्म-कांडों के प्रयोग तक सीमित हो गया था । अतः जनता का बौद्धिक स्तर भी आर्थिक मेरूदंड टूटने के कारण चरमरा गया । उस समय के रचनाकारों ने लोक तत्व को उसमें शामिल कर लोकाभिमुखी बनाया । एकबार फिर से इस नयी शैली ने जनता के हृदय में जगह बना ली ।

इस परंपरा में श्रीजगन्नाथ दास का नाम सर्वाधिक महत्वपूर्ण रहा है । श्रीमद्भागवत को इन्होंने नौ अक्षर के छन्द में ढाला । उनको जहाँ उचित लगा वहाँ पात्रों में थोड़ा फेर-बदल किया । मूल कथानक का ढांचा उन्होंने अक्षुण्ण रखा । इस अनुवाद में नौ अक्षरों वाला छन्द इतना प्रसिद्ध हो गया कि आगे चलकर इसका नाम 'भागवत छन्द' पड़ गया । दास जी के सामने पाठक के रूप में बहुत बड़ा वह समुदाय था जो संस्कृत बोलना भी नहीं जानता था । दासजी ने अच्छे स्तर की ऐसी ओड़िया चुनी जो पूरे राज्य में आसानी से समझी जा सके । भागवत तो दर्शन की कसौटी है । लेकिन दासजी कहीं भी उसे चिरायते (कड़वी)की घूंट नहीं बनाते । जहाँ भी भागवत में दर्शन आता है, दासजी के लेखन में वह सहजबोध और सरल भावपूर्ण बन जाता है । अपनी मार्मिकता के कारण वह पाठक की अपनी निधि बन

जाता है। उन्हीं की तरह रामायण के रचनाकार बलराम दास श्रीमंदिर में बैठकर चौदह अक्षर वाले छंद में जगमोहन रामायण का अनुवाद कर देते हैं। पूरी वाल्मीकि रामायण से यह कुछ अर्थ में भिन्न है। कहीं वे प्रकृति के अति सूक्ष्म विस्तार का वर्णन करते हैं तो कहीं उनमें हलचल करती दुनिया खुद ब खुद उभर आती है। यह अनुवाद इस अर्थ में भी विशेष है कि यहाँ उभय भाषा और अनुवादक सामान्य जनता से घुले-मिले लगते हैं।

इसमें बलराम दास ने नौ के बदले चौदह अक्षरों का प्रयोग किया। कथानक के क्षेत्र में भी उन्होंने काफी जोड़-घटाव किये। इतना ही नहीं समकालीन जीवन मूल्यों की बदलती छाया भी इस अनुवाद में स्पष्ट मिल जाएगी। बलराम दास ने पात्रों में जो कथा कही है तत्कालीन युद्ध, सामाजिक आचार-विचारों और जीवन में बदले-बिखरे भावों को एकत्रित किया। यही कारण है कि ओड़िया में बलराम दास खूब पढ़े जाते हैं। परंतु यह पठन जगन्नाथ दास की तरह विस्तार लाभ नहीं करता। भागवत टुंगियों में भागवत के साथ दांडी रामायण को स्थान देने से कोई रोक न सका, परंतु वे वाचन जगन्नाथ दासी भागवत का ही ज्यादा करते रहे।

इसी प्रकार गीता के अनुवादों में व्यापक रुचि ली गई है। हर कवि ने अपने-अपने ढंग से गीता की रचना (अनुवाद) की है। उसका ब्रह्म ज्ञान, तत्व दर्शन और योग संबंधी दृष्टिकोण प्रत्येक में भिन्न-भिन्न ढंग से वर्णित हुआ। श्रीमद्भगवत गीता की लोकप्रियता इन अनुवादों के कारण खूब बढ़ी। छोटा-सा ग्रंथ होने के कारण इसमें जोड़-तोड़ की सुविधा अनेक हैं। गीता को गीतों के रूप में ढाल दिया गया। गीता को भजनों के रूप में रचा गया। गीता को वार्तालाप का (अर्जुन-कृष्ण संवाद) रूप देकर खूब लोकप्रिय ढंग से प्रस्तुत किया गया। उसके दर्शन को पीस-पीस कर बारीक किया गया। कभी उसे पिंड-ब्रह्मांड के तत्व की ओर मोड़ा गया। कहीं पर उसमें सृष्टि तत्व (मनुष्य की जन्म प्रक्रिया) के रूप में गाया गया। विराट रूप को लेकर अगणित उद्भट कल्पनाएँ भी मिलती हैं। गीता के अनुवाद में अधिकांश मध्यकालीन कवियों ने अपनी-अपनी विशेषताओं को प्रकट किया। अर्थात् ये रूप वैविध्यपूर्ण बने।

गीता के अनुवादों में ब्रह्म सूत्र भी नहीं छूटे। इनका अनुवाद बहुत अधिक विक्षिप्त ढंग से हुआ है। ओड़िशा में निर्गुणिया संतों की धारा उस समय काफी प्रचलित थी। अर्थात् जनता घर-घर में निर्गुण ब्रह्म के गीत गुनगुनाने लगी। इन गीतों ने काफी लोकप्रियता हासिल की। योग साधना और ब्रह्म तत्व दोनों का मिला जुला रूप लोक भाषा में खूब सहज भाव से प्रचलित हुआ। इस युग में ब्रह्म वैवर्त पुराण, नृसिंह पुराण, विष्णु पुराण, मार्कंडेय पुराण आदि का अनुवाद हुआ। यहाँ तक कि इन निर्गुणिया संतों में किसी ने वेदों के तत्व लेकर उन्हें भी गीता का रूप दिया। इनमें लेकिन संवाद रूप में गोरखनाथ का प्रवेश था। ऐसा एक ग्रंथ 'शिशु वेद' के नाम से बहुत प्रचलित था। इस छोटी-सी रचना ने ब्रह्म

निरूपण को लेकर सहज ढंग से अनेक तत्वों को पुनः व्याख्यायित किया है । यद्यपि अभी तक इस रचना की तिथि निर्धारित अन्तिम रूप से नहीं हो पाई । फिर भी कुछ लोग इसे गोरखनाथ कृत प्राचीन ग्रंथ का छाया रूप मानते हैं ।

सब अनुवादों में पंचसखा युगीन कवि जसवंत दास की रचना काफी लोकप्रिय हुई । हम पहले ही कह चुके हैं कि उस समय ओड़िशा में संस्कृत का प्रचलन काफी हद तक घट गया था । लोगों तक आम जनता को पहुँचाने के लिए संस्कृत की उपयोगिता बहुत कम हो गई थी । बहुत बड़े-बड़े लोगों तक का संस्कृत भाषा से परिचय बहुत कम हो गया था । अर्थात् अच्युतानन्द, शिशु अनन्त और जसोवन्त तीनों ने काव्य रचना के लिए बड़ी कृतियों के बजाय छोटी कृतियों को महत्व दिया । इनके सामने नाथ और सिद्धों की वाणियाँ प्रचलित रूप में आ चुकी थी । अतः इन संतों के भजन और जणाण बहुत बड़ी संख्या में नाथ और सिद्धों की वाणियों का सुन्दर रूपांतर है । यद्यपि वे जगह-जगह कृष्ण, बलराम, यशोदा, राधा, वृंदावन, यमुना का नाम लेते हैं और उसमें उनका वर्णन भी आता है । परंतु इन कृतियों में (संख्या भाषा की तरह) विस्तृत योग साहित्य का टुकड़ों में परिप्रकाश दिखाई देता है । बार-बार योग के सूत्रों को इन्होंने खंगाला है । यही धारा विभिन्न रूप में गीतों के जरिये ओड़िया जन मानस को रंजित करती रही है ।

सत्ता में क्रमशः परिवर्तन आया । गजपति महाराजाओं के काल में ओड़िया साहित्य को विकास का जो अवसर मिला, वह आगे अक्षुण्ण नहीं रहा । मुगलों के आने के बाद उत्कल में केंद्रीय सत्ता छिन्न हो गई । चारों तरफ छोटे-छोटे रजवाड़े और जमींदार सिंहासन पर बैठ गये । इनमें साहित्य प्रेम तो था । अतः कवि और कलाकारों को प्रश्रय दिया जाता था । परंतु इनकी दृष्टि में वह विराटता नहीं रही । इनका दर्शन भी अध्यात्म से हट कर दैहिक-भौतिक हो गया । सच कहा जाये तो हिन्दी के रीतिकाल वाली लगभग सारी विशेषताएँ इनमें उतर गई । कृष्ण के चरित्र से जुड़ी सारी लीलाओं (वृंदावन लीला, या गोपी लीला या बाललीला, पौगंड लीला, मथुरा लीला, द्वारिका लीला), इन विविध रंग और रसों वाली लीलाओं के लिए इन कवियों ने भागवत को मुख्य बनाया । इसके अलावा परवर्ती काल में जो प्रत्यक्ष शृंगार भाव आ गया उसको भी उन्होंने ग्रहण किया । उन्हीं के अनुसार अथवा उन्हीं की छाया पर रीति कालीन पद्यावली का निर्माण होता है । उदाहरण के लिए जैसे साहित्य में राधा आगमन और उसका पूरा रीतिकाल पर प्रभाव सिद्ध है । हिन्दी में इसे हासकाल का साहित्य कहा गया है । परंतु ओड़िया में ऐसा नहीं कह सकते । क्योंकि केवल एक कृति 'वैदेहीश विलास' में रामायण का अनुवाद इतना अद्भुत बन पड़ा है कि काव्यात्मकता की दृष्टि से विश्व साहित्य में वह अतुलनीय है । उपेन्द्रभंज की इस कृति ने ओड़िया रीतिकाल को तुलसी दास की तरह बहुत बड़ी मर्यादा प्रदान की । भागवत का अनुवाद जितना सरल और सहज तथा बोध गम्य बना है, भंज का अनुवाद एक दम दूसरे

छोर पर है । 'ब' अनुप्रास से रचित इस कृति की प्रत्येक पंक्ति विविध अर्थी है । कवि की भाषा और छन्द पर इतनी गहरी पकड़ है कि 'वैदेहीश विलास' स्वयं वाल्मीकि से भाषा के स्तर पर पूरी तरह मुक्त हो जाती है । कथा का ढांचा भंज ने लगभग सुरक्षित रखा है । परंतु छन्द , अलंकार, गुण, भावाभिव्यंजना आदि की दृष्टि से अद्भुत अभिनवता के दर्शन होते हैं । यही कारण है कि 'वैदेहीश विलास' का काव्य - रूप में पुनर्लिखित रूप पूरे ओड़िया साहित्य में सबसे बड़ी चुनौती है । उपेन्द्रभंज ने 'लावण्यवती', 'कोटि ब्रह्मांड सुन्दरी' आदि अन्य उपाख्यानात्मक काव्यों की रचना की है । इसके अलावा उन्होंने सैकड़ों मुक्तक रूप में जणाण और भजन भी लिखे । परंतु अनुवाद की दृष्टि से सबसे महत्वपूर्ण और प्रभावशाली रामकथा ही बनी । इसकी सबसे बड़ी विशेषता उच्च मूल्यों को भी महत्व देना है । यह रीतिकाल की परंपरा के अनुकूल नहीं पड़ता । इसलिए पूरे रीतिकाल में उसको मर्यादा देने के लिए 'वैदेहीश विलास' का स्थान सर्वाधिक महत्वपूर्ण है । भंज भाषा के धनी हैं, संस्कृत के प्रकाण्ड विद्वान हैं, काव्यशास्त्र के मर्मज्ञ हैं । और लोक रुचि की भी उन्हें गहरी पहचान है । अतः रामकथा की परंपरा को अभिनव रूप देने के लिए उन्होंने श्रेष्ठतम शब्दों में पूरी तरह ओड़िया शास्त्रीय छन्दों में बांध कर इस विलास को प्रस्तुत किया । जैसे आजकल ओड़िया में रचे ग्रंथों के संस्कृत अनुवाद की परंपरा चल पड़ी । यह उस प्रकार का अनुवाद नहीं है । भंज ने तुलसीदास की तरह राम को मर्यादा पुरुषोत्तम के रूप में प्रस्तुत करने की बजाय धनुर्धर के साथ-साथ लीलाबिहारी के रूप में राम को रूपायित किया है । गोपबंधु दास ने कहा था - "हे भंज ! तुम्हारे गीतों को खेत में हल चलाता कृषक भी तल्लीन होकर गाता है ।" इस उक्ति का तात्पर्य यह है कि ओड़िया में तत्सम शब्दावली अथवा संस्कृत- निष्ठ काव्य परंपरा कोई समस्या पैदा नहीं करते वरं उसकी रीति-बद्धता और कला सौष्ठव को निखार देती है । भंज की राम कथा का अनुवाद इसी कारण बलराम दास के बाद सर्वाधिक लोक प्रिय हुआ । चाहे उसके विभिन्न अर्थों को निकालने के लिए विभिन्न विद्वानों को टीका टिप्पणी का सहारा लेना पड़े । परंतु सामान्य पाठक राम बोध के लिए कृति को पढ़ कर मुग्ध हो जाता है । तात्त्विक दृष्टि में भंज ने राम और राम कथा को परंपरा से हटकर कहीं नहीं रखा । उन्होंने ओड़िया समाज को एक मूल्यबोध से जोड़े रखने में सहायक बहुत बड़ी कृति दी है । यही कारण है कि कलात्मकता का खोखला आधिक्य दिखाने के कारण हिन्दी का एक कवि कठिन काव्य का 'प्रेत' कहलाता है । परंतु उपेन्द्र भंज उससे भी अधिक दुरुह, दुर्बोध्य और संश्लिष्ट कृति के बावजूद पूरे ओड़िया साहित्य में 'कवि सम्राट' कहलाते हैं । इस प्रकार अनुवाद के क्षेत्र में भंज की उपलब्धि अत्यंत महत्वपूर्ण है, और दिगदर्शक भी । उन्होंने विषय चयन, भाषा चयन, स्तर चयन, कला चयन आदि विभिन्न दृष्टियों से विलास में विशिष्ट प्रयोग किया है । इसी कारण वह युग ही नहीं, पूरा साहित्य गौरवान्वित हुआ था । इसी वजह से भंज को अनुवाद के क्षेत्र में इतनी बड़ी सफलता मिलने के बावजूद हिन्दी अनुवाद में उनके विलास का गद्य अर्थ रूप देना ही

संभव हुआ है । वह भी प्रत्येक पंक्ति का टीका और टिप्पणियों, फुट नोट के साथ । अनुवाद के लिए इसके अलावा और कुछ रास्ता न बचा था । डॉ. सुरेश कुमार नन्द ने अपने संस्कृत ज्ञान के बल पर इस ओड़िया कृति का मर्म पहचाना था । पहली बार ओड़िशा में किसी कृति का अनुवाद अपने आप में उनके लिए शोध का विषय बन गया । भंज का हिन्दी रूप गद्य में उभर कर आया, पाठक उसके कथा, पात्रों के चरित्र, चित्रण, भावाभिव्यंजना आदि से परिचित हो जाता है । इन सबके बावजूद वह भंज की कविता का दर्शन कभी नहीं कर पायेगा । इस अनुवाद के जरिये भंज की काव्य प्रतिभा का अनुमान जरूर लगाया जा सकता है, लेकिन भंज काव्य का क्या रसास्वादन संभव है ? उनके छंद कुशल, अनुप्रास सौष्ठव की कल्पना भी नहीं हो सकती ।

उपेन्द्र भंज का युग गहन कला और समृद्ध साहित्यिक गति-विधियों का युग था । उन्होंने चित्र बन्ध काव्य, एक अनुप्रास में पूरा काव्य, बिना मात्रा के पूरी कविता, आद्य अक्षर अथवा अंतिम अक्षर हटाकर अर्थ परिवर्तन जैसे अनेक प्रयोग किये हैं । इनसे उनकी उच्चकोटि की काव्य चातुरी के प्रमाण मिलते हैं । हालांकि प्राचीन संस्कृत साहित्य में इन उदाहरणों की कमी नहीं है । परंतु उपेन्द्र भंज ने ओड़िया में इस संबंध में अनेक अभिनव प्रस्तुतियाँ दी हैं । इस प्रकार आज हम देखते हैं भंज ने अनुवादों में श्रेष्ठ कलात्मकता का प्रदर्शन किया है । परंतु उनकी काव्य कृतियों को हिन्दी रूप देना लगभग असंभव-सा लगता है । केवल 'वैदेहीश विलास' के अनुवाद में जो कठिनाइयाँ आई उनके आधार पर पिछले तीन दशक में किसी और अनुवादक ने वैसी दूसरी कृति को हाथ लगाने का साहस नहीं किया । इसमें सांस्कृतिक अथवा तत्कालीन सामाजिक ओड़िया साहित्य अपनी संस्कृतनिष्ठ परंपरा के लिए प्रसिद्ध है । परंतु भंज ने इसको पराकाष्ठा पर पहुँचा दिया । यहाँ भाव, भाषा में इतने लिपटे होते हैं कि शब्द बदलते ही सारा सौन्दर्य, सारा सिस्टम चूर-चूर हो जाता है । ऐसे में भाव भी किरच-किरच होकर थोड़ा बहुत ही बच कर आ पाता है ।

भंज के अलावा रीतिकाल में अनुवाद के लिए इस आदर्श को अपना कर अन्य कई कार्य संपन्न हुए हैं । व्यापक तौर पर रीतिकाल में भागवत वर्णित यशोदा की मातृ भावना, गोपियों का कृष्ण प्रेम, उद्धव का कृष्ण के साथ सख्य, कृष्ण की कुरुक्षेत्र में भूमिका आदि प्रसंग इन कवियों ने (कवि सूर्य बलदेव रथ, अभिमन्यु सामन्त सिंहार, देवदुर्लभ दास, अरक्षित, माधवि दासी आदि) कवियों की अधिकांश फुटकर रचनाओं में इस अनुवाद धारा के दर्शन हो जाते हैं । इनमें खूब लोकप्रिय रचना, मथुरा मंगल, रुक्मणी हरण, हैं । इन रचनाओं में कवि आंलकारिक छटाओं का प्रदर्शन ज्यादा करता है । कहीं-कहीं (जैसे मथुरा मंगल)... में मार्मिकता चरम सीमा को छू जाती है । किन्तु इन सारे प्रसंगों को मूल भागवत से लिया गया है । रचनाकारों ने कुछ अंश लोक प्रचलित भावनाओं से लेकर जोड़ा है । वैसे संगीत शास्त्र में इनका अवदान अत्यंत महत्वपूर्ण है । विषय वस्तु की दृष्टि से ये अनुवाद अपनी

मर्यादा नहीं लांघते । हालांकि यह कथन विवादास्पद हो सकता है कि इन रीतिकालीन कवियों की प्रेम व्यंजना भागवत के अनुरूप नहीं है । इनकी घोर शृंगारिकता अपने युग की उपज है । इनमें दिया गया प्रेम वर्णन, विरह वर्णन, नखशिख वर्णन, ऋतु वर्णन आदि में उपलब्ध शृंगारिकता घोर देहज भाव वर्णन आदि रजवाड़ों के युग की भोग-विलास वादी मानसिकता की देन है । इसमें माइक्रोस्कोप लगाकर देखने पर भी कहीं आध्यात्मिकता के दर्शन नहीं होते । अतः इनकी इस संदर्भ में उपेक्षा करनी पड़ती है ।

रीतिकाल का यह साहित्य मूल चेतना में अनुवाद की एक नई दिशा प्रस्तुत करता है । जगन्नाथ दास अनुवाद में जहाँ आध्यात्मिकता की चाषणी में पगा था । रीतिकाल वालों ने उन्हीं भागवत प्रसंगों को देहज सुख एवं भोग विलास के रस में पखारा है । बाकी मूल कथानक में बहुत अधिक छेड़-छाड़ करने में उनके पास समय नहीं था । उनके सामने विशाल जन समुदाय नहीं था । कोई राजा या जमींदार होता, अथवा उनका दरबार या राजसभा होती । अतः उनका ध्यान रचना के नाम पर, अनुवाद करते समय ध्यान उपरोक्त कुछ खास-खास मुद्दों पर ही रहता । यही कारण है कि इन कवियों का कैनवास बहुत विस्तृत नहीं होता । प्रेम, विरह, शृंगार, संयोग, सौंदर्य वर्णन आदि के बहुत थोड़े से चिर परिचित स्थलों में सीमित थे । यह कविता इसी दृष्टि से देखी गई और पढ़ी गई । इनमें प्रत्येक कविता का सूत्र पाना बहुत आसान है । भाषागत सौंदर्य उनकी सबसे बड़ी खासियत है । यह सच है कि इस समूह की कविता में सूफी प्रभाव लगभग नहीं के बराबर है । जब कि हिन्दी में स्थिति भिन्न है । उसी तरह रीतिकाल की कविता में भाव विदग्धता की ये जो कमी दिखाई देती है, उसकी जगह पर कवियों ने वाक् चातुर्य से कथन भंगिमा पूरी की है । जगह - जगह इन कवियों ने संस्कृत के परंपरागत अनेकार्थी शब्दों का प्रयोग करते हुए एक आकर्षक काव्य संसार तैयार किया ।

हिन्दी काव्य जगत में इस बीच अरबी फारसी प्रभाव से उर्दू विकसित हुई । परंतु ओड़िया में यह प्रभाव बहुत क्षीण था । जब भी मुसलमान आये और उन्होंने श्रीजगन्नाथ जी पर आक्रमण किया तो उनकी भाषा, उनका काव्य सौंदर्य, उनको कुछ भी अच्छा नहीं लगा । कबीर की तरह इन कवियों में या परवर्ती काल में कहीं कभी व्यंग्योक्ति, छलनामयी, छींटाकशी नहीं मिलती । उस समय के पूरे ओड़िया साहित्य में शायद कहीं श्रीजगन्नाथ को हाथी के पीछे घसीटकर मुसलमान की तरह राजमार्ग पर ले जाने का चित्र जरूर है । लेकिन वहाँ मुसलमान या इस्लाम पर कहीं कोई कटु टिप्पणी नहीं है । केवल यथास्थिति का अत्यंत करुण हृदय विदारक चित्र ही दिया गया है । खैर, इस विषय वस्तु का अनुवाद से दूर का भी लेना-देना नहीं है । परंतु अब कविता से हटकर गद्य युग आ रहा है । इसकी पूर्व सूचना अवधूत की रचना में पहले दी है । कहीं - कहीं पुराणों की अनूदित कृतियाँ इस काल में भी उपलब्ध हुई हैं ।

अब कुछ हद तक बौद्ध प्रभाव और ज्यादातर वैष्णव और जगन्नाथ से अनुप्राणित भीमभोई की रचना में अनुवाद फिर एक बार उभरकर सामने आता है । भीम भोई ने स्तुति चिन्तामणि में दो सौ भजन लिखे । इनमें ज्यादातर गुरु बन्दना और जगन्नाथ के प्रति प्रेम भाव से भरे हैं । बाकी सारे भजन एक - एक कर उपनिषदीय भाव धारा की छाया में रचे गये हैं । ये विवाद का विषय है कि भीम भोई जन्मांध थे, बाद में अन्धे हुए अथवा अन्धे नहीं थे या वे आलंकारिक रूप से अंधे थे । इस संबंध में विद्वानों ने बहुत चर्चा की है । परंतु भीम उभय विनम्र एवं उग्र थे । इसलिए उन पर जगन्नाथ मंदिर पर आक्रमण करने तक का आरोप लगाया जाता है । किन्तु भीम का स्वभाव मूलतः विनयी था । यह विनय भावना छलना पूर्ण व्यंजित विनय नहीं थी । कहते हैं भीम ने तो अक्षर ज्ञान भी प्राप्त नहीं किया था । तो फिर भक्ति की यह विराट वन्या कहाँ से आई ? इसमें भीम की विनय शीतलता ही ज्यादा काम करती है ।

भीम के साहित्य में स्तुति चिन्तामणि के अलावा अनेक प्रकार के छोटे-छोटे दर्शन से भरपूर ग्रंथ मिलते हैं । इनमें ज्यादातर गोरख और अन्य निर्गुणिया संतों का रूप मिलता है । हठ योग की परंपरा का निर्वाह करते हैं । भीम की इन छोटी - छोटी रचनाओं में अनेक राग -रागिणियों का प्रयोग हुआ है । उन्होंने संस्कृत का कोई छन्द प्रयोग नहीं किया । परंतु भीम संस्कृत के ऋण से बच नहीं सके । गीता को अनेक प्रकार से पुनर्रचित किया है । इनमें प्रमुख है आदि अंत गीता, ब्रह्म निरूपण गीता, अष्टक बिहारी गीता, आदि कई ग्रंथ उपनिषदों के ऋणी हैं । यहीं पर उनमें बौद्ध धर्म के प्रति उदासीनता मिलती है । इस आधार पर भीम भोई की इन छोटी-छोटी रचनाओं में उपनिषद, भागवत और कृष्ण चरित संबंधी छाया स्पष्ट दिखाई देती है । भीम भोई की ये लघु रचनाएँ उनके अनुवाद कौशल का एक और नमूना हैं । इनमें भी कृष्ण, अर्जुन, गोरख संबंधी संवाद मिल जाते हैं । इनकी भाषा अब संस्कृत से पूरी तरह हटती हुई दिखाई देती है । आश्चर्य इस बात पर भी है कि न भीम अर्धशिक्षित थे, न शिक्षित थे और न शिक्षित होकर बहु पठित थे । उनका कहना है , गुरु कृपा से ज्ञानोदय हुआ है । उसीसे वह सब कुछ लिख पाये हैं । महिमा धर्म के महान संत बाबा वैद्यनाथजी का कहना है कि भीम ही नहीं इस युग के सभी भीमानुयाई संतों का दृष्टिकोण शान्त एवं शिष्ट था । वे उपनिषदों को खूब गहराई से ग्रहण करते, अतः भीम साहित्य में उपनिषदीय भाव धारा का लोकापर्ण होता है । अर्थात् उसे लोक की दृष्टि से पुनः रोपण किया गया है, और इसमें कवि ने रोचकता तो भरी है परंतु काव्यात्मकता (जो गुण रीतिकाल में था) कम हो जाता है । भीम की भाषा जगह - जगह तर्क भाषा से बहुत करीब हो जाती है । वे मनुष्य की इस वर्तमान दुःस्थिति के लिए भगवान को नहीं, बल्कि स्वयं मनुष्य को उत्तरदायी ठहराते हैं । कवि में इसलिए जगह-जगह भगवान पर, गुरु पर अनेक स्थलों पर प्रश्न उठाता है । मंदिर में ईश्वर का रूप उसके लिए एकदम निरर्थक है । विधर्मियों द्वारा प्रचार का उन्होंने प्रतिशोध किया । अनुवाद के जरिये ।

भीम से कुछ पहले हरिदासजी पुरी में अपने भविष्य द्रष्टा रूप के कारण प्रसिद्ध हो चुके थे ।

उन्होंने मालिका (भविष्य वाणी) परंपरा में अनेक -अनेक बातें लिखी हैं । इसीमें गीता शीर्षक देकर (हनुमन्त गीता, नीलमाधव गीता) कुछ रचनाएँ की हैं । इनमें नाम साम्य के अलावा गीता के साथ कोई संपर्क नहीं रखता । परंतु हरिदास जगन्नाथ भक्त होने के नाते अपनी कृतियों में जगन्नाथ की महिमा गाना कभी नहीं भूले । परवर्ती काल में भीम भोई ने महिमा स्वामी की बंदना में बहुत कुछ लिखा । उन्होंने श्रुति निरोध गीता, अष्ट विहारी गीता आदि अंत गीता, ब्रह्म निरूपण जैसे गीता नाम धारी अनेक ग्रंथ लिखे हैं । इनमें भीम भोई ने कहीं योग की धारा व्यक्त की है, कहीं महिमा परंपरा का वर्णन किया है, तो कहीं निर्गुण ब्रह्म की भाव धारा का प्रचार किया । अंधविश्वासों का घोर विरोध और ब्राह्मण वाद का तिरस्कार और भक्ति भावना का गूढ़ अर्थ निरूपण किया है । इसमें गीता के मूलतत्व का कहीं - कहीं समावेश दिखाई पड़ता है । इस आधार पर गीता के तत्व की छाया भले ही दिख जाए । भीम भोई सूक्ष्मतः श्रीमद्भगवत गीता और उपनिषदों से प्रभावित थे और उनसे परिचित भी थे । लेकिन इन रचनाओं को उन मूल कृतियों से इतनी दूर पाते हैं इसलिए सीधे या परोक्ष अनुवाद कहने से भी मन घबराता है । भीम भोई के विराट साहित्य में सब कुछ को मौलिक भी नहीं कह सकते परंतु इनमें सारला दास या जगन्नाथ दास की तरह छाया अनुवाद नहीं मिलता । वे एक नये ढंग से ब्रह्म निरूपण, भक्ति तत्व की चिंता और जीवन तत्व पर प्रकाश डालते हैं । यही कारण है कि आज गीता और भागवत पढ़ने वाले लोग भीमभोई रचित गीतावली को उसी आदर और श्रद्धा के साथ पढ़ते हैं । यह युग एक संधिकाल का द्योतक है । इसमें निश्चित रूप से हर तरह से जीवन मूल्यों का हास दिखाई देता है , ऐसे समय में उच्च मानवीय धारा का प्रवाह करने वाला यह कन्ध व्यक्तित्व एक विस्मय है । सच कहा जाए तो ओड़िया साहित्य में आधुनिकता की नींव प्रदान करने में भीम भोई का स्थान निर्विवाद है .. । यह बात अभी भी अनुसंधान का विषय है कि उनके ग्रंथों में अनुवाद का अंश कितना है । किन्तु भीम भोई के बाद अंग्रेजों ने इस संबंध में क्रांति पैदा कर दी ।

ओड़िशा में आधुनिकता के तीन स्तंभ माने जाते हैं - ये हैं -

1. फकीर मोहन सेनापति,
2. गंगाधर मेहर और
3. राधानाथ राय ।

फकीर मोहन सेनापति ने स्पष्ट अनुभव किया था कि अब प्राचीन पारंपरिक संस्कृत साहित्य के अनुवाद के आधार पर नूतनता की आधारशिला नहीं रखी जा सकती । यद्यपि उन्होंने मुद्रण यंत्र और पत्रकारिता के क्षेत्र में नये कदम उठाये थे । नई चेतना का वहन करने वाले कथानक और उपन्यास तक रचे थे । उन्होंने ईश्वरचंद्र विद्यासागर के जीवन चरित को ओड़िया में रखा । रामायण को ओड़िया में रखा, महाभारत को ओड़िया में अनुवाद किया । उनका गीता और उपनिषद का भी कुछ अनुवाद

ओड़िया में उपलब्ध है । इससे उनके जीवन की धारा और दार्शनिक व्यक्तित्व का परिचय मिलता है । फकीर मोहन सेनापति ने इसके जरिये ओड़िया में अनुवाद की परंपरा को पुनर्जन्म दिया । उसी प्रकार राधानाथ राय उस समय के प्रसिद्ध अनुवादक थे । उन्होंने मेघदूत का प्रत्यक्ष अनुवाद प्रस्तुत किया ।

राधानाथ में परोक्ष अनुवाद की भरमार है । ‘चंद्रभागा’, नन्दिकेश्वरी’, ‘उषा’, ‘पार्वती’ आदि काव्यों में यूरोपीय प्रेम काव्य की छाया स्पष्ट दिखाई देती है । इनमें प्रेम की शैली, त्याग और बलिदान का परिचय, जीवन का लक्ष्य आदि अनेक बातों में यूरोपीय पात्र बोलते नजर आते हैं । इस बात को लेकर ओड़िया के आलोचकों ने उन्हें कभी नहीं बख्शा । लेकिन राधानाथ राय का पश्चिम से आक्रांत साहित्य भी काफी गौरवपूर्ण रहा है । यही कारण है कि उसके सारे दोष ढक जाते हैं । परंतु अच्छे अनुवाद के लिए दृष्टि जब घूमती है तो तत्कालीन रायबहादुर राधानाथ को कैसे आँखों से ओझल करें ? उन्हीं दिनों गंगाधर मेहेर ने मुकुटधर पांडे, गयाधर स्नेही और कामताप्रसाद गुरु आदि के संपर्क में ‘रामचरित मानस’ का अनुवाद किया था, एवं कुछ अंश विनय पत्रिका के और कुछ अंश छायावादी कवियों की छिट-पुट रचनाओं के अनुवाद किये थे । इस प्रकार अब पौराणिक अनुवादों की परंपरा से हटकर साहित्य में अनुवाद के क्षेत्र में भी एक नये युग का सूत्रपात होता है ।

इस युग के प्रारंभ में आधुनिकता का प्रवेश तो चारों ओर हो जाता है । पर साहित्य में आधुनिकता के कोई लक्षण दिखाई नहीं देते । यहाँ तक कि पहली -दूसरी की पाठ्य पुस्तकें ओड़िया में नहीं थी । इसका फायदा उठाकर सुकान्त भटाचार्य ने कहा ओड़िया एक भाषा नहीं है । सारे ओड़िया में आग-सी लग गई । यह ओड़िया स्वाभिमान के लिए बहुत बड़ी चुनौती थी । फकीर मोहन सेनापति, मधुसूदन राओ, गंगाधर मेहेर आदि ने हर कमजोर दिशा पर काम करना शुरू किया । रीतिकाल तक जो समृद्ध था, आधुनिकता के मान दंड पर खड़ा होने में उसे देर नहीं लगी । किसी स्तर की पाठ्य पुस्तकों का कोई अभाव नहीं रहा । विश्व साहित्य का एक से बढ़ कर एक स्तंभ ओड़िया भाषा में उपलब्ध होने लगा । चारों ओर लहर फैल गई । इस स्वाभिमान में सत्यवादी ग्रुप ने तो क्रांति ही मचा दी । उधर रेवेसा कॉलेज में पढ़ी शान्त भाव से नई पीढ़ी पटना, कोलकाता जाकर अपने को नये युग के अनुरूप प्रस्तुत कर रही थी । नवजागरण के ये अग्रदूत हर दृष्टि में सुसंस्कृत होकर आगे बढ़ रहे थे । भारतीय भाषाओं का सर्वेक्षण जब हुआ, ओड़िया किसी से पीछे नहीं थी । यह सच है कि छोटे-छोटे रजवाड़ों के अधीन रहकर इस जाति की सारी शक्ति बिखरी हुई थी । यही कारण है मधुसूदन दास एक अलग राज्य के लिए पागल थे तो उधर गोपबन्धु दास आजादी के पीछे दीवाने थे । इसी स्वाभिमान वश उत्कल सम्मिलनी अपने अधिवेशनों में एक ओड़िया भाषी राज्य की मांग पर बराबर जोर देती रही । गांधीजी के अनुयायी पंडित गोपबन्धु दास ‘मणिष गढ़ा कारखाने’ में बैठकर उन्नत मानव जाति के बीज वपन कर रहे थे । हालांकि उनका वन विद्यालय का प्रयोग स्थूलतः असफल रहा । उसी तरह एक संगठित उत्कल राज्य

का सपना भी मधुबाबू के लिए अधूरा रह गया । परंतु उत्कल में शिक्षा जगत में क्रांति जरूर आई । देश में भाषा एवं सांस्कृतिक दृष्टि से राज्य गठन का पहला श्रेय ओड़िशा को 1937 में मिला और उसके बाद कुछ वर्ष की अस्वाभाविक शांति के बाद ओड़िशा ने भारतीय मानचित्र में अपना महत्व पूर्ण स्थान बना लिया ।

दर असल इस नयी परिवर्तन धारा में अंग्रेजों की भूमिका कम नहीं थी । उनका उद्देश्य कुछ भिन्न था । 1803 से 2003 की दो शताब्दियों के बीच ईसाई धर्म प्रचार के कार्य में, शैली में और लक्ष्य में कोई परिवर्तन नहीं आया । ईसाई मिसनरियों का यह खयाल था कि ओड़िशा के लोग भोले, सीधे-साधे ही नहीं, बहुत कुछ सरल, सीधे और पारंपरिक दृष्टि में भाग्यवादी भी हैं । उनको ईसा मसीह की शरण में लाने के लिए आर्थिक सुविधाएँ, कुछ पठनीय सुविधाएँ एवं ओड़िया में मधुर प्रवचनों की जरूरत है । यह कार्यक्रम कटक, ब्रह्मपुर, बालेश्वर जैसे शहरों में चला । बाद में दूर कोरापुट, सोनपुर, फुलवाणी, सुन्दरगढ़ जैसे पर्वतीय एवं वनवासी क्षेत्रों में भी पूरे जोर से चला । इसमें सबसे महत्वपूर्ण भूमिका बाइबल के अनुवाद की रही । कटक के मिसन रोड और बालेश्वर के मिसन चर्च इस अनुवाद के मुख्य केंद्र बने । ये अनुवाद भाषा की दृष्टि से भले ही कमजोर रहे हों, ईसा मसीह की करुण वाणी वहन करने में पूरी तरह समर्थ हैं । 'देव वाणी' कह कर इस ग्रंथ को मिसन प्रेस में खूब छपवाया और इसका चारों ओर निःशुल्क वितरण किया गया । यही कारण है कि बोंडा जैसे प्राचीनतम आदिवासी क्षेत्र में भी ईसा की वाणी का प्रचार हो सका । परंतु भीमभोई ने अनुवाद के दुरुपयोग को रोका ।

अंग्रेजों के आने के बाद 19वीं सदी में सबसे पहले पादरियों ने बाइबल का आंशिक अनुवाद प्रकाशित किया । लेकिन पूरी बाइबल 1810 ई. में अनूदित हुई । केरी (Kery) साहब ने ज्ञानी पंडितों के साथ मिलकर यह अनुवाद करवाया था । इसके अलावा यहाँ पाठ्य पुस्तकों के रूप में चलाने के लिए कई अंग्रेजी पुस्तकों का ओड़िया रूपांतर निकला ।

A Suttery, W.C. Ley, S. philiphs Reverend, Stubbin आदि पादरियों ने इस प्रकार के अनुवाद बड़ी मात्रा में किये । इनमें प्रमुख हैं - विवाह का नियम पत्र, स्वर्गीय यात्री का वृतांत, चारू पुरातन, शैतान की कल्पना, धर्मयुद्ध आदि पुस्तकें इसी प्रकार के अनुवाद हैं । दर असल देश भर में धर्म प्रचार के लिए ईसाइयों ने विभिन्न भारतीय भाषाओं में बाइबेल के अनुवाद का काम खूब जोरों से चलाया था । इस अनुवाद में साहित्यिक मानदंडों की कोई बात नहीं की जा सकती । लेकिन यह बात सच है कि अंग्रेजी से ओड़िया में गद्य अनुवाद की धारा उन्होंने ही प्रवर्तित की थी । दूसरे प्राचीन स्कूली परंपरा से हटकर आधुनिक ज्ञान के लिए उनमें अंग्रेजी पाठ्यपुस्तकों के अनुवाद की परंपरा शुरू की । इसी नींव पर अन्य साहित्य भी अनुवाद की धारा में आकर डूब जाते हैं । पर तब तक यहाँ मुद्रण की परंपरा शुरू नहीं हुई थी । प्रेस का दरवाजा खुल जाने के बाद छपाई का काम तेजी से होने लगा । इस प्रकार अनुवाद

साहित्य का क्षेत्र व्यापक हो गया । अब अंग्रेजी और अन्य यूरोपीय भाषाओं के साथ साहित्य में आदान-प्रदान का मार्ग खुल गया । आधुनिक ओड़िया में फकीरमोहन सेनापति ने अनुवाद को काफी महत्व दिया । साहित्यिक जीवन में महाभारत, भागवत, हरिवंश, छान्दोग्योनिषद आदि के वे श्रेष्ठ अनुवादक थे । बौद्धावतार काव्य में बुद्ध का जीवन समाया हुआ है । उसी तरह मेघदूत और तुलसी स्तवक राधानाथ के उल्लेखनीय अवदान हैं । यह मानना पड़ेगा कि राधानाथ ने आगे चलकर यूरोपीय कथानक, नाट्य, उपन्यास आदि के आधार पर अनेक रचनाएँ ओड़िया साहित्य को दी । जगमोहन लाला ने ओड़िशा विजय का अनुवाद किया । उनके उपन्यासों में अनूदित रूप खूब आकर्षक लगता था । उन्होंने टमस पारनेल के गाथा काव्य का अनुवाद किया और उसे पाठ्य पुस्तक बनाया गया । जब नया पाठ्यक्रम लागू हुआ तब उसके लिए नई पुस्तकों की खोज हुई । इसमें बंगला से अनूदित पुस्तकें ज्यादा थी, अंग्रेजी से अनूदित कम थी । राधेश्याम कर ने फारसी से भी कुछ ग्रंथ अनूदित किये थे । मस्कोबी का अनुवाद भी उर्दू से हुआ । इस प्रकार विभिन्न स्तरों पर पाठ्यपुस्तकों की कमी को अनुवाद के जरिए कुछ हद तक कम किया जा सकता ।

सुन्दर ढंग से मुद्रित बाइबिल आ गई । कटक, संबलपुर, ब्रह्मपुर, जाजपुर, बालेश्वर, पारलाखेमण्डी, खोर्दा आदि शहरी इलाकों के सभ्य लोगों में बाइबल पढ़ना आधुनिकता का प्रतीक बन गया । इन सब और सरकारी सेवा में लगे छोटे से बड़े तक सभी कर्मचारियों के पास ईसा का प्रेम, करुणा, बंधुत्व का संदेश किसी न किसी रूप में पहुँचने लगा । इससे सबसे बड़ा लाभ यह हुआ कि लोग ओड़िया भाषा के महत्व के प्रति सचेत हो सके । ओड़िया भी सभ्य लोगों के बीच अंग्रेजी के साथ-साथ आदरणीय बनने लगी । शुरू में तो अंग्रेजों ने ऐसा वातावरण दिया था कि 'अंग्रेजी देवों की भाषा है' और ओड़िया सामान्य से भी नीचे स्तर के लोगों की है । जो हो, अनुवाद ने फिर एक बार इस भाषा को नये रूप में दृष्टि दी । बाइबिल के बाद शेक्सपीयर के नाटक और पात्र ओड़िया में अनूदित होकर आये । इससे ओड़िशा के अपने प्रेस को प्रोत्साहन मिला । ग्रीक और रोमन साहित्य के महान कवि अंग्रेजी के जरिये ओड़िशा में प्रवेश करने में सफल हुए । ओडिसी एवं इलियड का अनुवाद ओड़िया पाठकों के लिए बहुत पहले से उपलब्ध हो गया था । पुनर्जागरण काल में जो कविता यूरोप में स्थापित हुई कुछ ही समय में उसका ओड़िया अनुवाद (कभी-कभी हिन्दी और कभी-कभी बंगला के जरिए) ओड़िशा पहुँचा । लेकिन इन अनुवादों का प्रचार बहुत गहरे तो नहीं हो सका । यही कारण है ईसा मसीहा के करुण और भ्रातृत्व भरे विद्वत्तापूर्ण प्रवचनों के बावजूद भीम भोई जैसे अनपढ़ और देहाती के सरल सीधे भजन लोक में खूब प्रचलित थे । उधर मेहेर की रचनाओं ने भी इस आंधी का मुकाबिला किया । यूरोप से आये धर्म, दर्शन, भाषा एवं व्यवहार सबने ओड़िशा पर छा जाने की चेष्टा की । इन स्थानीय भाषा और संस्कृति सचेतन मनुष्यों के प्रयासों ने बहुत बड़ी आधार भूमि प्रस्तुत कर ली । यहाँ तक कि

राधानाथ राय के अनुवाद भी भारतीयता में भिन कर स्थानीय जैसे दिख रहे थे ।

ओड़िशा में ऐंग्लोइण्डियन स्कूल स्थापित होने के साथ-साथ आवश्यक पुस्तकों के जरिए यूरोप का बहुत बड़ा साहित्य सीधे अनुवाद अथवा छायानुवाद के जरिए यहाँ स्थापित हो गया । फकीर मोहन सेनापति की तरह राधानाथ राय ने 'मेघदूत' का ओड़िया अनुवाद किया । इसके अलावा कुछ इटली कविताओं को भी ओड़िया में रखा । इसी प्रकार मधुसूदन राओ ने भी 'सीता वनवास', 'बाल रामायण' आदि अनेक रचनाओं का अनुवाद किया । स्वाधीनता संग्राम के पुरोध पंचखाओं ने अनेक भाषाओं के ग्रंथ ओड़िया में रचे । इनमें नीलकंठ दास का 'एनक आर्डन' और 'प्रिन्सेस' काफी परिचित हुआ । गोदावरीश मिश्र ने 'Tale of two cities' के छायानुवाद पर एक रचना की थी जब कि "Up from sleepery" का पूरा अनुवाद है । आचार्य हरिहर दास ने गीता का ओड़िया गद्य में सुन्दर अनुवाद किया । आगे चलकर चन्द्रशेखर मिश्र ने सर वाल्टर स्कट का अनुवाद किया । सत्यवादी और उसके बाद के रचनाकारों ने विदेशी गद्य रचना ओड़िया अनुवाद में की । बहुत कुछ यूरोपीय साहित्य पर उनका ध्यान गया । बाद में अनुवाद को गति देने में सबुज गोष्ठि ने ज्यादा महत्व निभाया । आगे चल कर टि. एस. इलियट और वेस्ट लैंड और लंडन ब्रिज इज फालिंग जैसी काल जयी रचना आने से ओड़िया साहित्य में बहुत बड़ा परिवर्तन आता है । यही समय फ्रायड के मनोविज्ञान का है । रूस की अक्टूबर क्रांति ने दुनिया में हलचल मचा दी थी । यहाँ सिर्फ कम्युनिष्ट पार्टी का निर्माण नहीं हुआ, साहित्य ने भी अच्छा खासा स्थान बना लिया । टालस्टाय, गोरकी आदि रचनाकार ओड़िया में अपनी उपस्थिति दर्ज करा सके । अनुवादकों का ध्यान नई विचार धारा को सीधे तात्विक ग्रंथों के अनुवाद से लाना था, कविता और उपन्यास के जरिये यह काम और भी ज्यादा आसान था ।

अनुवादकों के क्षेत्र में प्रहलाद प्रधान ने अभिधम्म समुच्चय और अभिधम्म कोश भाष्य दोनों का संपादन कर टिप्पणी सहित ओड़िया भाषा में एक बहुत बड़ा अभाव पूरा किया । संभवतः संस्कृत का गौरवमय साहित्य चीनी और तिब्बती होते हुए भी यहाँ का एक मात्र उदाहरण है । प्रहलाद प्रधान ने पाली की कृति धर्मपद को टिप्पणी सहित ओड़िया में प्रस्तुत किया । इस प्रकार ओड़िया साहित्य में वैसे तो दूर से अनुवाद की परंपरा नहीं थी । लेकिन प्रधान जी इसके अपवाद बन गये । भारतीय अनुवाद साहित्य में ये अनुवाद विशेष महत्व रखते हैं । धर्म और दर्शन से प्रेरणा लेने वाले बौद्धों के मानक ग्रंथों का अनुवाद बहुत बड़ी समस्या था । इनका विश्वास था यह सब भारतीय साहित्य होते हुए चीन गया है । इस यात्रा में यह दार्शनिक और वैज्ञानिक साहित्य के साथ-साथ अपना कायाकल्प कर लेता है । हमारे अनुवाद का क्षेत्र संस्कृत तक सीमित था । पर प्रधान जी इसके अपवाद रहे । जो एक देहात में जन्मे और विश्व से लुप्त होने वाली सामग्री को बचाकर ले आए । बाद में ओड़िशा में उपलब्ध ताड़पोथियों और अन्य प्राचीन ग्रंथों का विवेचन विश्लेषण करने वालों में कमजोरी आ गई । यही कारण

है अब नई से नई दिशा में बढ़ने के लिए कदमों में ताकत आ गई थी । साहित्य को अनुवाद के माध्यम से अध्यात्मिक बनाने के प्रयास सफल हुए ।

1904 में 'शुकविलाश' नामक ग्रंथ में सत्तर कथाओं का अनुवाद प्रकाश में आया । हालांकि 1866 में बनमाली सिंह ने ईश्वरचंद्र विद्याधर रचित 'शंकुन्तला उपाख्यान' की रचना की और विच्छंदचरण पटनायक ने कादम्बरी का ओड़िया अनुवाद किया । जो दुष्प्राप्य है । परंतु विक्रम देव बर्मा का 'कादम्बरी कथा सार' आशा प्रेस (ब्रह्मपुर) से प्रकाशित हुआ । इस प्रकार आगे चल कर और भी ग्रंथ संस्कृत से आते रहे ।

16वीं सदी से इस्लामी शिक्षा और शासन का प्रवेश यहाँ होने के बाद फार्सी, अरबी, उर्दू आदि के ग्रंथ ओड़िया में आने का रास्ता खुल गया । इनमें लैला मजनू, सिरि-फरहाद, हातिमताई, चार दरवेश, गुले बकावली आदि ग्रंथ भारतीय भाषाओं में आये और वहाँ से ओड़िया में अनूदित होकर प्रकाशित हुए । 20वीं सदी के उत्तरार्ध में कुछ इस्लामी साहित्य ज्यादा जोर पकड़ने लगे । इनमें काजी की कहानी, गुलसनोबार, विद्या सुन्दरी, आदि कथानकों को ओड़िया में रूप दिया गया । आगे चलकर बहुत कुछ इस्लामी साहित्य विशेषकर रोमांटिक एवं चमत्कारिक वीरता पूर्ण कार्यों वाले कथानकों का रूपांतर खूब हुआ । इस बीच 1857 में 'फूल मुनी और करुणार विवरण' (संभवतः बंगला की प्रथम औपन्यासिक कृति) का अनुवाद ओड़िया में प्रकाशित हुआ । इसके बाद धर्म प्रचार के लिए विभिन्न भारतीय भाषाओं में धड़ल्ले से अनुवाद होने लगे । अंग्रेजी भाषा और संस्कृति का प्रचार होने के साथ-साथ इस राज्य में उनकी कथा-कहानियाँ अनूदित होकर आने लगी । भक्त कवि मधुसूदन राओ ने 'प्रणयर अद्भुत परिणाम' (1873) और राधानाथ राय ने 'इटालिय युवा' (1874) के अनुवाद किये । दोनों में प्रेम त्रिभुज की कहानी है और इसमें संघर्ष, द्वंद, युद्ध सब आ जाते हैं । हालांकि दोनों का करुण और वियोगान्त, हत्या, रक्तपात और वीभत्स स्थिति में समापन होता है । इन प्रारंभिक कृतियों के बाद रुचि बढ़ी और यूरोपीय भाषाओं की श्रेष्ठ कृतियों का आगमन अनुवाद के जरिए द्रुगगति में होता रहा ।

1925 में मराठी 'कमल कुमारी' उपन्यास का अनुवाद रामचंद्र आचार्य ने किया था । लेकिन ला मिजराबले (विक्टर ह्यूगो) का उपन्यास 'प्रयुस प्रवाह' के नाम से 1935 में ओड़िया में आया । गोदावरीश मिश्र ने 'ए टेल ऑफ टू सिटिज' की तरह '1817' उपन्यास लिखा । आनथोनी हुप से प्रेरणा लेकर श्रीधर महापात्र ने गोलापुर श्रोत नाम का उपन्यास लिखा । इस समय के सभी उपन्यास छाया उपन्यास की श्रेणी में आ सकते हैं । कहीं संक्षिप्तिकरण है तो कहीं उनका अनुकरण है । स्वाधीनोत्तर काल में हमने देखा कुछ भारतीय श्रेष्ठ कृतियाँ अनूदित होकर ओड़िया में आई । इनमें जय सोमनाथ (के.म.मुन्शी की गुजराती कृति) और पंडित नीलमणि मिश्र ने मृगनयनी (वृंदावनलाल) का अनुवाद किया । हजारी प्रसाद द्विवेदी का 'वाणभट्ट की आत्मकथा' को उपेन्द्र दास ने ओड़िया में अनुवाद किया

था । अंग्रेजी के प्रिजनर ऑफ जेंडा का ओड़िया में कृष्ण मोहन ने अनुवाद किया । इस समय बंगला में उपन्यास रचना जोरों पर थी । उनका विषय भी स्थानीय, या भाषा में घुटा कथानक नहीं था । अतः उनका ओड़िया अनुवाद करना आसान था । इसमें रवीन्द्र, बंकिम बाबू और शरत बाबू के अनेक उपन्यास अनूदित होकर ओड़िया में आये । इनमें रामसिंह, देवी चौधराइन, दुर्गेशनन्दिनी, कपाल कुंडला, इनका अनुवाद खूब लोकप्रिय हुआ । इसके अलावा आगे चल कर तो जानकी बल्लभ पटनायक जी ने पूरी बंकिम ग्रंथावली को ही ओड़िया अनुवाद में प्रस्तुत कर दिया । जहाँनारा की आत्मकथा एक प्रसिद्ध परसियन उपन्यास है । गणेश्वर मिश्र ने इसका ओड़िया अनुवाद किया है ।

इस प्रकार आजादी के साथ-साथ अंग्रेजी, फारसी, इटाली आदि विदेशी कहानियाँ ओड़िया में आ गई । इसके अलावा एक नई धारा थी - भारतीय कथानकों का ओड़िया में रूपांतरण । इसमें तेलुगू, मराठी, पंजाबी, गुजराती और तमिल की कई कृतियाँ आई । कुछ क्षेत्र में तो ऐसे हुआ कि बंगला अनुवाद ही छपने लगे । लोगों ने अनुवादकों का नाम ही मिटा दिया । इसमें एक तो अनुवाद सरल भाषा में थे दूसरे इन अनुवादों की विषयवस्तु क्षेत्रीय न होकर सर्वभारतीय थी । तीसरे ओड़िया में अभी भी लेखन उतनी गति नहीं पकड़ पाया था । अतः इतने बड़े पाठक वर्ग की भूख मिटाने के लिए अनूदित कृतियों ने बड़े वैक्यूम में स्थान बना लिया । आगे चलकर इस स्थिति ने ओड़िया पाठकों की रुचि को भी दबोच लिया । पाठक ओड़िया से अधिक बंगला कृति का अनुवाद पढ़ने लगे । यह किसी तरह से स्पृहणीय स्थिति नहीं थी ।

यह मूल कृतियों के लिए बड़ी रुकावट बनने लगी । उनके प्रकाशन, उनके प्रचार-प्रसार और उनकी लोकप्रियता सब तुलना की कसौटी पर कसी जाने लगी । हर अनूदित कृति को खरीदते समय पाठक ओड़िया उपन्यास के साथ तुलना कर देखते थे । बंगला में कहानी कहने की कला सारे देश में अनूठी है । यही कारण है कि बंकिम, शरतचंद्र को ओड़िया का अपना कथाकार बनने में देर नहीं लगी । लोगों को याद ही नहीं रहता कि यह भिन्न धरती की भिन्न भाषा की कहानियाँ हैं । सच कहा जाये तो इस स्पर्धा में ओड़िया में अनूदित कहानी और उपन्यास बाजी मार लेते हैं ।

इस धारा में एक स्मरणीय बात परोक्ष अनुवाद की है । ओड़िया में वैदिक संस्कृत, प्राकृत, पाली, अपभ्रंश अथवा तेलुगू, तमिल, कन्नड़, मराठी आदि भाषाओं के जानकार बहुत कम हैं । हमने यह पहले ही देखा एक भाषा अप्रचलित होकर दूसरी भाषा समाज में आ जाने पर पूर्ववर्ती साहित्य की धरोहर को अनुवाद के जरिए नूतन भाषा में बार-बार अवतरित किया जाता रहा है । इस प्रकार भाषा बदलने पर भी भावों और तथ्य तथा सूचनाओं की संपदा युग-युग में उपलब्ध होती रही है । यह प्रक्रिया तो सर्वभारतीय स्तर पर चलती रही है । परंतु यहाँ एक दूसरी बात की ओर संकेत किया जा रहा है । वह है समकालीन युग में अपने से इतर क्षेत्र की भाषा की साहित्यिक निधि को किस प्रकार उपलब्ध कराया

जाए । दुर्भाग्य से ऐसी कोई सामान्य भाषा, संस्कृत के बाद, सारे देश में उपलब्ध नहीं हुई अथवा विकसित नहीं हुई, जो इस आदान-प्रदान को सुलभ बना सके । सबके अपने-अपने आग्रह अथवा दुराग्रह रहते हैं । इस कारण किसी एक भाषा को सामान्य दर्जा देने में बार-बार रुकावट आती रही है । यहाँ तक कि सर्वाधिक क्षेत्र और सर्वाधिक जनता द्वारा बोली जाने वाली हिन्दी को इस रूप में विकसित करने की बात आई तो भी लोग संविधान जलाने को उठ खड़े हुए, झंडा फाड़ने से बाज नहीं आये, फिर भी कुछ लोगों ने मन बना ही लिया । इसमें दो तरह के लोग थे । एक वे लोग जो अंग्रेजी के माध्यम से सर्वभारतीय स्तर पर अपने साहित्य को सुलभ कराना चाहते थे । दूसरे वे लोग थे जो हिन्दी को समग्र भारतीय संस्कृति और साहित्य का भंडार मानकर उसे समृद्ध करने में जुट गए । अब भारत की किसी भी साहित्य की कृति से जो भी श्रेष्ठ कृति चाहिए वह इन दोनों भाषाओं में खोलकर चुनी जा सकती और उसे अनुवाद कर अपनी इच्छा पूरी की जा सकती है । इसी प्रक्रिया को परोक्ष अनुवाद कहा जाता है । हर क्षेत्र में ज्यादा से ज्यादा अपनी सीमाओं के आस-पास की भाषाओं को जानने वाले मिल सकते हैं । लेकिन दूर प्रदेश की भाषा जानने वाले और उस पर काम करने वाले लोगों का सर्वत्र अभाव है । जैसे केरल में कन्नड़ से तेलुगू अनुवादक अथवा पंजाब में तमिल अनुवादक पाना लगभग असंभव सा है । ज्यादातर काम पंजाब वालों का हिन्दी भाषी कर लेते हैं अथवा तमिल साहित्य का कन्नड़ में अनुवाद संभव हो सकता है । उसी तरह बंगला का ओड़िया में या ओड़िया का बंगला में तुलनात्मक दृष्टि से अन्य भाषाओं की अपेक्षा अधिक आदान-प्रदान मिल जाता है ।

### \* ओड़िशा में हिन्दी अनुवाद :

देश तो एक है । कहीं भी श्रेष्ठ कृति को अंतरण की बात अन्य क्षेत्रों में बलवती हो जाती है । इसका सर्वश्रेष्ठ उदाहरण गीतगोविन्द है । सागर तट पर पुरी में इसकी रचना होती है और चित्तौड़ के राणा कुंभा इसकी टीका और उसके संगीत पर विस्तृत काम करते हैं । गुजरात में इसकी नाट्य प्रस्तुति होती है । आवागमन की दुरुहता के बावजूद गीतगोविन्द जगन्नाथ जी को सुलाने के लिए गाया जाता है यह बात भूल गये और इसे भारतवर्ष की एक अनमोल संगीतात्मक कृति के रूप में सारे देश में इसके अनुकरण पर कृतियाँ बनी । सब भाषाओं में इसका अनुवाद हुआ । लोक भाषाओं में अगणित गीत रचे गये । जिन में राधा और कृष्ण का प्रेम नहीं बदला बाकी सब कुछ बदल गया । यह है एक कृति के विशेष क्षेत्र से उठ कर सर्वभारतीय स्तर तक व्याप्त/ फैल जाने का परिणाम । जैसे बुद्ध भारत से उठकर विश्व में फैल गये । बौद्ध धर्म की अधिकांश कृतियाँ भारत से लुप्त हो गई । उनको पुनः अनुवादकर चीन, तिब्बत, जापान से वापस लाना पड़ा । उसी प्रकार यह स्थिति लगभग गीतगोविन्द के बारे में भी कही जा सकती है । आज भारत की किसी भी भाषा में श्रेष्ठ कृति को लाने के लिए किसी लिंक भाषा का

सहारा लेना पड़ता है । ओड़िया में उन दिनों यह सुविधा भी उतनी उपलब्ध नहीं थी । अतः दूर क्षेत्रों में उपलब्ध संस्कृत की किसी पारंपरिक रचना को छोड़कर उन भाषाओं की कृतियों का आहरण दुरूह कार्य था । यही कारण था कि 19वीं सदी में दक्षिण भारतीय भाषाओं अथवा कश्मीरी, सिंधी से एक भी कृति का ओड़िया अनुवाद संभव नहीं हो सका । मराठी की कुछ कहानियाँ तत्काल की पत्रिकाओं में कहीं - कहीं छपी । कन्याकुमारी और रामेश्वर का उल्लेख भले ही मिल जाए पर ओड़िया में कन्नड़ साहित्य की कोई भी श्रेष्ठ कृति उस समय मीडिया में नहीं आ पायी । इसका यह कारण है कि ओड़िया लोगों में कन्नड़ के विशेष जानकार न थे । ओड़िशा से तीर्थयात्री रामेश्वरम और द्वारिका जाने की परंपरा थी । केरली, मराठी और पंजाबी सब निरंतर श्रीजगन्नाथ के दर्शन के लिए आते रहते थे । परंतु आदान-प्रदान के द्वार खुले नहीं थे । अतः अनुवादों की सीमा एक तरह से मानव कृत सीमा थी । उसमें बहुत अधिक विस्तार की गुंजाइश नहीं रही । जब सरकारी स्तर पर प्रयत्न शुरू हुए तभी इस संबंध में कुछ कार्य संभव हो सका । इनमें प्रमुख भूमिका एन.बी.टी., साहित्य एकादेमी एवं विभिन्न टेक्स्ट बुक बूरो की थी । जब भारतीय भाषा परिषद, भारतीय अनुवाद परिषद, यू.पी. हिन्दी संस्थान और अनुवाद बूरो, नागरी प्रचारिणी सभा, हिंदी साहित्य सम्मेलन , राष्ट्रभाषा प्रचार सभा, दक्षिण भारत हिन्दी प्रचार सभा आदि संस्थाओं ने अपने-अपने पंख फैलाये तब उन्हें इस प्रदेश की धरती, साहित्य और कला के दर्शन होते हैं । आजादी के बाद अमृत संतान (गोपीनाथ महांति) का अनुवाद हिन्दी में हुआ और उसे भारत की विभिन्न भाषाओं में पहुँचाने के द्वार खुल गये । 'अमृत संतान' ही ओड़िया की पहली औपन्यासिक कृति है जो ओड़िशा के बाहर सार्थक ढंग से एक नयी दिशा खोलने में समर्थ हुई । इसका श्रेय विशिष्ट अनुवाद चिन्तक एवं समर्थ हिन्दी गद्य लेखक युगजीत नवलपुरी को जाता है । आगे चलकर नवलपुरी ने इस दिशा में और भी कई प्रयास किये ।

उन दिनों ओड़िशा में आधुनिक शिक्षा की स्थिति उतनी विकसित नहीं थी । इसके अलावा यहाँ शिक्षा के क्षेत्र में जीविका के साधन भी बहुत सीमित थे । अतः लोगबाग उच्च शिक्षा की बात उठते ही पटना , इलाहाबाद, आगरा या कोलकाता चले जाते । यही कारण है कि इस काल से ओड़िशा के अधिकांश विद्वान पढ़ने के लिए अथवा नौकरी करने के लिए इन्हीं केंद्रों में उपलब्ध हुए । गोलक विहारी धल का भाषा विज्ञान (ध्वनि विज्ञान) आगरा में रचा गया । इसके अलावा चित्तरंजन दास भी विश्व के विभिन्न भागों में यात्रा करते हुए भी आगरा को केंद्र बनाते हैं । धल साहब ने ओड़िशा के पाठकों को प्रेमचंद के गाँव की महक उपलब्ध कराई । उस समय हिन्दी में प्रेमचंद की खूब धूम मची हुई थी, और रेणु, नागर, यशपाल वगैरह भी ग्रामीण भारत का दृश्य देखने में मगन थे । धल साहब ने बंकिम, शरत या रवीन्द्र के बजाय प्रेमचंद को ज्यादा निकट समझा । उत्कल की ग्रामीण स्थिति प्रेमचंद के गाँव से बहुत करीब पड़ती है । भले ही प्रेमचंद भारी पड़ते थे परंतु धल साहब ने उसकी परवाह नहीं की । उसी

तरह आगे चलकर चित्त बाबू ने भी अरविन्द साहित्य को ओड़िया पाठकों के लिए लाने में अपने जीवन के अनेक वर्ष लगा दिये । आगरा में रहते समय उन्होंने कान्हू बाबू के 'का' उपन्यास को हाथ में लिया । इसे अनुवाद के क्षेत्र में अंधकार का युग ही कहेंगे । जब हिन्दी पाठक ओड़िया साहित्य से एकदम अपरिचित है । नवलपुरी के प्रयास से कोई विस्तार हो नहीं पाया क्योंकि साहित्य एकादेमी तब तक अनुवाद के जरिए अपनी कोई विशिष्ट छवि बना नहीं सकी थी । चित्त बाबू ने भी हिन्दी अनुवाद के क्षेत्र में ज्यादा काम नहीं किया था । यह उनका प्रारंभिक कार्य ही है । दूसरी बात आगरा में रहने के कारण ही उन्हें हिन्दी के संस्कार उपलब्ध हुए । जो हो, 'का' का अनुवाद करते समय उन्होंने अपने साथी क्षेमेन्द्र सुमन का सहयोग लिया । दर असल उस समय सामाजिक उपन्यासों का चलन अधिक था । ओड़िया में कान्हू चरण सर्वश्रेष्ठ, सामाजिक उपन्यासकार के रूप में प्रतिष्ठित हो गये थे । अतः 'का' के लिए भाषा ढूँढने में उन्हें कोई कठिनाई नहीं हुई । चित्त बाबू ने इस कृति में छोटे-छोटे वाक्य लिये, हिन्दी की सहज भाषा को ही वरीयता दी है । जहाँ कहीं ओड़िया का ठेठ रूप मिलता, वे उसे सीधी और सरल रूप में व्यवहार करते गये । हालांकि हिन्दी की जो-जो क्षेत्रीय कहावतें हैं उनका प्रयोग कर भाषा को रोचक बनाया । इसी प्रकार बीच-बीच में जो भी ओड़िया लोक तत्व के प्रयोग आते, वे हिन्दी में बड़े सुन्दर ढंग से समाते हैं । जैसे बंजारों का नाच, लेकिन वे संपेरोँ या कालबेलियों के दृश्य को 'साँप खिलाना' कहते हैं । गाँव का चित्रण चित्त बाबू ने हिन्दी में बहुत मार्मिकता से उतारा है । औरतों के स्वभाव से परिचित हुये बिना यह शब्दावली प्रयोग नहीं कर सकते थे । इसमें केवल नारी और उसके विभिन्न प्रसंगों में व्यवहार की बात नहीं है । वरन् नारी के समुचित दृष्टिकोण को अंकित किया है । चित्त बाबू का यह अनुवाद आगरा के एक प्राइवेट प्रकाशक ने 1962 में छपा है । क्षेमेन्द्र सुमन के सहयोग के कारण इस अनुवाद में भाषा की सामान्य त्रुटियाँ और व्याकरणगत खामियाँ कहीं नहीं मिलती । चित्त बाबू का यह पहला प्रयास बहुत सराहा गया ।

चित्तबाबू मूलतः ओड़िया के अंग्रेजी और हिन्दी के अनुवादक हैं । उन्होंने यूरोप के अनेक देशों का भ्रमण कर अपने क्षितिज को बहुत विस्तार दिया है । यही कारण है कि 'सावित्री' महाकाव्य (श्रीअरविन्द) का वह सहज ओड़िया में अनुवाद कर पाते हैं । इसी कलात्मकता का परिचय उन्होंने 'का' में दिया है । यहाँ स्मरणीय है कि अपनी फक्कड़गिरी के दिनों में शांतिनिकेत में हजारी प्रसाद जी जैसों के साथ हिन्दी सीखी और प्रहलाद प्रधान जैसों के साथ ओड़िया को समृद्ध किया । आगरा आकर अपने घनिष्ठ मित्र कान्हूचरण महांति के आग्रह पर उनको 'का' अनुवाद करना पड़ा । बाद में वे पांडिचेरी के दर्शन में रम गये और हिन्दी से संपर्क छूट गया । अतः एक मात्र 'का' ही ऐसी कृति है जो उनके ओड़िया हिन्दी अनुवाद पर प्रकाश डाल सकती है । एक बात तो स्पष्ट है कि चित्त बाबू मूल कथानक, उसके भाव और उसके स्वर को समझने में कभी गलती नहीं कर सकते । उनका आलोचक मन अनुवाद

के समय जरूर चुप रहा होगा । इसके अलावा चित्त बाबू के लिए कान्हुचरण का दृष्टिकोण भी अपरिचित नहीं था ।

अनुवाद करते समय चित्त बाबू के ध्यान में ओड़िया जीवन और शैली का बैकग्राउंड पूरी तरह स्पष्ट था । ओड़िया भाषा उनके संस्कारों में रची बसी और पगी हुई थी । रही बात हिन्दी के मुहावरे की, द्विवेदी जी और प्रधान जी की संयुक्त मेधा ने पहले ही वे संस्कार जगा दिये थे । आगरा में आकर रूपाकार भर देना था । अगर कहीं कुछ कसर रह गई, तो वह क्षेमेन्द्र जी ने पूरी कर दी । इस प्रकार हिन्दी के अनुवाद के इस प्रारंभिक दौर में ही एक अच्छे अनुवाद से श्रीगणेश हुआ ।

आजादी के बाद नई पीढ़ी के साहित्यकार अपने लेखन के जरिए एक नया मानव समाज रचने का सपना देख रहे थे । इसमें सांप्रदायिक दंगे बहुत बड़ी बाधा बनकर आये । परंतु पुरानी पीढ़ी के लोग दंगों से ज्यादा प्रभावित नहीं हुए । वे अपने जीवन मूल्यों को पहले ही स्थापित कर चुके थे । अतः कह सकते हैं कि तत्कालीन समाज में गांधीजी का भाव घटना शुरू हो गया था जब कि धरती के प्रति आकर्षण एक नये उत्साह के साथ बढ़ने लगा । अब ओड़िया साहित्य में कालिन्दीचरण पाणिग्राही अपने युग के सही चित्रकार के रूप में उभर कर आये । 'माटिर मणिष' ने एकदम हलचल पैदा कर दी । आजादी के बाद के मनुष्य की धरती के प्रति अटूट रिश्ते की बात अपने विविध आयामों के साथ इस उपन्यास में खुल कर आती है । साथ में पारंपरिक परिवार के गहरे बंधन सारे तनावों के बावजूद अटूट दिखाई देते हैं । यह भारतीय चरित्र का अत्यंत उज्वल पहलू है जो कालिन्दी बाबू ने गहराई से अंकित किया । एक तरह से मूल्यों पर पड़ती चोट मनुष्य को दहला देती है । कालिन्दी बाबू के साहित्य ने राष्ट्रीय स्तर पर अनुगूँज पैदा कर दी । परंतु उसे व्यापक स्तर पर पहुँचाने की संभावना बहुत कम थी । ओड़िया की यह कृति ओड़िशा की सीमाओं से बाहर जाने की मांग कर रही थी । जब कि यहाँ कोई पत्रिका नहीं थी, अनुवादक लगभग नहीं थे । अतः इस महान ग्रंथ का रूपांतरण लगभग असंभव था । पूरे राज्य में या उसके बाहर कहीं आशा की किरण दिखाई नहीं पड़ रही थी ।

ऐसे समय में अनसूया प्रसाद पाठक ने इस ग्रंथ को परखा । पाठक जी ओड़िशा के बाहर के आदमी थे । परंतु यहाँ रहकर ओड़िशा की संस्कृति और परंपरा से सुपरिचित हो गये । उन्होंने एक रफ ड्राफ्ट बनाया । दूसरी तरफ बालेश्वर क्षेत्र के नित्यानन्द महापात्र, जो स्वयं अपने आप में कथाकार हैं, उन्होंने भी उस उपन्यास को हिन्दी में प्रस्तुत करने का विचार किया । इस बीच ओड़िशा माध्यमिक शिक्षा बोर्ड की पहली महिला मैट्रिकुलेट सरस्वती पाणिग्राही ने इसे हिन्दी में रूपांतरित किया । श्रीमती पाणिग्राही जी का जन्म तो जबलपुर में हुआ (1918) । और नौ साल की कच्ची उमर में उनका विवाह ओड़िशा के प्रसिद्ध क्रांतिकारी एवं प्रगतिशील कथाकार भगवती पाणिग्राही से हुआ । तत्कालीन ओड़िशी परंपरा के अनुसार वे सात साल तक जबलपुर में रही और पढ़ाई लिखाई की । कहते हैं वे

पहली ओड़िया महिला थी जिन्होंने इतने आगे तक पढ़ाई की । राष्ट्रभाषा प्रचारक एक तो जबलपुर में जन्म और लम्बे अरसे तक रहना, दूसरे पाठकजी के संसर्ग में आना । इन सबसे उनमें हिन्दी के गहरे संस्कार भरे थे । उन्होंने जब इस ग्रंथ का अनुवाद किया तो यह हिन्दी की सर्वश्रेष्ठ पत्रिका 'हंस' में धारावाहिक रूप में छपी थी । संभवतः ओड़िया की यह पहली कृति थी जिसे इतना बड़ा सम्मान मिला । बाद में साहित्य अकादेमी ने इसके प्रकाशन का दायित्व लिया । उन दिनों साहित्य अकादेमी अपने सारे प्रकाशन कार्य (किसी भी भाषा में हो चाहें) दूसरों से कराती थी । अतः भदन्त आनन्द कौशल्यायन ने इसकी भूमिका लिखी और प्रकाशन का दायित्व पूर्वोदय प्रकाशन को दिया गया ।

इस प्रकार ओड़िया की एक विशिष्ट कृति से अनुवाद का श्रीगणेश हुआ । कालिन्दी बाबू उन दिनों ओड़िया साहित्य में पूरी तरह छाये हुए थे । ओड़िशा में प्रकाशक उनकी कृतियों को प्रकाशित करने को तैयार थे । वे कटक आकाशवाणी केंद्र के सलाहाकार थे और साहित्य अकादेमी के भी सदस्य थे । लेकिन 'माटी का पुतला' के बाद और कोई कृति अनूदित रूप में सामने नहीं आई । उसका सबसे बड़ा कारण अनेक कथाकार कवि सक्रिय हो चुके थे । कम से कम सबुज युग के अनेक यशस्वी साहित्यकार प्रकाशित हो रहे थे । परंतु किसी को बहादुरी दिखाने का अवसर नहीं मिला ।

सोभाग्य से उन दिनों उत्कल प्रांतीय राष्ट्रभाषा प्रचार सभा अपनी गतिविधियों के कारण हिन्दी क्षेत्र में नाम कर रही थी । डॉ. हरेकृष्ण मेहताब ओड़िशा में मुख्यमंत्री थे और वे हिन्दी के बहुत बड़े समर्थक थे । उससे पहले पं. गोपबंधु दास के सत्यवादी वनविद्यालय में हिन्दी का महत्व छात्रों को समझा चुके थे । कटक में सभा ने आधुनिक मशीनों से समवाय प्रेस खोल कर एक बहुत बड़ा कदम उठाया । वरना यहाँ हिन्दी में प्रकाशन कार्य ही दुरूह था । सभा के कटक केंद्र से 'राष्ट्रभाषा पत्रिका' प्रकाशन इस दिशा में एक और महत्वपूर्ण कार्य था । इसी बीच कटक में मारवाड़ी हाईस्कूल हिन्दी माध्यम विद्यालय बन कर सामने आया । ऐसे और भी दो तीन विद्यालय खुले जो संबलपुर, बलांगीर, टिटलागढ़ आदि जगहों में लम्बे अरसे तक काम करते रहे । परंतु इन स्कूलों के छात्र उच्च शिक्षा प्राप्त कर अपने-अपने धन्धे में लगे । हिन्दी में काम करने वाले बहुत कम लोग आये । राष्ट्रभाषा का काम भी हिन्दी के जरिए आजादी की लड़ाई को हवा देना था । हिन्दी साहित्य के प्रचार-प्रसार से उन दिनों उन्हें कोई मतलब नहीं था । परंतु आजादी के बाद जब हिन्दी सरकारी कामकाज की भाषा बन गई और देश की संपर्क भाषा भी हो गई, तो इनके आभिमुख्य में जबर्दस्त परिवर्तन आया । केंद्रीय सरकार ने भी इन संस्थाओं को खुलकर आर्थिक सहायता प्रदान की । विभिन्न योजनाओं के जरिए इन संस्थाओं के कार्य में विविधता आयी । साहित्य पत्र में ओड़िशा की भाषा, साहित्य, कला, संस्कृति, इतिहास आदि पर सामग्री प्रकाशित होने लगी । श्रेष्ठ साहित्य का ओड़िया से हिन्दी में अनुवाद होने लगा एवं प्रकाशित साहित्य का मूल्यांकन भी चला । इस प्रकार ओड़िया साहित्य के ओड़िशा से बाहर प्रचार-प्रसार का

एक बड़ा दरवाजा खुल गया । रेवेंसा कॉलेज, गंगाधर मेहेर कॉलेज, फकीर मोहन कॉलेज एवं एम.पी.सी कॉलेज आदि में पहले हिन्दी विभाग में पढ़े-लिखे लोगों को बाहर से लाकर अवस्थापित किया गया । इनमें से भी कुछ लोगों ने ओड़िया सीखी और अनुवाद कार्य में मन लगाया । इनमें कीर्ति प्रकाश गुप्त, कपिलेश्वर प्रसाद, मायाराम भट्ट और चंद्रसेन कुमार जैन प्रमुख हैं । इन लोगों ने हिन्दी में अनेक छिट-पुट कार्य किये । किसी महत्वपूर्ण कृति का अनुवाद प्रकाशित होना संभव नहीं हुआ । लेकिन इतना निश्चित है कि इन अध्यापकों के आ जाने से हिन्दी के कॉलेज स्तर पर अध्यापन को काफी बल मिला जो आगामी समय में अनुवाद कार्य की भूमिका सिद्ध हुई । इन्हीं दिनों हिन्दी टीचर्स ट्रेनिंग स्कूल, कटक की स्थापना हुई और राज्य में हिन्दी शिक्षकों के प्रशिक्षण का मार्ग खुला । तारिणी चरण दास इसके प्रथम प्राचार्य बने । आगे चलकर वे प्रशिक्षण कार्य से हटकर आम कॉलेजों में चले गये और ओड़िशा में प्रथम प्रोफेसर बनने का गौरव प्राप्त कर सके । दूसरा प्रशिक्षण संस्थान भुवनेश्वर में खुला जहाँ राधाकांत मिश्र प्रिंसिपल रहे । फिर भट्टजी और रघुनाथ महापात्र, डॉ. शंकरलाल पुरोहित ने दायित्व लिया । ऐसा ही एक केंद्र संबलपुर में भी केंद्रीय सरकार के सहयोग से शुरू हुआ । इसके दायित्व में जुगलकिशोर बहिदार रहे । बाद में कटक को छोड़ अन्य हिंदी संस्थान बंद हो गए ।

इससे पूर्व तारिणी बाबू ने हिन्दी अध्यापकी के दौरान हिन्दी में मौलिक सृजन कार्य किया । कविता, आलोचना और ओड़िया कविता आदि में काफी महत्वपूर्ण काम किया । परंतु तारिणी बाबू ने उस समय 'राष्ट्रभाषा पत्र', साहित्य सम्मेलन के 'माध्यम' आदि में ओड़िया से बहुत कुछ अनूदित कर एक नई शुरूआत की । हालांकि उनसे 'कणामामू' उपन्यास का हिन्दी अनुवाद प्रकाशित हुआ, पर उसे प्रकाशकीय दुर्बलता के कारण बाजार में सफलता नहीं मिली । उस समय अनसूया प्रसाद पाठक ने अनेक कृतियाँ ओड़िया से हिन्दी में अनूदित कर राष्ट्रभाषा पत्र और वर्धा की पत्रिका में छपवायी । पाठकजी का इसी बीच 'प्रतिभा' उपन्यास (हरेकृष्ण मेहताब) हिन्दी में छपा । इसके प्रकाशक मुद्रक अनुवादक सब दृष्टि से पाठकजी ही थे । यह औपन्यासिक कृति ओड़िशा में अनेक संभावना के द्वार खोल देती है ।

अनुवाद साहित्य का दुर्भाग्य पीछा नहीं छोड़ रहा था । सफलता की ऊंचाइयाँ छूने वाला राष्ट्रभाषा समवाय प्रेस एक के बाद एक अनेक कृतियाँ छापने लगा । 'राष्ट्रभाषा पत्र' नियमित रूप से छपने लगा । सभा पाठ्य पुस्तकों के लिए आत्मनिर्भर बन गई । परंतु इसी बीच यह प्रेस ऐसे भंवर में फंस गया कि सारी योजना ठप हो गई । पत्र बंद हो गया । प्रकाशन बंद हो गया । और हिन्दी अनुवाद कार्य फिर एक बार औंधे मुँह गिरा । समवाय प्रेस के साथ साथ कागज बनाने का कारखाना भी बंद हो गया । प्रेस कानूनी कारवाही के चक्कर में पूरी तरह फंसकर पंगु बन गया । उस समय लाखों रुपयों की मशीन जंग खाने लगी । एक बहुत बड़ी संभावना को विराम लग गया । बाद में गोपीनाथ साहु ने इसको फिर

एक बार पुनः स्थापन करने का प्रयास किया । एक नई संस्था का नये नाम से पुनर्जागरित संस्थान ने प्रकाशन कार्य हाथ में लिया । पिछले तीन दशक में उसने अनेक महत्वपूर्ण कार्य किया । इस संस्था ने कविता, कहानी, उपन्यास आदि कुछ मौलिक कृतियों के साथ-साथ कुछ अनुवाद भी प्रकाशित किये । इनमें साहित्य एकादेमी पुरस्कार द्वारा सम्मानित 'अर्द्धशताब्दी का ओड़िशा और उसमें मेरा स्थान' (गोदावरीश मिश्र) सर्वोपरि है । नटवर सामन्तराय का आलोचना ग्रंथ और कुछ कविता ग्रंथ उसका महत्वपूर्ण प्रकाशन है । संतोष प्रकाशन संस्था ने 'रमादेवी की आत्मकथा' जैसी महत्वपूर्ण कृतियाँ प्रकाशित की हैं ।

केंद्रीय सरकार के राजभाषा कार्यक्रम के तहत राजधानी भुवनेश्वर का महत्व बढ़ गया । यहाँ हिन्दी की विविध स्तर की गतिविधियों में तेजी आने लगी । आर्थिक, शैक्षिक, सरकारी प्रोत्साहन के कारण हिन्दी का वातावरण बनने लगा । आधारभूमि भी दृढ़ होने लगी । यहाँ से अनुवादों का सिलसिला चल पड़ा जो अब तक जारी है । बनमाली दास पहले तो हिन्दी टीचर्स ट्रेनिंग से जुड़े थे, बाद में डिग्री कालेजों में पढ़ाने चले आये । अर्जुन शतपथी और बनमाली दास ने प्रारंभ में हिन्दी की विभिन्न स्तर पर पाठ्य पुस्तकें लिखी । हिन्दी प्रचार संस्थाओं, हिंदी शिक्षा समिति से जुड़ कर प्रचार-प्रसार के काम में लगे । तारिणी चरण दास ने बनारस, राधाकान्त मिश्र, अर्जुन शतपथी, रघुनाथ महापात्र, अजय पटनायक ने इलाहाबाद में हिन्दी की पढ़ाई की । पर बनमाली दास जबलपुर में पढ़ कर आये । इस प्रकार यह पीढ़ी हिन्दी के गढ़ कहे जाने वाले क्षेत्र से हिन्दी सीख कर आयी थी । इसे ही पहली पीढ़ी के पांच-सात कंट्राक्ट पर आये हिन्दी अध्यापकों का स्थान लेना था । इन्होंने सबने (किसी ने कम किसी ने ज्यादा) हिन्दी अनुवाद में रुचि ली । सरकारी - गैर सरकारी सभी संस्थाओं ने इनको प्रकाशित किया । इन अनुवादों से भारत की अन्य भाषाओं की तरह ओड़िया साहित्य का अनुवाद भारत वर्ष में अपनी विशेष मर्यादा बनाने में सफल हो सका ।

सौभाग्य से हिन्दी पढ़ाने वालों की संख्या बढ़ी । परंतु राजभाषा कार्यक्रम (राजभाषा अधिकारी, अनुवादक, सहायक, टंकक आदि) के अंतर्गत देश भर में काफी लोग इसमें नौकरी पा कर आये । परंतु उनका रुझान कार्यालयीन हिन्दी में अनुवाद करने पर था । वे वैज्ञानिक - तकनीकी अनुवाद में काम करते । साहित्यिक सांस्कृतिक दृष्टि से अनुवाद में रुचिशील बहुत कम लोग निकले । इनमें पूर्णचंद्र रथ भोपाल में रह कर काफी कुछ काम करने में सफल हुए । वे भारत भवन से संबद्ध थे । उधर राउरकेला इस्पात कारखाने में जुड़े मधुसूदन शाह ने अनुवाद कार्य में रुचि ली । दिल्ली में अवस्थापित डॉ. राजेंद्र प्रसाद मिश्र यद्यपि एनटीपीसी में समर्पित थे, पर अनुवाद की रुचि और समर्पण कम न था । उनकी प्रतिभा का दिल्ली के प्रकाशकों ने पूरा दोहन किया । कहानियों और कविता के अनुवाद में डॉ. मिश्र ने पहले ज्यादा रुचि ली । पर बाद में 'देश-काल-पात्र' (जगन्नाथ प्रसाद दास) के अनुवाद से उनकी

क्षमता सामने आयी । दर असल यह उपन्यास कथानक की दृष्टि से भले ही अनूठा हो, भाषा को लेकर विशेष संकट नहीं है । जे.पी. दास की ओड़िया में प्रायः मानकता बनी रहती है । पर ऐतिहासिक यात्रा के कारण यह उपन्यास कुछ सावधानी चाहता है । एक समय पर स्थिर नहीं है । भाषा में कई जगह मोड़ आते हैं । उनका सामना डॉ. मिश्र करने में सफल रहे । दिल्ली में रहने के कारण पूरी तरह हिन्दी वातावरण मिला । पुनरीक्षण के लिए सहयोगियों की कोई कमी नहीं रही । इस प्रकार मिश्रजी के काव्यानुवादों व अन्य अनुवादों का जब दबदबा बढ़ा, उनकी समीक्षा में भी विभिन्न पत्र-पत्रिकाओं और आलोचकों ने सहयोग दिया । रायरांगपुर में जनमे, दिल्ली (जेएनयू) से पढ़कर निकलने के कारण हिन्दी का चलता मुहावरा और साहित्यिक बारीकियों से पूरी पहचान लेकर आये थे । मिश्र के अनुवादों में भाषा की रवानगी होने के कारण पठनीयता में कोई कसर न थी । अतः हिन्दी साहित्य में ओड़िया साहित्य को सम्मानजनक जगह दिलाने में महत्वपूर्ण भूमिका रही । सच्चिराउराय की प्रगतिशील कविता हो या सीताकांत महापात्र की मानववादी चेतनायुक्त काव्य कृति, रमाकांत रथ का अद्यतन मृत्यु चेतना युक्त काव्यसंकलन, डा. मिश्र ने हर स्थिति में अपने को ढाला, हिन्दी मुहावरे में ओड़िया के श्रेष्ठ साहित्य को प्रस्तुत किया ।

प्रभात कुमार त्रिपाठी ने पढ़ाई रायगढ़ और उज्जैन में की पर वे अध्यापक ओड़िशा में बने । उनकी रुचि मौलिक (कविता, उपन्यास) में रही और अनुवाद के क्षेत्र में कविता ही प्रिय विषय रहा । रमाकांत रथ, सीताकांत महापात्र, राजेन्द्र पंडा आदि अनेक प्रतिष्ठित कवियों का हिन्दी रूप प्रभात के हाथों हुआ है । कथा साहित्य में बहुत कम अवसर मिला । प्रभात को हिन्दी का लौकिक मुहावरा भी सिद्ध था । अतः कविता को यथासाध्य उसके मिजाज में रखा । इसी कारण हिन्दी में प्रभात के पाठक प्रशंसक बहुत अधिक हैं ।

योगेंद्र त्रिपाठी राउरकेला आये । वहीं ओड़िया सीखी और ओड़िया की भक्ति कविता को हिन्दी में पूरी शक्ति से अनूदित कर सके । त्रिपाठी जी ने गोपबंधु की 'कारा कविता' 'दांडी रामायण', भंज की 'लावण्यवती' आदि का रूपांतर किया । बाद में गोपबंधु दास की 'कारा कविता' को और गंगाधर मेहेर की 'तपस्विनी' को हिन्दी में प्रस्तुत किया । त्रिपाठी कानपुर के पढ़े-लिखे, ओड़िशा में आजीविका के लिए रहे । ओड़िया सीखी । सारा अनुवाद विभिन्न छंदों में हुआ । संभवतः हिन्दी के तुकांत छंद में ओड़िया काव्य को इतने विस्तृत स्तर पर अनूदित करने का श्रेय योगेंद्रजी को है । उनकी कविता में तुक साधते समय गजब का संयम मिलता है । योगेंद्रजी के अनुवाद में खड़ी बोली का मुहावरा अविमिश्रित भाव से मिल जाता है । भुवन वाणी ट्रस्ट (कानपुर) ने इनके अनुवादों को अपनी राष्ट्रीय योजना के तहत छापा है । उसमें प्रायः ओड़िया के मध्यकालीन अतीत (प्रारंभिक) के काव्य संभार को हिन्दी में प्रस्तुत किया । यह राष्ट्रीय महत्व की दृष्टि से किया कार्य है ।

बलांगीर में श्रीनिवास उद्गाता ने आँसू और चित्रलेखा का ओड़िया में रूपांतरण कर एक महत्वपूर्ण शुरुआत की। बाद में उन्होंने कई ग्रंथों का ओड़िया से हिंदी में अनुवाद किया।

ढेंकानाल के श्रीसिद्धार्थ मानसिंह होनहार अनुवादक थे। उन्होंने महापात्र नीलमणि साहू की आत्मकथात्मक कृति - का रूपांतर किया। बाद में वीणापाणि महांति की 'पाटदेई' (कहानी संकलन) से उनकी हिन्दी मुहावरे में गहरी पकड़ सामने आयी। परंतु अल्पायु में उनके देहावसान से यह कार्य अधूरा रह गया। एक विशिष्ट प्रतिभा के जाने से अनुवाद कार्य की सर्वाधिक क्षति हुई।

इधर युवा पीढ़ी में अनुवाद के प्रति रुझान बढ़ रहा है। कई लोग सक्रिय हैं। इधर डा. भगवान त्रिपाठी ने कुछ उपन्यास एवं मनोज दास की महानियों का अनुवाद हिन्दी में किया है। यद्यपि भगवान ने अनुवाद काफी अर्से पहले शुरू किया था, परंतु पिछले चार-पांच साल से ही चर्चा में आ पाये हैं। उनका सारा बैकग्राउंड ओड़िशा में रहा, परंतु हिन्दी अध्ययन - अध्यापन से निरंतर जुड़े रह कर वे अनुवाद में आगे बढ़ सके हैं।

### \* अनुवाद : उत्कल में सुविधा-असुविधा :

अब रेवेंशा विश्वविद्यालय, रमादेवी कालेज और खलिकोट कालेज में तीन जगह एम.ए. तक पढ़ाई होने लगी है, केंद्रीय हिन्दी संस्थान का भुवनेश्वर और हिन्दी शिक्षण संस्थान कटक में बी.एड. की पढ़ाई होने लगी है। बीस-पच्चीस जगह आनर्स एवं सैकड़ों कालेजों में +3 व +2 हिन्दी पढ़ाई जाने लगी है। इससे हिन्दी के अच्छे जानकार सामने आ रहे हैं। आगामी दशक बतायेगा इसका लाभ अनुवाद क्षेत्र को कितना मिल रहा है! पहले तो पी.जी. के लिए इलाहाबाद, शांतिनिकेतन आदि बाहरी जगहों जाने की (आर्थिक) क्षमता वाले ही लाभ उठा पाते थे। अब स्थिति और हवा हिन्दी के पक्ष में है। हिन्दी से जुड़ी हर किताब आज बुकस्टाल पर पा सकते हैं। नौकरियों के लिए सबसे ज्यादा संभावनाएँ हिन्दी में दिख रही हैं। यद्यपि अनुवाद प्रशिक्षण की कोई विधिवत व्यवस्था नहीं है। सिर्फ इन्फो के केंद्रों पर डिस्टेंस एजुकेशन के तहत एक दो केंद्रों पर ओड़िशा में अनुवाद के पी.जी. डिप्लोमा के लिए सुविधा हुई है। इनमें से एक भी साहित्यिक अनुवादक अब तक उभर कर नहीं आ सका। कोर्स में तो साहित्यानुवाद और प्रयोजनमूलक अनुवाद दोनों पर बराबर जोर दिया गया है। परंतु साहित्यानुवाद के लिए आवश्यक वह सांस्कृतिक एवं साहित्यिक बोध वाली शिक्षा देने में ये केंद्र सक्षम नहीं हो सके। अतः इतनी बड़ी सुविधा का विशेष फल ओड़िया -हिन्दी अनुवाद क्षेत्र में नहीं दिख सका।

अनुवादक को कुछ **शब्दकोश** भी मिल जाते हैं। बिबाधर मिश्र संकलित 'त्रिभाषी कोश' की सामग्री एवं संकलन बहुत अच्छा होते हुए भी उसमें प्रूफ की गलतियों के कारण वह प्रचारित नहीं हो

पाया । केंद्रीय हिन्दी निदेशालय ने राधाकांत मिश्र संपादित हिन्दी - ओड़िया एवं ओड़िया - हिन्दी कोश का प्रकाशन किया था, परंतु वह ज्यादातर कार्यालयीन काम का है, कविता-कहानी, उपन्यास, नाटक अनुवाद करने वालों के लिए सीमित उपयोग वाला है । छोटी-सी शब्दावली का संग्रह और अनुवाद होता तब सहायक सामग्री बन जाती । इस संबंध में संदर्भ ग्रंथ भी बहुत थोड़े हैं । राष्ट्रभाषा रजत जयंती ग्रंथ और उत्कल दर्शन (ब्रजराजनगर में बिड़लाओं के सहयोग से प्रकाशित) काफी दिन पहले छपे थे, अब वे कहीं उपलब्ध नहीं । वैसे ही उत्कल संस्कृति पर डा. बी.गुप्ता एवं अशोक पांडेय आदि के सहयोग से एक संदर्भ ग्रंथ छपा था । संदर्भ सामग्री संतोषजनक थी पर संपादन के अभाव में इसका बहुत ज्यादा प्रचार न हो सका । वह भी अब कहीं नहीं मिलता । इस प्रकार अनुवादक के पास क्या बचता है, सहायता करने के रूप में ? आसपास का वातावरण । जो लोग हिन्दी - ओड़िया दोनों जानते हैं । कुछ हिन्दी अखबार, जहाँ कभी-कभी अनुवाद के लिए सहायक संदर्भ सामग्री मिल जाती है । ओड़िया के पत्रों पर जो छपता है उससे कई बार उत्कलीय शब्द हिन्दी में उपलब्ध हो जाते हैं । लेकिन यों ओस पी कर क्या प्यास बुझ सकती है ? बस यहाँ के रचनाकार ही उसके सबसे बड़े संदर्भ ग्रंथ, सहायक सामग्री, शब्दकोश, शब्द संग्रह .... कुछ भी कह लें, उनके साथ चर्चा कर अपनी राह सुगम बना सकता है । इससे बेहतर मार्ग अभी तक ओड़िया -हिन्दी अनुवादक के लिए (मार्ग तो दूर, पगडंडी तक) नहीं बन पायी । चाहे अनपढ़ हो, देहाती हो, उस ओड़िया भाषी से कोई प्रचलित शब्द पूछें - एक संकल्पना (Concept) दे ही देता है । अब अनुवादक अपना मार्ग उसी पर तय करे । यह संस्कृति सचेतनता एक तो श्रीजगन्नाथ के प्रभाव से सर्वत्र मिल जाती है । दूसरे ओड़िया का संस्कृत के साथ घनिष्ठ संपर्क है । अतः भाषागत संस्कारों की गहराई सहज ही उपलब्ध है । अतः सर्वाधिक सुरक्षित साधन आम आदमी ही है ।

परंतु प्रकाशन के लिए दिल्ली - इलाहाबाद जाना और उनकी कृपा पर निर्भर रहना स्वाभिमान के लिए कम जंचता । राष्ट्रभाषा प्रचार सभा के बाद प्रचार संस्थाओं की सबकी आर्थिक स्थिति दुर्बल रही । केवल 'परिवेश' हिन्दी में अपना प्रकाशन कार्यक्रम जारी रखे हैं । गैर व्यवसायिक प्रकाशक के रूप में श्रीगोपीनाथ साहु के सुपुत्र श्रीसाहु ने अनेक महत्वपूर्ण कृतियों का अनुवाद करा कर प्रकाशित किया है । प्रोफेशनल प्रकाशन के रूप में 'शबनम पुस्तक महल' केवल हिन्दी प्रकाशन का संकल्प लेकर सामने आया । परंतु लेखकों, पाठकों के अनुरोध पर इस संस्था को अपनी गतिविधि विस्तारित करनी पड़ी । प्रकाशन जगत इसे हिन्दी प्रकाशक के रूप में ही मान्यता देता है । बहुत कम समय में यहाँ से ओड़िया के अनेक प्रसिद्ध ग्रंथ अनूदित होकर हिन्दी पाठकों तक पहुँच चुके हैं । इनमें मनोज दास, चंद्रशेखर रथ, राजेंद्र पंडा, सीताकांत महापात्र, रमाकांत रथ, वीणापाणि महांति, प्रतिभा राय, प्रतिभा शतपथी हरप्रसाद दास, सौभाग्य मिश्र, ब्रजनाथ रथ आदि के महत्वपूर्ण ग्रंथ अनूदित होकर प्रकाशित

हुए हैं। पिछले कुछ अर्से से .... यहाँ से कविता, कहानी, उपन्यास, नाटक, आदि अनेक विधाओं की कृतियाँ प्रकाशित हुई हैं। पाठकों का ध्यान आकर्षित करने में ये अनुवाद काफी हद तक सफल हुए हैं। विद्यासागर प्रकाशन ने कई नाटक, कहानी संग्रह .... का प्रकाशन कर हिन्दी प्रकाशन में अपनी पहचान बनाये रखी है। विश्वमुक्ति की गतिविधि भी प्रसन्न पाटशाणी, डॉ. शंकरलाल पुरोहित व शशांक के नेतृत्व में आगे आयी हैं। सचित्र ओड़िया साहित्य, पैगाम, हिन्दी प्रचार संस्थाओं की पत्रिकाएँ (राष्ट्रभाषा पत्र, कर्लिग ज्योति, .. ओड़िया साहित्य को सजो कर हिन्दी में प्रस्तुत करने में महती भूमिका निभाती रही हैं।) वैसे भी साहित्य में कम बिकने वाली विधा में अनुवाद का स्थान है। फिर ओड़िशा में प्रकाशित अनुवादों का बिक्रय क्षेत्र सीमित हो जाता है। कारण कई हो सकते हैं। परंतु सारतः कहा जा सकता है कि ओड़िया साहित्य के लिए अच्छे अनुवादकों का अभाव हो सकता है, प्रकाशकों का अभाव आज कहीं नहीं। उनके बिना यह स्थानीय प्रांतीय साहित्य मर्यादा खो देगा। इधर सुवाष पाणि (भारतीय राजभाषा परिषद) के अधीन परोक्ष अनुवाद प्रकाशन में आगे आए हैं। जगदीश चंद्र बसु की बंगला जीवनी को ओड़िया के माध्यम से हिंदी में अनुवाद कर प्रकाशित किया है।

इधर राजा राम मोहनराय लाइब्रेरी फाउंडेशन, केंद्रीय हिन्दी निदेशालय आदि की थोक बिक्री योजनाओं को ध्यान में रख कर भी हिन्दी में अनुवाद का निर्णय होता है। लेकिन यह बात स्पष्ट है कि पुरस्कृत (ज्ञानपीठ, सरस्वती, मोदी, सारला... आदि की पुरस्कृत कृतियाँ) साहित्य का अनुवाद होने और प्रकाशन में ज्यादा समय नहीं लगता। साहित्य अकादमी एवं ने.बु.ट्र., भा.भा. परिषद एवं भारतीय अनुवाद परिषद ऐसी पुरस्कृत एवं उत्कृष्ट रचनाओं के प्रकाशन में सदा तत्पर रहती हैं। परंतु इनके अनुवाद प्रकाशन की प्रक्रिया इतनी जटिल और समय सापेक्ष्य है कि उभय अनुवादक और लेखक दोनों ऊब जाते हैं। फिर भी ज्यादातर ग्रंथ इसी प्रक्रिया के तहत सामने आ रहे हैं। परंतु इसमें प्रचार-प्रसार और भी धीमा होता है। अतः कई स्वाभिमानी रचनाकार इसमें विशेष रुचि नहीं ले पाते।

पत्र-पत्रिकाओं में 'सचित्र ओड़िसा साहित्य' और 'राष्ट्रभाषा पत्र' कुछ समय चल कर बंद हु,। परंतु अनुवाद वाहक ब्रजसुन्दर पाढ़ी के कारण 'वार्तावाहक' अभी भी पंद्रह वर्ष से प्रकाशन की नियमितता रखे है अनुवाद के लेखन और प्रकाशन के बाद उसका विक्रय बड़ी समस्या बन जाता है। 'महाभारत' (सारलादास) का एक खंड दिल्ली से प्रकाशित हुआ। अब ओड़िशा साहित्य अकादेमी इस महत्व ग्रंथ को प्रकाशित करने की योजना कर रही है। उसके बाद वितरण की कठिन समस्या थी। स्वयं अनुवादक प्रकाशन करे तो वह उन्हें किस माध्यम से प्रसारित करे ? यह जटिल समस्या है।

परंतु अनुवाद के मूल्यांकन की बात आज भी कोई नहीं करता। उत्कल में अनुवाद का मूल्यांकन बहुत कम जगह हो पाता है।

## \* उपेक्षित अनुवाद आलोचना :

ओड़िया से हिन्दी अनुवाद प्रायः आलोचकों की उपेक्षा का शिकार होता रहा है । अपने आप हिन्दी अनुवाद की सामग्रिक आलोचना बहुत कम होती है । फलतः पाठक अनुवाद की विशेषता से वंचित रहता है । कम समय में इतना सारा पढ़ कर उस पर टिप्पणी प्रस्तुतिकरण की बात कल्पना मात्र है । चर्चा किये बिना हिन्दी पाठक ग्रंथ के प्रति अवधारणा नहीं बना पाता । अतः अनुवाद - आलोचना का महत्व असंदिग्ध है । अनुवाद शास्त्र के आधार पर उसकी कहीं चर्चा नहीं हो पाती । पाठकीय मार्ग दर्शन का काम प्रायः नहीं हो पाता । प्रचार-प्रसार के अभाव में सूचना भी दुर्लभ होती है । ऐसे में अनुवाद छप कर भी पाठकीय पृष्ठपोषकता नहीं पा रहे । यह भी एक जटिल समस्या है । पाठकीय उत्साह बिना नये-नये अनुवादकों को संबल नहीं मिल पाता है ।

एक समय था जब मूल लेखन और अनुवाद कर्म की तुलना कर अनुवाद को हेय कहा जाता । अंग्रेजी में अनुवादकों के लिए सैकड़ों गालियाँ ( जैसे धोखेबाज, दगाबाज, दलाल, ब्यूटिफुल या फेथफुल ...) ऐसे फतवे देकर अनुवाद को ओछा कहा जाता । जो हो, यहाँ तक भी कहा गया - जिसमें हिन्दी लेखन की प्रतिभा नहीं है, वह ओड़िया अनुवाद कर अपने को लेखक कहाने का शौक पूरा करता है । अगर वास्तव में रचनात्मकता है तो उसे सृजन (कविता, कहानी, उपन्यास, नाटक आदि) जैसे कार्य में नियोजित होना चाहिए । ओड़िया - हिन्दी भाषाओं (जैसे बांग्ला- ओड़िया में है) के निकट संपर्क के कारण अनुवाद एक आसान -सा गलियारा है । यह तो कोई भी कर लेगा । इसमें 'प्रतिभा' की क्या बात है ?

इस तरह की टिप्पणियाँ कुछ हद तक सत्य हैं । पर उन्हें पूर्ण सत्य के रूप में स्वीकार कर अनुवाद के प्रति हीन दृष्टि किसी रूप में संगत नहीं लगती । राजभाषा या कामकाजी अनुवादों का अनुवाद संधिकाल में जरूरी है । शायद बाद में इनकी वहाँ जरूरत न पड़े । परंतु ओड़िया साहित्य एक स्वतंत्र मर्यादावंत भाषा का साहित्य है । इसे अपनी लिपि और भाषा के दायरे में सीमित रखने की बात मानवता के प्रति अन्याय है, अपराध है । इसे देश की मर्यादाशील क्लासिकल भाषा की मान्यता भी मिल चुकी है । आज हम एक तरफ वैश्वीकरण की बात करते हैं । उधर विश्व ग्राम को स्वीकार करते हैं । सारी दुनिया का ज्ञान, अनुभव, भाव-जगत सर्वजन करने को महत्व देते हैं । ऐसे में अपने को भाषा और लिपि के दायरों में बंद रखने का तत्व समझ में नहीं आता । वैसे भी हर अभिव्यक्ति एक समुदाय से बढ़ कर संपूर्ण मानवता की निधि बने, इसे आदर्श स्थिति कह सकते हैं । इसमें हिन्दी अनुवाद एक कदम आगे जाने जैसा है । कुछ भी हो - यहाँ सीमा तोड़ने का प्रयास तो है ही । इसे और आगे लेने का प्रयास अन्य भाषा-भाषी करेंगे - जब तक मानवता की एक सामान्य भाषा और लिपि नहीं हो जाती । कम से कम एक राष्ट्र के रूप में अपने लिए हमने देवनागरी लिपि और हिन्दी को स्वीकार किया है । अतः

ओड़िया साहित्य का अनुवाद सर्वभारतीय स्तर पर उपलब्ध कराने के लिए हिन्दी अनुवाद तो होते रहना ही चाहिए। यहाँ अंग्रेजी अनुवाद से तुलना अनावश्यक है। अंग्रेजी इस राष्ट्र के सिर्फ दो - तीन प्रतिशत लोगों तक ही पहुँच बना पाती है, भारत की जनता में व्यापक उपस्थिति हिन्दी से ही दर्ज हो सकती है। इसके अलावा अन्य भारतीय भाषायें भी अपने लिए इस सामग्री का उपयोग कर सकती हैं। आदान-प्रदान की दृष्टि से यह सदियों की परंपरा अब वैज्ञानिक, तकनीकी एवं कलात्मक धरातल पर नई जमीन की मांग करती है। अतः इसमें रोड़े अटकाना, अड़चनें डालना, हीन कहना आत्मघाती है। अंग्रेजी अनुवाद का महत्व अंतर्राष्ट्रीय स्तर पर होता है। उसकी बात अलग है। राष्ट्रीय धारा में हिन्दी अनुवाद और अंग्रेजी अनुवाद कहीं प्रतिद्वंदी नहीं ठहरते। विश्व स्तर में ओड़िया की कृति जाने के लिए अंग्रेजी का महत्व निश्चित है।

### ✽ विभिन्न पुरस्कार :

सम्मान एवं ऐसे समारोह भी प्रोत्साहन के लिए किये जाते हैं। परंतु इनमें कुछ कमियाँ रह जाती हैं - उचित समय पर सम्मान, उचित लोगों/ कृतियों का सम्मान और उचित अवसर/ व्यक्ति/ संस्था के जरिये सम्मान इसके महत्व को बढ़ाता है। अनुवाद कार्य आर्थिक दृष्टि से प्रायः बहुत आकर्षक नहीं होता। ये सम्मान, पुरस्कार आदि उसमें उत्साह, प्रेरणा के सूत्र हैं। अतः इन्हें नगण्य नहीं समझा जाना चाहिए। राज्य स्तर पर ओड़िया से हिन्दी अनुवाद के लिए पुरस्कार प्रोत्साहन की किसी स्तर पर कोई योजना या व्यवस्था नहीं है। राज्य के बाहर (जैसे भोपाल, दिल्ली, लखनऊ, आगरा, पटना में) अनुवाद को सम्मान देने के लिए कई मंच हैं। अब इनकी संख्या में और भी वृद्धि हो रही है। भारतीय अनुवाद परिषद इस दृष्टि से एकमात्र संस्था है जो अनुवाद और उससे जुड़ी विविध गतिविधियों से जुड़ी है। इसमें पुरस्कार एवं सम्मान भी शामिल हैं। केंद्रीय हिन्दी निदेशालय, उ.प्र. हिन्दी संस्थान एवं केंद्रीय हिन्दी संस्थान के अलावा भारतीय भाषा संस्थान भी इन गतिविधियों को प्रोत्साहित करता है। इन सब में ओड़िया साहित्य को अनुवादों के जरिये सम्मान मिला है। भारतीय ज्ञानपीठ अनुवाद को कोई पुरस्कार नहीं देता, हाँ, पुरस्कृत कृतियों के हिन्दी अनुवाद छापता है। वैसे ही सरस्वती सम्मान प्राप्त कृतियों के अनुवाद में भी हिन्दुस्तान टाइम्स ग्रुप वाले सहयोग करते हैं। राज्य की अनेक संस्थायें ओड़िया कृतियों को तो सम्मानित करती हैं, परंतु अनुवाद के लिए सम्मान या प्रोत्साहन की कोई बात ध्यान में नहीं आयी। ओड़िसा साहित्य अकादमी में ओड़िया अनुवादों को सम्मानित करने की प्रथा जरूर है। एक बार गंगाधर फाउंडेशन ने नंदिनी शतपथी को उनके अनुवाद (ओड़िया में) के लिए एक लाख रुपये से सम्मानित किया था। उत्कल साहित्य समाज कटक में अनुवाद पुरस्कार स्थापित हुआ है।

## \* अनुवाद प्रशिक्षण :

इसी क्रम में देखें तो स्पष्ट होगा कि ओड़िशा में हिन्दी अनुवाद के लिए किसी तरह के प्रशिक्षण की कहीं कोई सुनिश्चित व्यवस्था नहीं है। देश के किसी पाठ्यक्रम में इस बारे में कोई स्तरीय प्रावधान नहीं हुआ। यही कारण है कि प्रशिक्षित ओड़िया- हिन्दी अनुवादक (साहित्यिक एवं प्रयोजनमूलक भाषा के लिए) मिलना दुरुह है। जो भी इस काम में लगे हैं सब 'करत-करत अभ्यास के...' अभ्यस्त होते गए हैं। एक बार रेवंशा विश्वविद्यालय (रेवंशा कालेज) में अनुवाद का पाठ्यक्रम खुला था, परंतु उसके पूरा रूप लेने से पूर्व ही वह बंद हो गया। उसी प्रकार केंद्रीय हिन्दी संस्थान के भुवनेश्वर केंद्र में अनुवाद पाठ्यक्रम की बात तो शुरू से ही चल रही है। इस विस्तार की संभावना से इनकार नहीं किया जा सकता। तीन हिन्दी ट्रेनिंग संस्थाओं में शिक्षक प्रशिक्षण से हट कर कोई पाठ्यक्रम शुरू करने की कल्पना भी कहीं दिखाई नहीं की (दुर्भाग्य से अब तो एक ही संस्थान बचा रह गया है जो हिन्दी शिक्षण डिग्री पाठ्यक्रम चला रहा है) हालांकि कुछ समय पूर्व 'वर्णमाला' ने एक गतिशील पाठ्यक्रम और नियमावली ओड़िया हिन्दी एवं ओड़िया - अंग्रेजी अनुवाद पाठ्यक्रम को लेकर बनाई थी। परंतु उसके लागू होने से पूर्व ही संस्था निष्क्रिय हो गई। बस, उत्कल विश्वविद्यालय के अंग्रेजी विभाग में अनुवाद का नियमित पाठ्यक्रम है। वहाँ बराबर गतिविधियाँ चलती रहती हैं। पर वे तो अंग्रेजी या ज्यादा से ज्यादा ओड़िया अनुवाद से जुड़े हैं। हिन्दी अनुवाद की ओर संभवतः उनका कभी ध्यान नहीं गया। आजकल कालेजों में पांच-दस नंबर का अनुवाद पाठ्यक्रम आनर्स स्तर पर प्रायः सब विश्वविद्यालयों में स्वीकृत है। परंतु वह अपना विशेष महत्व नहीं बना पाया है। 'राजभाषा प्रशिक्षण' जैसे पेपरों में कुछ ज्यादा महत्व दिया गया है। परंतु उसके पठन-पाठन के लिए कोई विशेष व्यवस्था न होने के कारण छात्र उस सुविधा का लाभ उठाने से वंचित रह जाते हैं।

## \* अनुवाद सहायक सामग्री :

अनुवाद के लिए सहायक सामग्री की बात करें तो ओड़िशा ही क्यों, सारे देश की स्थिति पर नजर डालें, बड़ी मायूसी हाथ लगती है। बस, अनुवादक का न कोई सहायक होता है, न कोई सहायक सामग्री होती है। रवीन्द्रनाथ की एक पंक्ति कहा करते थे हंस कुमार तिवारी 'तुमार डाक सुने केउनाय आसे, एकला चलो एकला चलोरे !' वैसे उत्कल में एक सुविधा है सबसे बड़ा कोश गोपाल प्रहराज निर्मित भाषाकोश है। इसका पुनर्मुद्रण हो गया है। बाकी दो-तीन ओड़िया - हिन्दी कोश हैं पं. बिंबाधर मिश्र ने ओड़िया हिन्दी - अंग्रेजी (त्रिभाषी कोश) बनाया था। प्रकाशित भी हुआ। परंतु खूब श्रम पूर्वक किया गया कार्य प्रूफ की त्रुटियों के कारण किसी काम का न रहा। एक बड़ा प्रयास असफल हो गया। बाकी व्यावसायिक घरानों ने छोटे-मोटे हिन्दी-ओड़िया कोश बनाये हैं। स्टेट बैंक ने अपने व्यवहार के लिए तीन दशक पूर्व एक आंतरिक व्यवहार हेतु ओड़िया - हिन्दी कोष बनाया था। पर वह

साहित्यिक अनुवाद में उतना सहायक नहीं हो सकता ।

केंद्रीय हिन्दी निदेशालय ने प्रो. राधाकांत मिश्र द्वारा संपादित ओड़िया-हिन्दी एवं हिन्दी ओड़िया शब्दकोश छापा था । प्रो. मिश्र ने काफी सोच-विचार कर शब्द सूची बनाई थी । समांतर हिन्दी शब्दों के चयन में कोई त्रुटि नहीं रही । परंतु अब उसके अद्यतन बनाने और शब्द संख्या का विस्तार कर अनुवादक उपयोगी बनाया जाना चाहिए । कुल मिला कर अनुवादक को अपने आसपास से ही समस्याओं का (पूछ-पूछ कर) समाधान करना होता है । वह घर का नौकर हो या फिर विश्वविद्यालय के ओड़िया विभाग का प्रोफेसर । हिन्दी अनुवाद के लिए कोई विधिवत व्यवस्था नहीं मिल सकती । जब अनुवादक कुछ, कहीं से सहयोग नहीं पाता तो अपने सीमित ज्ञान के सहारे, अनुभव कर, अनुवाद करता रहता है । कई बार मूल रचनाकार स्वयं (हिन्दी भाषी क्षेत्र में काफी समय रह चुकने के कारण) अनुवादक को मार्ग दिखाने आगे आ जाता है । अंत में वह स्वविवेक, स्वानुभूति, स्वर्चितन के बल पर अर्थान्तर का प्रयास करता है । इन अनचली राहों (Untrodden path) का पथिक जो ठहरा । ऐसे में कहीं रोड़ा, कहीं कांटा, कहीं ऊंचा-नीचा (ऊबड़-खाबड़) ... हर तरह की जमीन मिलती है ।

कुछ भी हो, मार्ग न हो, साधन न हों, प्रकाशक न हों, पाठक न हों ... सारे 'नहीं-नहीं' के वातावरण में भी उसे 'अस्ति' का मंत्र जाप करना होता है, इस विपरीतमुखी धारा में मनुष्य आगे गति करता है । अनुवादक एक बड़ी धारा के आखरी मोड़ पर खड़ा है । युगों में शैली बदली, आवश्यकताएँ बदली, बहुत कुछ बदलते-बदलते आज मशीनी अनुवाद और वैश्वीकरण के छोर पर खड़ा है । अनुवादक के लिए पहले से यह ज्यादा बड़ी चुनौती है । उसका पाठक केवल भारत ही नहीं है - विश्व में कहीं भी मिल जाता है (एक बार भारतीय भाषा संस्थान के क्षेत्रीय निदेशक डा. अपन्ना प्रधान - जो अमेरिका यात्रा कर लौटे थे - कहने लगे, हिन्दी का अनुवादक ओड़िया साहित्य लेकर विस्कांस विश्वविद्यालय में मुझ से भी बहुत पहले पहुँच चुका है ! यह देख कर अनुवादक से ईर्ष्या हो रही है, वैसे हृदय से उन्हें इस अग्रिम यात्रा के लिए मेरी बधाई !) ओड़िया साहित्य हिन्दी के माध्यम से विश्व में कहीं भी मिल जायेगा । तो फिर अनुवादक को इस पर प्रसन्न होना चाहिए । उसका दायित्व भी बढ़ जाता है । आज अनुवाद को जिस गौरव-गरिमा से देखा जा रहा है वह इस कार्य को और गंभीरता से करने के लिए प्रेरित करता है । अब तो इंटरनेट आ जाने के बाद किसी न किसी रूप में यह अनूदित सामग्री वेबसाइट पर मिल ही जाती है । वैश्वीकरण का प्रभाव ओड़िया-हिन्दी अनुवाद पर क्यों नहीं पड़ेगा ? लोगों में जानने की उत्कंठा बहुत बढ़ गई है । लंबे और मोटे ग्रंथों से वैश्विक पाठक उतना लगाव नहीं रख पाता । यही कारण है कि अब तो लेखक अपनी वेबसाइट बना कर महत्वपूर्ण कृतियों को इंटरनेट पर देने लगे हैं । कुछ ओड़िया लेखकों ने भी इस ओर पहल की है । आशा है आने वाले युग में बहुत निकट भविष्य में यह कामना भी पूरी हो जायेगी ।

## \* अनुवाद : अधूरी पहचान का मुद्दा :

पिछले दिनों एक प्रश्न पूछा गया - सच्चिराउत राय का 'चित्रग्रीव' हिन्दी में क्यों नहीं मिलता ? इस प्रश्न की ओट में अनेक समस्यायें छुपी हैं । वह दुःखती रग है जिस की चर्चा कोई अनुवादक नहीं करता । अनूदित साहित्य में अनेक महत्वपूर्ण कृतियों को हिन्दी पाठक तक पहुँचने का सौभाग्य नहीं मिला । जैसे सच कहा जाय तो व्यंग्यात्मक उपन्यास बहुत अधिक नहीं हैं, जो हैं वे तो उत्कृष्ट होने के बावजूद हिन्दी नहीं हो सके । उदाहरण के तौर पर 'नाकटा चित्रकार' फतूरानन्द की तीखी व्यंग कृति है । अभी कान्हुचरण महांति का जन्मशती वर्ष है । वे ओड़िया के शीर्षस्थ उपन्यासकार हैं । उनका एक भी उपन्यास ('का' को छोड़ दें जो अब बजार में नहीं मिल सकता) ढंग से अनूदित होकर प्रकाशित नहीं हुआ । मनोज दास के एक और कहानी संग्रह, उपन्यास के अलावा भी हिन्दी के लिए उनकी कृतियों की कमी नहीं । गायत्री बसुमलिक की सुपाठ्य कृतियाँ हिन्दी में कहाँ ? महापात्र नीलमणि साहू की कथा महानदी नहीं पार कर सकी । बड़े कथाकार विभूति पटनायक से हिन्दी जगत अपरिचित हैं ।

यह सारा साहित्य पुरानी पीढ़ी एवं सुप्रतिष्ठित साहित्यकारों की देन है । नई पीढ़ी का कथानक तो अनछूआ है । नई पीढ़ी का प्रयोग हमें अपने युग के साथ-साथ चलने के अहसास में भर देता है । इन रचनाकारों की या तो अनुवादक तक पहुँच नहीं है, अथवा हिन्दी प्रकाशकों को वे प्रभावित नहीं कर पाये हैं, अथवा ये संकोचवश अनुवादक को अपनी कृतियों से परिचित नहीं करा सके । कारण जो भी हो, हिन्दी अनुवाद की यह दुखती रग है । युवा स्वर कितना भी तेज हो, अब तक अनुवाद में हिन्दी पाठकों तक इनका कोई खास साहित्य नहीं पहुँच सका । दिल्ली के प्रकाशकों पर हिन्दी अनुवाद का काफी दबाव है । अगर इसे विस्तृत कर दें और हैदराबाद से पटना, लखनऊ कानपुर की तिहरी भूमिका में पहुँचा दें तो काफी लाभ होगा । इधर बनारस, इलाहाबाद, आगरा, जयपुर के प्रकाशक भी काफी महत्वपूर्ण साहित्य छाप रहे हैं । ओड़िया की नई पीढ़ी के उपन्यासों की ओर उनका ध्यान आकृष्ट हो जाय तो बड़ा अभाव दूर हो सकता है, एक कंस्ट्रेंट हटे । विश्व में अनुवाद का क्षेत्र कितना बढ़ गया । यूरोप और अमेरिका के प्रतिष्ठानों के अपने अनुवाद विभाग हैं । अपने एजेंटों से भी वे अनुवाद करा लेते हैं । भारत में ऐसा कुछ भी नहीं है । फिर भी भारतीय और विश्व मानचित्र में अपना स्थान बनाने हेतु ऐसे स्वप्निल परिवेश की जरूरत है । अनुवाद को इस स्थिति से आगे लेने में इसमें ओड़िया की पुरस्कार देने वाली छोटी-बड़ी संस्थायें एवं हिन्दी की सर्वभारतीय संस्थायें भी महत्वपूर्ण भूमिका निभा सकती हैं । सचमुच इस नई पीढ़ी के प्रवेश बिना ओड़िया साहित्य की पहचान अधूरी बनी रहेगी । हमारा लक्ष्य राष्ट्रीय एकता, आपसी सौमनस्य, कला की सर्वोत्तम अभिव्यक्ति साहित्य के प्रचार-प्रसार, वैश्विक चुनौतियों के वातावरण में वैश्विक भाव के पनपते स्वरूप से रू ब रू होने - जैसी बातों के लिए ठोस कुछ करना जरूरी है । ओड़िया भाषा संस्थान के जरिये इसे प्रोत्साहन दिया जा सकता है । 'एषणा

परिषद' इस संबंध में कुछ मार्ग दर्शन कर सकती है । 'आत्म प्रकाशनी' को एक वृहत्तर संस्था के रूप में अनुष्ठान बनाकर इंस्टीच्यूट की तरह सक्रिय किया जा सकता है । ओड़िया साहित्य समाज, सारला अवार्ड, सारला साहित्य संसद जैसी संस्थायें हिन्दी की विभिन्न गैर सरकारी, अर्धकारी संस्थाओं के साथ सहयोग कर ओड़िया से अनूदित हिन्दी पांडुलिपि भिजवायें, उधर से वे ओड़िया में अनूदित पांडुलिपि भेंजे - संपर्क सूत्र बनें - रास्ते बहुत हैं, संभावनाएँ असंख्य हैं - पाठक भी हैं । केवल आत्मिक संकल्प लेकर कोई पहल करें ! शायद यह प्रेरणा स्वयं जगन्नाथ ही प्रदान कर सकते हैं । आज तक सारलादास -ओड़िया साहित्यके शिखर पुरुष के महाभारत का एक खंड ही हिंदी पाठक को दे सके हैं । इन महाप्रभु की कृपा हुई तो संपूर्ण महाभारत भारतीय साहित्य का गौरव ग्रंथ हिंदी बन कर सामने आ सकेगा । यह अनुवाद की भारतीय साहित्य को महत्वपूर्ण देन होगी । एकता का अनूठा सूत्र बनेगा ।

## 2.8 सारांश :

इस प्रकार हमने पिछले कुछ प्रश्नों पर ओड़िया-हिंदी अनुवाद के इतिहास, परंपरा और वर्तमान स्थिति की चर्चा की है । उसकी समस्याओं और समाधान सूत्रों की ओर संकेत किया है । भारतीय भाषा के आपसी अनुवाद की चर्चा के लिए इसे एक उदाहरण स्वरूप ले कर इस पर विस्तृत चर्चा की गई है ।

अनुवाद के वर्तमान स्वरूप और इसके भविष्य की संभावनाओं पर संकेतात्मक प्रकाश डाला गया है ।

\*\*\*

## 2.9 अभ्यास प्रश्न :

निम्न के उत्तर दीजिए :

- i) अनुवाद को कला कहेंगे या विज्ञान ?
- ii) अनुवाद प्रक्रिया पर प्रकाश डालिए ।
- iii) नाइड ने अनुवाद कार्य को किन चरणों में व्यक्त किया ? स्पष्ट कीजिए ।
- iv) अनुवाद में समतुल्यता के सिद्धांत पर विचार कीजिए ।
- v) समतुल्यता के विभिन्न चरणों पर प्रकाश डालिए ।

निम्न के संक्षिप्त उत्तर दीजिए :

- क) शैली परक समतुल्यता क्या संभव है ?
- ख) वाक्य स्तर पर समतुल्यता पर सोदाहरण प्रकाश डालिए ।
- ग) अनुवाद प्रक्रिया में पुनर्गठन कैसे करते हैं ?
- घ) अनुवाद प्रक्रिया में 'विश्लेषण' का महत्व स्पष्ट कीजिए ।
- ङ) अनुवाद में 'भाषांतर' की प्रक्रिया पर प्रकाश डालिए ।

## 2.10 सहायक ग्रंथ :

1. भाषा के विविध रूप और अनुवाद - वाणी प्रकाशन
2. अनुवाद कला - कैलाश चंद्र भाटिया , तक्षशिला , दिल्ली
3. अनुवाद विज्ञान - भोलानाथ तिवारी, शब्दकार, नई दिल्ली
4. समतुल्यता का सिद्धांत और अनुवाद - नगेन्द्र

## युनिट -III

विविध प्रकार के अनुवाद

## युनिट -III

### विषय सूची

- 3.0 भूमिका
- 3.1 हिंदी में अनुवाद का प्रारंभ
- 3.2 विविध प्रकार के अनुवाद
- 3.3 साहित्यिक अनुवाद
- 3.4 कार्यालयी तथा वैज्ञानिक एवं तकनीकी अनुवाद
- 3.5 पारिभाषिक शब्दावली का महत्व
- 3.6 मशीनी अनुवाद
- 3.7 कार्यालयीन अनुवाद
- 3.8 भावानुवाद
- 3.9 अनुवाद की प्रासंगिकता और सार्थकता
- 3.10 समकालीन युग में अनुवाद
- 3.11 ग्लोबल संदर्भ और अनुवाद
- 3.12 व्यावसाय और अनुवाद
- 3.13 अभ्यास प्रश्न
- 3.14 सहायक ग्रंथ

## युनिट -III

# विविध प्रकार के अनुवाद

### 3.0 भूमिका:

आज इक्कीसवीं सदी को वैश्वीकरण का युग कहा जा रहा है। इसमें अपरिचय की सारी दीवारें, सारे बंधन तोड़ कर निकट लाने का प्रयास हो रहा है। इतना ही नहीं भाषा का 'ओपेक' रूप घिस मांज कर पादर्शी बना रहे हैं। फलतः अनुवाद का प्रवेश जीवन के हर क्षेत्र में संभव हो पा रहा है। मानवीय परिश्रम से लेकर मशीनी गतिशीलता तक विविध रफ्तार में यह कार्य हो कर इलेक्ट्रॉनिक साधनों से विश्व भर में फैल रहा है। फेसबुक से संपर्कों में गति भी आ रही है। ऐसे में अनुवाद के विविध रंग, रूप, विविध क्षेत्र, विविध प्रकार से सामने आ रहे हैं। यह अध्ययन अपने आपमें एक भरा-पूरा शास्त्र का रूप ले चुका है। इसकी शाखा-उपशाखायें खुल चुकी हैं। यहाँ पर हम बहुत सीमित रूप में कुछ दो शाखाओं पर विचार विमर्ष करेंगे। प्रमुख है ललित साहित्य का अनुवाद और फिर आगे चल कर ज्ञान-विज्ञान और सूचनात्मक साहित्य का अनुवाद। इन दोनों का उद्देश्य भिन्न है। इनकी प्रविधि भिन्न है। दोनों में भिन्न मानसिकता की जरूरत पड़ती है। दोनों का उपयोग क्षेत्र भी भिन्न-भिन्न है। इस संबंध में विद्वानों ने अपने विचार कुछ मूल-मान्यताओं के आधार पर रखे हैं। वे भूल जाते हैं कि भारतीय साहित्य लंबे अर्से तक मौखिक (Oral literature) रहा है। तब यहाँ साहित्य क्षेत्र में ही ज्ञान-विज्ञान और कला संबंधी नियमादि आ जाते थे। उनके अनुवाद की पद्धति और आभिमुख्य बदलते रहे। विश्व का प्राचीनतम ज्ञान-विज्ञान और जीवनानुभव भंडार वेद हैं। यह अत्यंत संश्लिष्ट और सांकेतिक भाषा में रचा साहित्य है। इनके रचयिताओं के जीवन मूल्य इतने उच्च थे कि आज के किसी साहित्य से उनकी तुलना संभव नहीं है। तब उनके लिए हमारे पास कोई लिपि नहीं थी। केवल गुरु सुना कर अंतरण करता था। इनको इसी दृष्टि से श्रुति कहा गया। यह परंपरा और प्रक्रिया इतनी 'परफेक्ट' - सटीक थी कि सदियों तक यह साहित्य बिना क्षति के अंतरित होता रहा। परंतु जनसंख्या बढ़ने और उनके दूर-दूर तक बसने के कारण लिपि और भोजपत्र, ताड़पत्र आदि आधारों का आविष्कार सुरक्षा और अंतरण के लिए किया गया। उच्चरित ध्वनि को लिपि संकेतों में सुरक्षित कर लिया जाने लगा। इस कारण कालान्तर में उसके स्पष्टीकरण की जरूरत पढ़ने लगी। यह मुख्य चिंता का विषय बना। इसी में अनुवाद की जरूरत पहली बार सामने आयी। ऋषि एवं आचार्य इसके प्रति सचेत थे। अतः उन्होंने प्राचीन रूप के वेदों का बाद की संस्कृत भाषा में लिखा गया। कहीं-कहीं उसका गद्यान्तर भी

लिखाया गया । पुरानी भाषा व्यवस्था उन कृतियों तक सीमित रही, लोक प्रचलन में हट गई । यहीं लोक प्रचलित भाषा को लौकिक संस्कृत कहा गया । इसमें आचार्यों ने टीकार्यें लिखी । वेदों की ऋचार्ये भाषा या टीकाकार निम्न विधि से प्रचलित हुई :

नैरुक्त, वैयाकरण, ऐतिहासिक, याज्ञिक, पूर्व साहित्य, परिव्राजक, नैदान, आत्मप्रवाह और अध्यात्मकी पद्धति रूप में प्रचलित हुई थी । इनमें सर्वाधिक प्रसिद्ध यास्क माने जाते हैं । यास्क के बाद सदियों तक जो कार्य हुआ वह आज उपलब्ध नहीं है । स्कंदस्वामी , नारायण, उद्ग्रीव आदि के भाष्य काल के गर्भ में समा गए । आगे चल कर माधव भट्ट, वैकट राघव, आनन्द तीर्थ, आत्मानन्द आदि ने ऋग्वेद का भाष्य किया ।

इस लंबी परंपरा में सायण का नाम और काल हमारे पास प्रामाणिक रूप में उलब्ध है । लगभग चौदहवीं सदी का यह कार्य बहुत महत्वपूर्ण है । वेदों का यह भाष्य पश्चिम, विशेष कर जर्मन अध्येताओं के लिए भी आदर्श रहा । आगे चल कर दयानन्द सरस्वती ने वेदों की आधुनिक व्याख्या की ।

भाषा परिवर्तन के साथ-साथ यहाँ संस्कृत, पालि, प्राकृत, अपभ्रंश का प्रचलन तो हुआ, पर देश में इनमें अनुवाद की कोई परंपरा नहीं बन सकी । वरन व्यापक जन समुदाय से जुड़ी रही । प्राकृत के कई ग्रंथों का संस्कृत में छायानुवाद मिलता है । इनमें पैशाची प्राकृत में 'वड्डकहा' का क्षेमेंद्र ने 'वृहद्कथा मंजरी' और फिर सोमदेव ने 'कथा सरितसागर' के रूप में किया ।

तब बौद्ध धर्म का प्रचार तिब्बत, चीन, जापान, लंका, जावा, बाली देशों में हुआ । 'त्रिपिटक' का अनुवाद उधर हुआ । बौद्ध धर्म के मूल ग्रंथ अनूदित होकर तिब्बत होते हुए चीन पहुँचे, जहाँ आज भी वे सुरक्षित हैं । प्रो. प्रहलाद प्रधान जब बेचिंग में (१९४३) हिंदी के प्रोफेसर थे तो उनका संस्कृत का पुनरुद्धार किया और प्रामाणिकता विश्व के सामने प्रमाणित हुए । शांतिनिकेतन विश्वभारती ने प्रकाशित किया । 'अभिधर्मसिमुचय' यह अपने ढंग का अनूठा अनुवाद कार्य हुआ जिसमें अनुवाद से लुप्त ग्रंथ का पुनरुद्धार संभव हो पाया । इसे कुछ उपलब्ध अंशों से मिला कर देखा तो बहुत कुछ समान पाया । उसी प्रकार 'अभिधम्म कोष भाष्य' का संस्कृत में (चीनी से) अनुवाद कर विश्व में अनुवाद के एक और महत्व को प्रतिपादित कर लुप्त धारा का पुनराविष्कार किया । भारत में अनुवाद का यह दुर्लभ कार्य प्रधानजी ने किया ।

वैसे संस्कृत ग्रंथों में 'पंचतंत्र' अनुवाद के रूप में काफी प्रचलित रहा । मुगल काल में रामायण, महाभारत, उपनिषद, गीता आदि फारसी में आये । इसके बाद संस्कृत का समग्र साहित्य भारतीय भाषा (विशेष कर हिंदी) में रूपांतरण में उपलब्ध होने लगा । मुद्रण की सुविधा से यह कार्य द्रुत हुआ । संस्कृत से तमिल, तेलुगू, मराठी, बांग्ला, गुजराती, ओड़िआ में अनुवाद की विशेष परंपरा बनी ।

### 3.1 हिंदी में अनुवाद का प्रारंभ :

संस्कृत के प्राचीन साहित्य से होता है । इसके बाद बौद्ध, जैन और फिर इस्लामी ग्रंथों का हिंदी रूपांतर बहुत आया, लेकिन श्रीमद्भागवत का मुंशी सदासुख लाल कृत 'सुखसागर' खूब लोकप्रिय अनुवाद माना जाता है । उसी प्रकार लल्लूजी लाल का 'प्रेमसागर' खड़ीबोली में प्रचलित अनुवाद है । अंग्रेजी शासन में पश्चिमी साहित्य का हिंदी रूपांतरण भी काफी लोकलोचन में आये । परंतु अनेक संस्कृत काव्य नाटक हिंदी में अनूदित हुए । मंच को समृद्ध किया हिंदी कविता को प्रेरणा प्रदान की ।

आजादी के बाद हर क्षेत्र ने अपनी पहचान बनाने, अपना स्थान सुरक्षित करने और राष्ट्र में विस्तार के लिए हिंदी अनुवादों का सहारा लिया ! ये पहले हिंदी को आधार भाषा बनाने लगे । उससे लेकर भारत की अन्य सभी भाषाओं में अनुवाद होने लगा । पहले अंग्रेजी का सहारा लिया जाता है । पर फिर देखा भारतीय भाषाओं के लिए हिंदी ही सहज भाषा है । अतः कोई (भारतीय हो या विदेशी) कृति हिंदी में लाते । फिर अन्य भारतीय भाषाओं में रूपांतरण होने लगा । आज यह सर्वाधिक स्वीकार्य रुट बन चुका है । हिंदी अनुवाद की गौरवशाली स्थिति बन गई ।

अर्थात् अनुवाद ने हिंदी साहित्य को समृद्ध किया और इससे भारतीय साहित्य की समृद्धि का मार्ग प्रशस्त हुआ है । हिंदी में इस अर्धशती में साहित्यिक और तकनीकी -वैज्ञानिक दोनों अनुवाद हुए । पहले साहित्यिक अनुवाद का महत्व लें ।

### 3.2 विविध प्रकार के अनुवाद :

#### 3.3 साहित्यिक अनुवाद की विशेषता :

1) भाषा के मामले में सामान्य भाषा और साहित्यिक भाषा में जैसे अंतर होता है, अनुवादक भी सामान्य भाषा को अनुवाद के जरिये साहित्य भाषा बनाता है । अर्थात् लक्ष्य भाषा को सृजनशील भाषा के रूप में पुनर्गठित करता है । अगर यहाँ वह सामान्य भाषा के स्तर पर ही रुक गया तो अनूदित कृति सामान्य कृति ही रहेगी । वह सृजनात्मक कृति के रूप में अनूदित नहीं हो सकेगी । चाहे कविता हो या कहानी, नाटक हो या एकांकी । मूल लेखक सब कुछ (सृजनकार्य) भाषा के माध्यम से ही करता है । अनुवादक भाषा के प्राणों में प्रवेश करता है । फिर वहाँ से वह अनुवाद में मग्न होता है । अब तक अनुभव कर रहा था मूल को । अब अनुवाद में वह उसी अनुभव को नई भाषा में सृजन रूप दे रहा होता है । अतः अनुभव में प्राप्त सामग्री का वह सृजक ( दूसरे शब्दों में अनुसृजक) की भूमिका में होता है । अतः साहित्यिक अनुवाद का कार्य स्पष्ट और सतही नहीं होता । अनुवादक का संवेदनशील व्यक्तित्व उस सारी भाषा में पुनर्गठित कर व्यक्त करता है । पर उसकी सर्वाधिक महत्वपूर्ण भूमिका होती है । अन्य

किसी अनुवाद में इतना दायित्व नहीं होता । कुछ लोग तो कहते हैं साहित्यिक अनुवादक मूल की संवेदना और सृजन को धारण करने की क्षमता के साथ लक्ष्य में उसे जीवंत सृजनरूप देने का प्रमाण देती है । इस अर्थ में वह कहीं अधिक आगे बढ़ जाता है । साहित्यिक अनुवाद में मूल और लक्ष्य दोनों का साक्षी अनुवादक होता है । अतः वही इसकी क्षमता, इसकी गहराई से परिचित होता है । इस दृष्टि से रचनाकार और अनुवादक में कितना अंतर होता है । हम स्वयं अनुभव कर सकते हैं । परंतु वह गौण नहीं हो सकता । महत्व को नकारना मूल की उपेक्षा होता है । वह अगर अनुवाद की प्रक्रिया में कुछ नहीं जोड़ता है तो मूल लेखक से अधिक नहीं तो कम भी नहीं कहेंगे । लेकिन ऐसी तुलना का विशेष महत्व नहीं है । लेखक लेखक है, अनुवादक अनुवादक है । दोनों अपनी सीमा और भूमि से परिचित हैं । एक-दूसरे का अतिक्रमण करना उचित नहीं । न अनुवादक लेखक पर टीका-टिप्पणी करें । दोनों के क्षेत्र भिन्न हैं, लक्ष्य भिन्न हैं । पाठक भी भिन्न हैं । अतः अपनी-अपनी दृष्टि से वे जो भी उन्हें सार्वभौमता, अपने दायरे में दी जानी चाहिए ।

पश्चिम अनुवाद चिंतकों ने इसे स्वीकार किया है । परंतु अपने ढंग से, अपने शब्दों में । नाइडा और केटफोर्ड कहते हैं - यह सर्जनात्मक रूपांतरण है । यह एक ऐसी स्वायत्त सर्जनात्मक विधा है जिसकी अपनी सत्ता है । यह एक ऐसी अंतर्निष्ठ रचना है जिसमें दो संरचनाएँ समाहित होकर अंतर्व्याप्त हो जाती है । स्रोत भाषा के मूल पाठ की संरचना का निकटतम पाठ तो होता है, लेकिन वह पाठ लक्ष्य भाषा की बुनावट में भी ढलता है । अर्थात् अनुवादक उसे लक्ष्य भाषा में फिर से बुन कर एक जीवंत कृति के रूप में ढालता है, आकार देता है । यह Mechanical restructuring नहीं होता Creative evolution होता है ।

इस संबंध में **लोटमैन** ऐसे अनुवाद को चार वर्गों में बांट रहे हैं -

### \* भाषा परक दृष्टि :

पाठ का अर्थ ग्रहण उपलब्ध भाषा के आधार पर किया जाता है । इसमें मुख्यतः - ध्वनि, शब्द, वाक्य ये तीन स्तर होते हैं । कृति में छंद हो तो वहाँ ध्वनि उच्चारण से अपना सौन्दर्य (नाद सौंदर्य) और संगीतात्मक लय-तान -स्वर तीनों के समन्वय से जो प्रभाव होता है, वह ध्यान देने योग्य होती है । यह रसानुभूति कोई अनुवाद में समस्वर में लक्ष्य भाषा ला नहीं सकता । यहाँ पर भावसौन्दर्य शब्द संयोजन पर निर्भर है । वह भाषांतरण करने पर अक्षुण्ण नहीं रह सकता ।

उदाहरण के लिए 'वैदेहीश विलास' (उपेन्द्र भंज) महाकाव्य आदि से अंत तक 'व' अक्षर से हर पंक्ति मंडित है । उनकी प्रसिद्ध पंक्ति है

“कालिका वकालिका ...”

इसमें ‘क’ की अनुप्रास छटा प्रसिद्ध है । इसे केवल लिप्यंतरण में ही सुरक्षित रखा जा सकता है । संसार की अन्य किसी भाषा में ऐसा शब्द संभार पाना और संजो कर यह ध्वनि सौन्दर्य (नाद माधुर्य) उत्पन्न करना असंभव है । वैसे भी ओड़िया कविता अपनी नादात्मक सौन्दर्यशीलता के लिए विश्व भाषा समुदाय में अनुपम स्थान रखती है । अतः नादाश्रित ऐसे संस्कृत निष्ठ शब्दों का प्रयोग कर भी अनुवाद में उसके माधुर्य, गत्यात्मकता या गतिशीलता कोमलकांत पदावली की अंतस्पर्शी भावना उत्पन्न कर पाना किसी भी अनुवादक के लिए चुनौती है !

तुलसीदास की पंक्ति -

कंकन किंकनि नूपुर धुनि सुनि ।

कहत लखन सन राम हृदय गुनि ॥

मानहु मदन दुदंभी दीन्हीं

मनसा विश्व विजय केह कीन्ही ॥

इन पंक्तियों में ‘क’ और ‘म’ की लयात्मक आवृत्ति पाठक को मुग्ध करती है । भंज काव्य में ऐसे प्रयास ‘वैदेहीश विलास’ ही नहीं अन्य कई कृतियों में पग-पग पर संजोये गए हैं । अतः उन्हें ‘कवि सम्राट’ कहा जाता है । ऐसे सम्राटों की तरह काव्य वैभव से परिपूर्ण केशव रचित हिंदी ‘रामचंद्रिका’ उसी प्रकार का शब्दवैभव से बोझिल महाकाव्य कहा जाता है ।

### \* संरचना परक दृष्टि :

साहित्य में संरचना उसका अभिन्न अंग होता है । कविता में ‘लय’ इसे व्यक्त करती है । इस लय से संवेदनशीलता का बोधन होता है । तुक-साम्य हो तो वह और विशिष्ट हो जाती है । ‘राम की शक्ति पूजा’ (निराला) सर्वाधिक सशक्त उदाहरण है । इसका छंद इसमें प्रयुक्त तुक और इसकी लय तीनों ने इसे उत्कृष्ट रूप प्रदान किया । यह लंबी कविता अपनी संरचना के लिए जानी जाती है । इसका रूपांतरण हो सकता है । पर ऐसी संरचना (जैसा - समासयुक्त पदावली) कोई अनुवादक किस भाषा में करेगा ? हालांकि रीतिकालीन कवि किसी कोश से ढूंढ कर पाये जा सकते हैं, काव्य की लय पकड़ सकते हैं । परंतु इस बहुस्तरीय संरचना को पहचान अनुवाद में ढाल पाना संभव नहीं ।

यहाँ संरचनात्मक अनूठेपन का अंग्रेजी उदाहरण है :

Thou child of joy

shout round me

Let me hear thy shouts.

वर्डसवर्थ की यह कविता अनुवाद में कैसी लगती है -

ओ, प्रफुल्लता के बालकरे !  
चारों ओर उठा किलकारी,  
मैं भी तो सुन लूं अब तेरे  
हर्ष उन्माद घनेरे ॥

यह अनुवाद यतीन्द्र कुमार ने हिंदी में संरचनात्मकता में उलटफेर के साथ हिंदी में बोधगम्य बनाया है । यहाँ वाक्य का संरचनात्मक पुनर्गठन किया गया है । संबोधन चिन्ह के साथ पंक्ति परिवर्तन हुआ । 'Me' को छोड़ कर 'shout' शब्द की जगह 'किलकारी' का काव्यात्मक प्रयोग किया । दूसरी बार प्रयुक्त 'shouts' के लिए अनुवादक ने हर्ष-उन्माद के जरिये संरचना का परिवर्तन किया । इस प्रकार कवि के आशय तक पहुँकर नयी संरचना, जो मूल को समाता है, अर्थ और लय का समावेश कर एक नई काव्य उक्ति रखी है । यहाँ पर आत्मिक संबंध का परिचय दिया है । सतही तौर पर तुक भिन्न रूप मिलाने का प्रयास हुआ है । प्रत्येक वाक्य के अंत में 'रे' की पुनरावृत्ति भिन्न-भिन्न अर्थ में हुई है अतः यह कर्णकटु या अतिशयोक्ति पूर्ण नहीं । वरन स्वाभाविक रूप में काव्याशय व्यक्त करने में समर्थ है ।

एक सार्थक अनुवाद अज्ञेय ने स्वयं किया है -

“मैंने देखा  
एक बूंद सहसा  
उछली सागर के झाग से  
रंग गई क्षण भर  
ढलते सूरज की आग से ।”

कवि ने स्वयं अंग्रेजी अनुवाद में इसका रूपांतरण करते हुए संरचना को अक्षुण्ण रखा है । कवि की अंग्रेजी पर गहरी पकड़ है । हिंदी का मुहावरा और वैसा ही अंग्रेजी प्रयोग देकर संरचनात्मक बदलाव किया है :

I saw  
drop suddenly  
fly from the scund of sea  
flare for a second  
fire from the mallowing sun.

कवि बहुत कुछ संरचनागत छेड़ छाड़ करता है। अंग्रेजी में वह आशय लाने के लिए काफी छूट ले रहा है। flare शब्द विशेष अर्थ में है, उसी प्रकार fire का आगमन हुआ है जो mellowing के साथ तालमेल बिठा रहा है। अंग्रेजी अनुवाद में वही भाव परिवर्तन के साथ प्रस्तुत किया है। कवि ने सौम्यता लाने mellowing sun शब्द के जरिये नई रचना रखी है।

जॉन कीट्स की प्रसिद्ध पंक्ति है -

"My heart aches and a drowsy numbness pains"

इसे यतीन्द्र तिवारी -

“हृदय हो रहा, विकल त्रसित हो उठी चेतना मेरी”

अनुवाद में बहुत स्वीकार्य मुहावरा ‘हृदय हो रहा विकल’ बनाया है। उसी तरह drowsy numbness को त्रसित हो उठी चेतना मेरी’ यह शब्द समावेश कर संरचना को संपूर्ण बनाया गया है। अन्यथा संप्रेषण संभव न था। हृदय का दर्द और चेतना का त्रसित होना दोनों के लिए अनुवादक ने भी भिन्न पद प्रयोग कर संरचना के प्रति सचेतनता व्यक्त की है। इसी दृष्टि से यह अनुवाद उल्लेखनीय बन जाता है।

### \* सृजनात्मक दृष्टि :

अनुवादक प्रारंभिक दौर में बहुत सरल, सहज और एक जैसा इंसान होता है। परंतु बहुत शीघ्र साहित्यिक बारीकियों से परिचित हो जाता है। अनुवाद करते-करते मूल के मोड़ उसमें प्रदत्त गुणधर्मों का सामना करते-करते अपनी रचनात्मक क्षमता में वृद्धि करता जाता है। सब कुछ ज्यों का त्यों अनुवाद में प्रस्तुत करना संभव नहीं होता। वह समीचीन भी नहीं समझता। कहीं कुछ घट-बढ़ करता है। इतना ही नहीं कुछ ‘परिवर्तन’ (Replacement) भी कर देता है। यह सब सामाजिक सांस्कृतिक अंतर के कारण करना पड़ता है। कुछ संकल्पनाएँ लक्ष्य भाषा समाज में प्रचलित नहीं होती। अथवा उनका वह अर्थ नहीं निकलता। अतः वे उनका परिवर्तन करते हुए रचना के स्तर पर अंतर करते हैं। वे उपमान वहाँ उस प्रकार की धारणा नहीं देते। जैसे कौवा बोलना, बिल्ली रास्ता काटना, आँख फड़कना जैसे प्रयोग अनुवाद में भिन्न प्रयोगों की मांग करते हैं। वहाँ पर अनुवादक सम भाव व्यंजक भिन्न मुहावरे, कहावतें, अंधविश्वास, रूढ़ि का प्रयोग कर के स्थिति समहालता है।

“एक तीर से दो शिकार”

अंग्रेजी में इसी तर्ज पर भिन्न प्रयोग है। अनुवादक दृष्टि यहाँ पर अपने विवेक का प्रयोग करते हुए नये क्षेत्र की रचना कर रखता है। बहुत उत्तम कोटि के अनुवाद में वह अपने लिए पूरी छूट ले कर

कृति को नई चमक देकर प्रस्तुत करता है । ऐसे में ज्यादा वक्त लगेगा । नहीं कि किसी अन्य रचना का अनुवाद है । उसकी टूट-फूट की भरपाई अपनी सृजन क्षमता से कर देता है । उसमें समावेशी स्वरूप के साथ अभिनव रूप में प्रस्तुत करता है । अनुवाद का यह सबसे चमत्कार पूर्ण रूप होता है ।

साहित्यिक अनुवाद की सार्थकता इसी में सर्वाधिक प्रकट होती है । एक साहित्यिक कृति का अनुवाद साहित्यिक कृति ही होनी चाहिए । उसका प्रकार भिन्न -भिन्न हो सकता है । जैसे काव्यानुवाद करते समय काव्यानुवाद, छंदानुवाद, गद्यानुवाद, सारानुवाद ..... कई प्रकारों का सहारा ले सकते हैं । परंतु कुल मिला कर वह एक साहित्यिक कृति के रूप में उभर आना जरूरी है । अनुवादक अपनी दृष्टि से वह प्रकार चुनता है और फिर उसमें प्रस्तुत करता है । इसमें अनुवादक का अपना निर्णय सर्वोपरि होता है ।

### \* साहित्यिक अनुवाद की जरूरत और महत्व :

मानव चिंतन और जीवनानुभव का सर्वश्रेष्ठ रूप साहित्य में व्यक्त होता है । वह कहीं भी हो सकता है । विश्व में एक भाषा में व्यक्त इस रूप को दूसरी में लाना, उसे सार्वजनीन करना बहुत जरूरी है । वरना ओड़िसी - इलियड, वेद, रामायण, बाइबल ... आदि अपनी-अपनी भाषा के दायरे में बंधे रहते । विश्व धरोहर कभी नहीं बन पाते । एक दूसरे को निकट लाकर उनकी तुलना भी संभव नहीं हो पाती । तुलनात्मक साहित्य का भवन इस अनुवाद की ईंट पर ही बन पाता है ।

हमने पीछे देखा 'अनुवाद' एक यौगिक शब्द है । 'वद' धातु में 'ध' प्रत्यय लगने से 'वाद' शब्द बनता है । 'वद' धातु का अर्थ है बोलना या कहना । 'वाद' शब्द में 'अनु' उपसर्ग के जुड़ने से 'अनुवाद' शब्द बनता है । 'अनु' उपसर्ग का अर्थ है पीछे पीछे चलना या अनुगमन करना । इस प्रकार अनुवाद शब्द का शाब्दिक अर्थ तो होगा किसी के कहने या बोलने के बाद बोलना । दूसरे शब्दों में इसे 'अर्थ का भाषांतरण' भी कहा जा सकता है । आज अनुवाद शब्द को हम जिस अर्थ में ग्रहण करते हैं वह संस्कृत में प्रयुक्त अनुवाद के अर्थ से थोड़ा भिन्न है । आज अनुवाद शब्द को अंग्रेजी के Translation शब्द के पर्याय के रूप में ग्रहण किया जाता है । अंग्रेजी का ट्रांसलेशन शब्द भी लैटिन के दो शब्दों Trans तथा Lation के संयोग से बना है जिसका अर्थ होता है पार ले जाना । वस्तुतः अनुवाद में एक भाषा में कही गई बात को दूसरी भाषा में ले जाया जाता है । अतः एक भाषा के पार ले जाने की प्रक्रिया के लिए ही ट्रांसलेशन शब्द अंग्रेजी में प्रचलित हो गया ।

'अनुवाद' शब्द भारतीय साहित्य में कोई नया नहीं है । इसका प्रयोग बहुत प्राचीन समय से होता रहा है । आधुनिक काल में इसके अर्थ में परिवर्तन हुआ है । प्राचीन भारतीय शिक्षा की गुरु-शिष्य

परंपरा में गुरु के कहे हुए वचन को शिष्य दुहराता था । दुहराने की यह क्रिया 'अनुवचन' या अनुवाद' कहलाती थी । 'शब्दार्थ -चिन्तामणि कोश' में अनुवाद का अर्थ - 'प्राप्तस्थ पुनः कथने' या ज्ञानार्थस्य प्रतिपादने' दिया है, जिसका अर्थ है - पूर्व में कथित अर्थ का पुनर्कथन । वैदिक संस्कृत से लेकर लौकिक संस्कृत के अनेक ग्रंथों में 'अनुवाद' शब्द 'ज्ञात का कथन' या 'कही गयी बात को दुहराने' के अर्थ में बार-बार आया है ।

आज के संदर्भ में यदि हम अनुवाद को देखें तो यह कह सकते हैं कि अनुवाद वह प्रक्रिया है जिसके द्वारा हम एक भाषा में व्यक्त विचारों को दूसरी भाषा में व्यक्त करते हैं । जिस भाषा से अनुवाद किया जाता है उसे स्रोत भाषा (एसएल) तथा जिस भाषा में अनुवाद किया जाता है उसे लक्ष्य भाषा (टीएल) कहते हैं । यों तो समस्त अभिव्यक्ति ही एक तरह से अनुवाद है । अज्ञेय के अनुसार - "समस्त अभिव्यक्ति अनुवाद है क्योंकि वह अव्यक्त (या अदृश्यादि) को भाषा (या रेखा या रंग) में प्रस्तुत करती है ..." किन्तु प्रचलित अर्थ में एक भाषा में प्रकट किये गए विचारों को किसी दूसरी भाषा में अर्थ में यथासंभव समान और सहज अभिव्यक्ति द्वारा प्रस्तुत किया जाना अनुवाद कहलाता है ।"

स्रोत भाषा की अभिव्यक्तियों के लिए लक्ष्य भाषा में समतुल्य अभिव्यक्तियाँ खोजना एक कठिन कार्य होता है । अनुवादक -लक्ष्य भाषा और स्रोत भाषा के बीच एक ऐसे सेतु का निर्माण करता है जिससे दोनों के बीच तालमेल स्थापित हो सके और स्रोत भाषा पाठ तथा लक्ष्य भाषा पाठ के बीच इस सेतु का कार्य करता है अनुवाद । एक अनुवादक को इस बात की अत्यंत सर्तकता बरतने की जरूरत होती है कि लक्ष्य भाषा में किया गया अनुवाद उस भाषा की सहज प्रकृति के सर्वथा अनुरूप हो, वह स्रोतभाषा की छाया नहीं होनी चाहिए । हर भाषा का विकास विशेष निजी परिस्थितियों में होता है । स्रोतभाषा के भौगोलिक, ऐतिहासिक, सांस्कृतिक आदि अनेक तत्व लक्ष्य भाषा के भौगोलिक, ऐतिहासिक, सांस्कृतिक तत्वों से ईषत् भिन्नता प्रकट करते हैं । इस कारण स्रोतभाषा की पूरी-पूरी बात को लक्ष्यभाषा में पूरी तरह हू-ब-हू बनाना बड़ा कठिन होता है । अच्छे अनुवादक के लिए स्रोतभाषा के लेखक के व्यक्तित्व एवं चर्चित विषय का भी सूक्ष्मता से ध्यान रखते हुए . अनुवाद अपेक्षित होता है । क्योंकि व्यक्तित्व के अनुसार व्यक्ति की भाषा में भिन्नता होती है । एक भाषा की ध्वन्यात्मक, शाब्दिक, रूपात्मक, वाक्यात्मक आदि विभिन्न विशेषताएँ दूसरी भाषा से प्रायः भिन्नता लिए होती हैं । डॉ. सुरेश कुमार के अनुसार - अनुवाद एक जटिल कृत्रिम आवश्यकता जनित और सर्जनात्मक प्रक्रिया है, जिसमें असाधारण और विशिष्ट कोटि की प्रतिभा की आवश्यकता होती है । वे कहते हैं -

1. अनुवादक का द्विभाषिक होना एक अनिवार्य शर्त होती है, अर्थात् अनुवादक से यह अपेक्षा की जाती है कि उसका दोनों भाषाओं पर मातृभाषा के समान अधिकार होना चाहिए ।

2. इसके अलावा अनुवादक को मूल भाषा पाठ के विषय का भी अच्छा ज्ञान होना चाहिए । विषय की पर्याप्त जानकारी के अभाव में भी प्रायः अनुवाद स्तरीय नहीं हो पाता । उदाहरण के लिए यदि कोई व्यक्ति भौतिक - विज्ञान के पाठ का अनुवाद कर रहा है और उसे भौतिक-विज्ञान का विषय ज्ञान बिल्कुल नहीं है तो भी दोनों भाषाओं का उचित ज्ञान होने पर भी वह आदर्श अनुवाद नहीं कर सकता । मनोवैज्ञानिक उपन्यास के अनुवाद के समय अनुवादक को मनोविज्ञान की आधारभूमि संकल्पनाओं से परिचित होना पहली शर्त है । वरना उपन्यास में चल रही मानसिक स्तर की उठा-पटक का सही परिप्रेक्ष्य संभव नहीं ।

3. यह बिल्कुल आवश्यक नहीं कि मूलभाषा की किसी अभिव्यक्ति के पूर्णतः समान अभिव्यक्ति से लक्ष्यभाषा में शब्द और अर्थ दोनों स्तरों पर हो ही जाए । पूर्णतः का अर्थ है स्रोतभाषा में व्यक्त विचार को पढ़कर स्रोतभाषी जो अर्थ ग्रहण करे लक्ष्यभाषा में उसके रूपांतर को पढ़ कर या सुनकर लक्ष्यभाषी भी ठीक वही अर्थ ग्रहण करे । लेकिन प्रायः होता यह है कि मूलभाषा में अभिव्यक्त होने वाला अर्थ लक्ष्य भाषा में अभिव्यक्त होने वाले अर्थ की तुलना में या तो विस्तृत हो जाता है या संकुचित या फिर कुछ भिन्न हो जाता है । इन कठिनाइयों के बावजूद अनुवाद कार्य आज इतना आवश्यक हो गया है कि इसके बिना मानव का विकास पथ अवरोध जैसा है ।

इक्कीसवीं सदी को अनुवाद का युग कहा जाने लगा है । आज अनुवाद की महत्ता को अनुप्रयुक्त भाषा -विज्ञान के अंग के रूप में स्थापित किया जा चुका है । इसी कारण अनुवाद जैसे कठिन और जोखिम भरे काम की उपेक्षा नहीं की जा सकती है । प्रसिद्ध भाषाविद डॉ. भोलानाथ तिवारी अनुवाद या भाषांतर को 'प्रतीकांतर' का एक भेद मानते हैं । उनके अनुसार हमारे विचार किसी न किसी प्रकार के प्रतीक के माध्यम से ही अभिव्यक्ति पाते हैं । भाषा में ये प्रतीक शब्द होते हैं । इन प्रतीकों का परिवर्तन ही प्रतीकांतर है । डॉ. तिवारी के शब्दों में -एक प्रतीक द्वारा व्यक्त विचार को दूसरे प्रतीक द्वारा व्यक्त करना 'प्रतीकांतर' है ।

4. प्रतीकांतर तीन प्रकार के होते हैं । शब्दांतर, माध्यांतर और भाषांतर । एक भाषा में व्यक्त किये गये विचारों को दूसरी भाषा में व्यक्त करने को भाषांतर कहते हैं । डॉ. तिवारी अनुवाद को प्रतीकांतर का एक भेद मानते हैं, क्योंकि अनुवाद में एक भाषा के प्रतीकों के स्थान पर दूसरी भाषा के प्रतीक व्यवहृत होते हैं । डॉ. रवीन्द्रनाथ श्रीवास्तव ने भी अनुवाद को दो संदर्भों में देखने का उल्लेख किया - एक व्यापक और दूसरा सीमित । संदर्भ में अनुवाद को प्रतीक - सिद्धांत के परिप्रेक्ष्य में देखा जाता है । संक्षेप में प्रतीक - सिद्धांत यह है कि कथ्य का प्रतीकांतरण अनुवाद है । सीमित संदर्भ यह है कि कथ्य का भाषांतरण अनुवाद है । पहला सिद्धांत प्रतीक -विज्ञान पर आधारित है ।

5. अनुवाद दो भाषाओं के बीच एक सेतु का काम करता है । अनुवाद वह प्रक्रिया है जिसके माध्यम से हम एक भाषा में व्यक्त विचारों को दूसरी भाषा के पाठकों तक पहुँचाने का कार्य करते हैं । विद्वानों ने इस अनुवाद की थोड़े बहुत अंतर के साथ अलग-अलग परिभाषाएँ दी हैं । अनुवाद की ये परिभाषाएँ उसका स्वरूप समझने में सहायक सिद्ध होगी ।

1. एक भाषा की सामग्री के भावों की रक्षा करते हुए उसे दूसरी भाषा में बदल देना अनुवाद है । (सैमुएल जॉन्सन)
2. एक भाषा की पाठ्य सामग्री को दूसरी भाषा की समानार्थक पाठ्य सामग्री में प्रतिस्थापित करना अनुवाद कहलाता है । (कैट फोर्ड)
3. अनुवाद एक शिल्प है, जिसमें एक भाषा में लिखित संदेश के स्थान पर दूसरी भाषा में उसी संदेश को प्रस्तुत करने का प्रयत्न किया जाता है । (न्यूमार्क)
4. अनुवाद एक संबंध है जो दो या दो से अधिक पाठों के बीच होता है, ये पाठ समान स्थिति में समान प्रकार्य संपादित करते हैं । दोनों पाठों का संदर्भ समान होता है और उनसे व्यंजित होने वाला संदेश भी समान होता है । (हैलिडे)
5. विचारों को एक भाषा से दूसरी भाषा में रूपांतरित करना अनुवाद है । (देवेन्द्रनाथ शर्मा)
6. स्रोत भाषा में व्यक्त प्रतीक-व्यवस्था को लक्ष्यभाषा की सहज प्रतीक व्यवस्था में रूपांतरित करने का कार्य अनुवाद है । (डॉ. रीतारानी पालीवाल)
7. एक भाषा में व्यक्त विचारों को यथासंभव समान और सहज अभिव्यक्ति द्वारा दूसरी भाषा में व्यक्त करने का प्रयास अनुवाद है । (डॉ. भोलानाथ तिवारी)

डॉ. तिवारी ने अपनी उपर्युक्त परिभाषा की व्याख्या अनुवाद की वास्तविक प्रक्रिया दृष्टि से करते हुए यह कहा है - “भाषा ध्वन्यात्मक प्रतीकों की व्यवस्था है और अनुवाद है इन्हीं प्रतीकों का प्रतिस्थापन । एक भाषा के प्रतीकों के स्थान पर दूसरी भाषा के निकटतम समतुल्य और सहज प्रतीकों का प्रयोग ।

उपयुक्त कुछ परिभाषाओं के विश्लेषण से अनुवाद की बहुपक्षता पर प्रकाश पड़ता है । अनुवाद एक श्रेष्ठ कला है । साथ ही प्रक्रिया विज्ञान है तथा उसकी सफलता एक कुशल शिल्पी होने पर निर्भर करने के कारण यह एक शिल्प भी है । उपयुक्त परिभाषाओं से सार रूप में जो बातें अनुवाद का परिचय कराती हैं, वे इस प्रकार हैं -

1. स्रोत भाषा की सामग्री लक्ष्यभाषा में संपूर्णता में प्रकट हो ।
2. सामग्री के साथ प्रस्तुति के ढंग में भी समानता हो ।
3. मूलभाषा से लक्ष्यभाषा में रूपांतरित करने में स्वाभाविकता का निर्वाह अनिवार्यतः हो ।
4. अनुवाद की प्रक्रिया प्रतिस्थापन, पुनरावृत्ति, स्थानांतरण या परिवर्तन की प्रकृति की होती है ।
5. लक्ष्य भाषा में व्यक्त विचारों में ऐसी सहजता हो कि वह मूलभाषा (स्रोतभाषा) पर आधारित न होकर स्वयं मूलभाषा होने का एहसास पैदा करे ।

अन्त में यह कहा जा सकता है कि अनुवाद एक भाषा में व्यक्त भावों और विचारों को दूसरी भाषा में रूपांतरित करने की एक विशेष प्रक्रिया है । यह अपने कौशल के कारण अपने स्वरूप में इस प्रकार समाहित कर लेता है कि मूलभाषा और लक्ष्यभाषा में दूरी तथा दोनों में जो भेद है वह प्रायः समाप्त हो जाता है । इस प्रकार अनुवाद कला, विज्ञान और शिल्प की विशिष्टताओं से युक्त होकर अनुवादक के लिए एक चुनौती बन जाता है । अनुवाद कार्य तभी सफल हो सकता है जब स्रोतभाषा, लक्ष्यभाषा के निकट हो तथा अनुवादक विषय का अच्छा ज्ञाता हो । इसीलिए माना जाता है कि एक अनुवादक का काम अत्यन्त गुरुत्वपूर्ण तथा कठिन है । हर कृति अनुवाद- योग्य है किन्तु हर कृति का अच्छा अनुवाद नहीं किया जा सकता ।

‘अनुवाद’ शब्द आज एक व्यापक स्वरूप ग्रहण कर चुका है । वैज्ञानिक प्रगति के साथ-साथ आज उद्योग, चिकित्सा, वाणिज्य, व्यापार, बैंक तथा साहित्य के क्षेत्रों में अनुवाद अपना स्थान बना चुका है । इसकी आवश्यकता को भी महसूस किया जा रहा है । आज दुनिया भर में वैज्ञानिक उपकरणों के सहारे हर देश एक दूसरे के करीब हो रहा है । इसी कारण प्रत्येक के मन में दूसरे देश के साहित्य, संस्कृति, सामाजिक परिवेश आदि को जानने की जिज्ञासा जाग्रत होती है, जिस के लिए उस देश की भाषा न जानने के कारण अनूदित साहित्य का सहारा लेना पड़ता है । इसीलिए अनूदित साहित्य ही आज दोनों देशों में संबंध के लिए सहारा बन गया है । इसी के सहारे उस समाज में प्रवेश किया जा सकता है । यहाँ पर अनुवाद के स्तर के प्रति ध्यान नहीं दिया जाता है, बल्कि अनुवाद के माध्यम से उस समाज को जानने-समझने की भावना जाग्रत करना है । इस रूप में अनुवाद के दो भिन्न अभिलक्षण उभर कर आते हैं । पहले रूप में अनुवाद सिद्धांतों के आधार पर अपना स्वरूप ग्रहण करता है तथा दूसरे रूप में वह व्यवहारमूलकता को प्रमुखता देता है तथा सिद्धांत उसीमें से अपना स्वरूप ग्रहण करते हैं । आज अनुवाद के कारण स्थिति ही बदल गयी है । वहाँ अनुवाद के परंपरागत अर्थ का कोई मायना नहीं है

आज अनुवाद अपने अर्थ का बहुत अधिक विस्तार कर चुका है । अन्य विज्ञानों की भाँति आज अनुवाद भी अनुवाद-विज्ञान के रूप में वैज्ञानिक स्वरूप धारण कर चुका है । वह अपने स्वरूप को इतना व्यापक बना चुका है कि आज अनुवाद शब्द की कोई सर्वसम्मत परिभाषा खोजना दुष्कर हो गया है । वह आज किसी सीमित क्षेत्र में बंधा हुआ नहीं है । इस क्षेत्र में नये सिद्धांत उभरकर सामने आ रहे हैं ।

आज अनुवाद को सिद्धांत के दायरे से निकालकर व्यावहारिकता में देखा-परखा जा रहा है । सिद्धांतों के दायरे में रहकर अनुवाद कार्य नहीं किया जा सकता । एक अच्छा अनुवादक विषय की मांग, पाठक की रुचि, अनुवाद की आवश्यकता, पाठक - वर्ग, सम-विषम संस्कृति तथा भाषा की प्रकृति के आधार पर अनुवाद करता है । इस विषय के विवेचन में ओड़िया हिन्दी अनुवाद का अनुभव विशेष सहायक हुआ है ।

अनुवाद करते समय दो भाषाओं का संप्रेषण व्यापार ही प्रमुख रहता है । इसके लिए अनुवादक तीन बातों को आधार बना कर चलता है ।

1. विदेशी तथा सम-संस्कृति का पक्ष ।
2. स्रोतभाषा तथा लक्ष्य भाषा ।
3. लेखक तथा पाठक ।

अनुवादक इस प्रक्रिया में दोहरी भूमिका निभाता है । पहले वह **पाठक** के रूप में दिखाई देता है और दूसरी ओर अनूदित पाठ को प्रस्तुत करने के रूप में **लेखक** के रूप में दिखाई देता है । अर्थात् पाठक के रूप में वह पहले मूलपाठ के लेखक की रचना से अपना तादात्म्य स्थापित करता है, उस पाठ को आत्मसात करता है, उस भाषा की सामाजिक-सांस्कृतिक पृष्ठभूमि से अपने को जोड़ता है जिसे वह स्वयं पाठक बनकर परख सकता है कि जो बात वह संप्रेषित करना चाहता है, वह उपयुक्त है या नहीं ।

1. स्रोत भाषा की सामग्री का अर्थ समझना ही प्रक्रिया की पहली सीढ़ी है । यहाँ अर्थ व्याख्या अपेक्षित है । पाठक का काम है कि वह प्रसंगानुसार उपयोगी अर्थ-ग्रहण कर ले ।
2. कोशगत अर्थ के अलावा यौगिक अर्थ भी होता है, जो शब्द के अवयवों के अर्थ के मेल से प्राप्त होते हैं ।
3. तीसरा अर्थ 'प्रासंगिक मूलक' अर्थ है । तकनीकी विषयों में यह प्रासंगिक या प्रयोजनमूलक अर्थ ही सबसे महत्वपूर्ण है । स्रोतभाषा की सामग्री को समझने के बाद लक्ष्यभाषा में समतुल्य सामग्री से स्थानांतरित करना है । इसके दो अंग हैं -
  1. अर्थ या भाव ।

## 2. व्याकरणिक संरचना ।

अनुवादक को पहले लक्ष्यभाषा के पर्यायवाची शब्द, वाक्यांश आदि ढूंढकर तैयार करने पड़ते हैं । जब शब्द मिल जाते हैं तब व्याकरण या संरचना की बात आती है ।

अनुवाद प्रक्रिया पर कुछ विद्वानों ने गंभीरतापूर्वक विचार किया है । उनमें नाइडा और न्यूमार्क के विचार अधिक चर्चित हैं । नाइडा अनुवाद को एक वैज्ञानिक तकनीक के रूप में स्वीकार करते हैं । उनके अनुसार अनुवाद भाषा विज्ञान का एक अनुप्रयुक्त पक्ष है । अतः अनुवाद प्रक्रिया के विभिन्न सोपानों को समझने और उसके विश्लेषण के लिए भाषावैज्ञानिक तकनीक का प्रयोग आवश्यक है । इन्होंने अनुवाद प्रक्रिया के तीन प्रमुख सोपान माने हैं -

### 1. विश्लेषण ।

### 2. अंतरण ।

### 3. पुनर्गठन ।

एक कुशल तथा अनुभवी अनुवादक इन तीन भिन्न-भिन्न सोपानों को एक छंलाग में पार कर लेता है । पर अनुवाद के प्रशिक्षार्थी को इन तीनों सोपानों से क्रमशः गुजराना पड़ता है ।

पहले अनुवादक स्रोतभाषा के पाठक का चयन करके उसमें निहित संदेश का विश्लेषण करता है । इस दौरान वह स्रोतभाषा के पाठ का अर्थ ग्रहण करता है । अर्थ ग्रहण के पश्चात् उसे लक्ष्यभाषा में **अंतरित** करने की प्रक्रिया में आता है तथा लक्ष्यभाषा में उसका एक स्वरूप निश्चित कर लेता है । इसके पश्चात् वह लक्ष्यभाषा के स्वरूप एवं प्रकृति के अनुसार उस संदेश को पुनर्गठित करता है । जिसका अंतिम स्वरूप अनूदित पाठ के रूप में पाठक के समक्ष आता है । इस संदर्भ में एक बात ध्यान रखने की है कि अनुवाद - प्रक्रिया के उपर्युक्त चरण अनुवाद की संकल्पना पर पूरी तरह से प्रकाश नहीं डालते, फिर भी आधार रूप में इस सिद्धांत को महत्वपूर्ण माना जाता है साथ में अनुवाद - प्रक्रिया के संदर्भ में भी चर्चा की जाती है ।

अनुवादक जब अनुवाद के लिए मूलपाठ का चयन कर लेता है, तब उसे पहला कार्य यही करना होता है कि वह मूलपाठ का सम्यक विश्लेषण करे । इससे यह सम्यक रूप से उसका सही अर्थ ग्रहण कर सके । इस प्रक्रिया में वह पाठ के कथ्य तक पहुँच सकता है । यह विश्लेषण मुख्य रूप से इन स्तरों पर किया जाता है -

### 1. भाषा के स्तर पर ।

### 2. विषयवस्तु के स्तर पर

## (क) भाषा के स्तर :

इस स्तर पर भाषिक अभिव्यक्ति का विश्लेषण किया जाता है जिसके अंतर्गत पाठ में निहित -

1. संकेतपरक अर्थ
2. संरचनापरक अर्थ
3. प्रयोगपरक अर्थ

आदि का विश्लेषण किया जाता है। संकेतपरक अर्थ को स्पष्ट करने के लिए उस शब्द विशेष की संकल्पना पर विचार किया जाता है। पीछे ओड़िया से हिन्दी अनुवाद को विशेष ध्यान रख कर विवेचन हुआ है।

**भाषा :** - भाषा को परिवेशगत संदर्भ के साथ जोड़ा जाता है तो इससे सामाजिक शैली उद्भूत होती है और उससे सामाजिक अर्थ की अभिव्यंजना होती है। वस्तुतः यह भाषा का प्रयोग या व्यवहार क्षेत्र है। इसमें वक्ता और श्रोता के बीच औपचारिक, अनौपचारिक तथा अंतरंग संबंध रहते हैं। कुछ ऐसे शब्द भी होते हैं जिनका संकेतार्थ एक ही होता है लेकिन सामाजिक - सांस्कृतिक परिवेश में उस शब्द का अर्थ विशिष्ट हो जाता है। जैसे जल-पानी, कलश - घड़ा, अक्षत-चावल, पंकज-कमल, चकाडोला-जगन्नाथ, आदि। जल का अर्थ जलना भी हो सकता है पानी भी। लेकिन जब हम सांस्कृतिक अर्थ के रूप में प्रयोग करते हैं तब इसका अर्थ सिर्फ पानी ही होगा। उसी प्रकार अक्षत का अर्थ है बिना टूटा हुआ चावल। लेकिन जब हम सांस्कृतिक अर्थ प्रयोग करेंगे तब इसका अर्थ सिर्फ चावल ही रह जाएगा। उसी प्रकार पंकज का अर्थ जो पंक से जात है। लेकिन पंकज कहने से हम सिर्फ कमल को ही समझते हैं।

## (ख) विषयवस्तु :

जिस समय अनुवादक विषयवस्तु के स्तर पर पाठ का विश्लेषण करता है उस समय उससे यह अपेक्षा की जाती है कि वह उस विषय का भी विशेषज्ञ हो। उसे भाषा के ज्ञान के साथ-साथ 'तकनीकी स्तर' की व्यापक जानकारी होनी चाहिए। इससे वह विषयवस्तु के स्तर पर पाठ में अंतर्निहित अर्थ तक पहुँच सके। इसके लिए केवल वाक्य से ऊपर के स्तर पर भी विश्लेषण करना होता है। वाक्य - संरचनाएँ संदर्भ से जुड़कर विभिन्न अर्थों की प्रतीति कराती हैं। कभी एक वाक्य अनेक अर्थों को प्रस्तुत करता है तो कभी कई वाक्य अपने आप में एक अर्थ तक ही सीमित रहता है। इतना ही नहीं कभी एक ही अभिव्यक्ति के लिए विभिन्न वाक्यों का प्रयोग किया जाता है।

## \* पाठ का विश्लेषण :

इस प्रकार 1. अनेकार्थी, 2. संदिग्धार्थी, तथा 3. पर्याय संरचनाओं के आधार पर किया जाता है तथा यह विषय वस्तु के स्तर पर होता है । यहाँ अनुवादक का दायित्व बढ़ जाता है, उसके लिए यह आवश्यक हो जाता है कि वह इनमें से सटीक अर्थ का चयन करे ।

पाठ के विश्लेषण के बाद अनुवादक भाषा में व्यक्त विचारों को भाषा में रूपांतरित करता है । इस रूपांतरण प्रक्रिया में कई समस्याएँ उत्पन्न होती हैं । क्योंकि एक भाषा में जो अर्थ व्यवहृत हुआ है, दूसरी भाषा में उसी रूप में प्रयोग कर पाना हमेशा संभव नहीं होता है । इस तरह ऐसी स्थिति भी आती है कि अनुवाद के समय कुछ छूट भी जाता है और कुछ अतिरिक्त जुड़ भी जाता है । इस प्रकार अनुवादक को मूलपाठ तथा अनूदित पाठ में संतुलन बनाए रखने के लिए समझौते करने पड़ते हैं । अनुवादक को कभी संपूर्ण अर्थ का अंतरण करना पड़ता है, कभी केवल भाषिक इकाइयों का । इस प्रकार वह कथ्य को संप्रेषित करने का भरसक प्रयास करता है ।

मुहावरे तथा लोकोक्तियों का अनुवाद संपूर्ण अर्थ के अंतरण से संबंध रखता है, जहाँ मूलपाठ की अभिव्यक्ति से निकलने वाले अर्थ को अनुवादक दूसरी भाषा की प्रकृति के अनुरूप ढालकर प्रस्तुत करता है । जब तक इसके संपूर्ण अर्थ का अंतरण नहीं किया जाएगा तब तक कथ्य प्रभावी नहीं होगा ।

जब स्रोत भाषा से लक्ष्यभाषा में कथ्य का अंतरण किया जाता है वह 'पुनर्विन्यास' की स्थिति मानी गई है । इसकी मुख्य रूप से चार स्थितियाँ स्वीकार की गई हैं -

1. पूर्ण पुनर्विन्यास ।
2. विश्लेषणात्मक पुनर्विन्यास
3. संश्लेषणात्मक पुनर्विन्यास
4. संरचनात्मक पुनर्विन्यास

इन चारों ही प्रकार के पुनर्विन्यास द्वारा पाठ में निहित अर्थ केवल अंतरित नहीं होता, वरन् समतुल्य अभिव्यक्ति के आधार पर निकलने वाले अर्थ को प्रतिस्थापित किया जाता है । अतः हर स्तर पर समतुल्यता का सिद्धांत ही अधिक प्रभावी सिद्ध होता है । अंतरण के बाद अनुवादक अपने अनुवाद कार्य का पहला चरण ही समाप्त कर पाता है । क्योंकि उसके समक्ष केवल अनुवाद का पहला प्रारूप होता है जिसे उसे लक्ष्यभाषा की प्रकृति के अनुरूप पुनर्गठित करना होता है । इसके बाद ही अनूदित पाठ का अंतिम स्वरूप तैयार होता है । इस स्तर पर अनुवादक पाठक की भूमिका में आकर पहले प्रारूप का विश्लेषण करता है तथा इसे कई स्तरों पर परखने का प्रयास करता है ।

अनुवादक को हर स्तर पर अनूदित पाठ की संप्रेषणीयता पर विशेष ध्यान देना पड़ता है । वास्तव में नाइडा के तीन सोपानों में एक दूसरे के साथ संबंध हैं । उपयुक्त विश्लेषण का तात्पर्य यह कदापि नहीं होना चाहिए कि अनुवादक खंडों में इन सोपानों से गुजरे । ऐसा भी हो सकता है कि बिना किसी पाठ के विश्लेषण किये बगैर अनुवादक सीधे अंतरण की प्रक्रिया में आ जाए । लेकिन यह अनुवादक की भाषिक दक्षता/क्षमता और पाठ की आवश्यकता पर अधिक निर्भर करेगा । पुनर्गठन का स्तर अपने आप में महत्वपूर्ण होता है । इसलिए कठिन परिश्रम की आवश्यकता पड़ती है । जब तक अनुवादक समीक्षात्मक विश्लेषण कर पाठ का पुनर्गठन नहीं करेगा तब तक अनुवाद की सटीकता सिद्ध नहीं हो पाएगी ।

स्वतंत्रता के बाद भारत में प्रांतीय भाषाओं की विशेष प्रगति करने का बीड़ा उठाया । संविधान की अष्टम अनुसूची में पंद्रह भाषाओं को शामिल किया गया था । 1992 में कोंकणी, मणिपुरी तथा नेपाली को भी इसमें शामिल कर लेने के पश्चात इनकी संख्या अठारह हो गई । फिर चार भाषाएँ (मैथिली, संथाली, बोडो, डोगरी) और जुड़ गई । इस प्रकार अब कुल बाईस हुई । अर्थात् धीरे-धीरे भारतीय भाषाओं की प्रगति के लिए कार्य किया जाने लगा है । इसलिए शिक्षा और प्रशासन में भारतीय भाषाओं को नई भूमिका मिलने लगी । इतना ही नहीं अनुच्छेद 343 के अनुसार संविधान के प्रारंभ से पंद्रह वर्ष की कालाविधि के लिए संघ के उन सब राजकीय प्रयोजनों के लिए अंग्रेजी भाषा का प्रयोग जारी रहेगा जिनके लिए प्रारंभ के ठीक पहले उनका प्रयोग होता था, परंतु राष्ट्रपति उक्त कालाविधि में, आदेश द्वारा संघ के राजकीय प्रयोजनों में से किसी के लिए अंग्रेजी भाषा के साथ-साथ हिन्दी भाषा का तथा भारतीय अंकों के अंतर्राष्ट्रीय रूप के साथ-साथ देवनागरी रूप का प्रयोग प्राधिकृत कर सकेंगे । तभी अनुवाद पर ध्यान दिया गया । और अनुवाद एक विशेष विषय बन गया । सिर्फ प्रशासन में ही नहीं बल्कि विज्ञान, प्रौद्योगिकी, वाणिज्य, व्यवसाय एवं सर्वसुलभ साहित्य के क्षेत्र में अनुवाद का स्थान अत्यंत महत्वपूर्ण एवं अनिवार्य बन गया ।

अनुवाद के आरंभ के संदर्भ में 'वैबेल' की दिलचस्प कहानी प्रचलित है । इसके अनुसार ऐसा माना जाता है कि आरंभ में दुनिया में सभी लोग एक ही भाषा बोलते थे । इसलिए सब एक दूसरे की बात समझते थे । एक दिन सबने मिलकर एक विशाल मीनार बनाना शुरू किया । मीनार ऊंची से ऊंची होने लगी । इसकी ऊंचाई देख स्वर्ग के देवताओं को खतरा महसूस हुआ कि कहीं मीनार स्वर्ग में प्रवेश न कर जाए । इस समस्या का समाधान बड़ी चतुराई से किया । उन्होंने मीनार बनाने वालों को अलग-अलग भाषाएँ दे दी । परिणाम हुआ कि एकजूट लोग विभाजित हो गए । फलतः निर्माण कार्य बंद हो गया और मीनार अधूरी रह गई । इस अधूरी मीनार को वैबेल की मीनार कहा गया ।

बैवल की मीनार की यह घटना अनुवाद के आरंभ का हेतु बनाती है, क्योंकि मनुष्य अलग-अलग भाषाएँ तो बोलने लगा लेकिन उसे आपस में संपर्क करने के लिए अनुवाद की जरूरत पड़ी। भाषा का लिखित रूप लगभग साढ़े छः हजार वर्ष पुराना माना जाता है। अनुवाद का लिखित रूप लगभग भाषा के लिखित रूप के साथ-साथ ही चला होगा। कालांतर में भाषाओं से या इनके भीतर अनुवाद के विविध स्तर विकसित हुए। पश्चिमी वाङ्मय में अनुवाद की परंपरा दो धाराओं में मिलती है -

- 1) बाइबिल का अनुवाद
- 2) अन्य वाङ्मय का अनुवाद।

पश्चिम में बाइबिल के अनुवाद की सुदीर्घ और विस्तृत परंपरा रही है। इसने अनुवाद चिंतन और सिद्धांतों को भी प्रभावित किया है। पश्चिम की अनुवाद परंपरा में ईसाइयों का धर्मग्रंथ बाइबिल ही प्रस्थान बिंदु बनता है। पहले बाइबिल हिब्रू में लिखा था। जोकि सर्वप्रथम ई.पू. तीसरी -दूसरी शती में यूनान भाषा में हुआ। इस शाब्दिक अनुवाद ने भी बाइबिल के परवर्ती अनुवादों को काफी प्रभावित किया। इसके बाद सुसमाचारों और यूनानी उत्तरविधान के अनुवाद हुए। पश्चिम में लौकिक साहित्य के अनुवाद की समृद्ध परंपरा रोमन लोगों द्वारा अनुवाद से शुरू होती है। ई. पू. तीसरी शताब्दी में लिवियस ऐंड्रीनिकस ने होमरकृत ओडिशी का एक पद्यात्मक किन्तु अनगढ़ अनुवाद किया था। मध्य युग में यूनानी भाषा - साहित्य के अध्येताओं की संख्या पश्चिमी यूरोप में अत्यल्प रह गई थी। यद्यपि यह उल्लेखनीय है कि आयरलैंड के प्रसिद्ध विद्वान जोहासन स्कोटस एरीजिना ने 'जथोनीसियस दि एरियोपगीत' का अनुवाद किया था। बगदाद के अरबी विद्वानों पर अनुवाद का दायित्व पड़ा। उन लोगों ने अरस्तू की दार्शनिक कृतियों के प्रामाणिक रूपांतर को फिर लैटिन भाषा में भाषांतरण किया गया। यह मानव-सभ्यता के सांस्कृतिक विकास में अनुवाद के योगदान का सर्वोत्तम प्रतीक है। पुनर्जागरण के आंदोलन में जिस अनुवाद ने एक महत्वपूर्ण भूमिका निभाई और जो नए युग का प्रस्थान-बिंदु कहा जाता है, वह था लियोटियस पाइलेटस। पाइलेटस द्वारा किया गया होमर का लैटिन में अनुवाद।

यूनानी और लैटिन की रचनाओं के प्रचलित अंग्रेजी में सही-सही अनुवाद का युग एलिजाबेथ प्रथम और जेम्स प्रथम के शासन काल से आरंभ है। इस युग की सर्वाधिक महत्वपूर्ण अनूदित कृति सर टॉमस नॉर्थ द्वारा अनूदित प्राचीन यूनान के नैतिकतावादी लेखक और भाववादी दार्शनिक प्लुटार्क की कृति 'लाइव्ज' है। एडलिंगटन के विपरीत जॉर्ज चैपमैन द्वारा किए गए इलियाड और ओडीसी के अनुवाद अत्यधिक सीमित तथा आधुनिक हैं। विक्टोरियन युग में सर्जनात्मक साहित्य के साथ-साथ

दार्शनिकों-चिंतकों के अनुवाद भी होते रहे । प्लेटो, अरस्तु आदि के अनुवाद हुए । इंग्लैंड में बेंजामिन जॉवेट ने 1811 ई. में प्लेटो का अनुवाद प्रकाशित किया जो शैली की दृष्टि से बहुत आडंबरपूर्ण है । सन् 1916 तक 'लोक क्लासिक' शृंखला के एक अनुवादक द्वारा किये गये वर्जिल के अनुवादों में अनगढ़ प्रयोगों के कई उदाहरण मिलते हैं । जर्मन अनुवादक कहीं अच्छे थे । मार्टिन लूथर द्वारा किए गए बाइबिल के अनुसरण से जर्मन भाषा को नवजीवन ही नहीं मिला, बल्कि उसके परवर्ती अनुवादों को सहज और अकृत्रिम लेखन के लिए एक अग्रसर तथा - मानक अनुवाद मिल गया और अनुवाद एक सर्जनात्मक विधा के रूप में मान्य हो गया । उधर फ्रांस में सबसे उल्लेखनीय अनुवाद लकौत द लीले हुए । पश्चिम में अनुवादों को जो गरिमा प्राप्त हुई है, उसका ही एक प्रमाण मैक्समूलर द्वारा संपादित और अनेक भाषाविदों द्वारा अनूदित पचास खंडों का 'द सेक्रेड बुक्स ऑफ द ईस्ट' है । सन् 1861 में मैथ्यू आर्नल्ड का 'ऑन ट्रांसलेटिंग होमर' शीर्षक विचारोत्तेजक निबंध प्रकाशित हुआ । इसके बाद अनुवाद की समकालीन परंपरा का सूत्रपात होता है । इसकी कड़ियाँ कई सफल अनुवादों में निर्मित हुई हैं ।

बीसवीं सदी में पाश्चात्य अनुवाद - साहित्य का अभूतपूर्व विकास हुआ है । साहित्य, दर्शन, विज्ञान, समाजशास्त्र इत्यादि सभी विभागों में अनुवाद कार्य हो रहे हैं । यूरोप, अमरीका, जापान, चीन आदि देशों के आचार्य - अनुवादक अपने-अपने विश्वविद्यालयों में प्राचीन ग्रंथों की गवेषणात्मक विवृतियाँ ही नहीं प्रस्तुत कर रहे हैं बल्कि विश्व के विशाल साहित्य को अपनी-अपनी भाषा में, विशेषतः, अंग्रेजी, रूसी और जापानी में रूपांतरित कर रहे हैं ।

भारत की सामाजिक, सांस्कृतिक, भौगोलिक स्थितियाँ भिन्न होने के कारण प्राचीन भारतीय वांग्मय में अनुवाद की पश्चिमी अनुवाद जैसी परंपरा नहीं मिलती । तब भारत ज्ञान के क्षेत्र में काफी आगे था । संस्कृत और पालि भाषाओं की प्रचुर साहित्यिक दुनिया का दूसरी भाषाओं में अनुवाद हुआ । इन भाषाओं के अनेक ग्रंथों में काफी पंक्तियाँ संस्कृत का छाया अनुवाद प्रतीत होती हैं । प्राकृत ग्रंथों के कुछ स्थलों का संस्कृत में यदा-कदा भाषांतर मिलता है । या फिर संस्कृत रचनाओं में प्रयुक्त प्राकृत संवादों का संस्कृत रूपांतरण मिलता है । पर समग्र ग्रंथों का अनुवाद करने का प्रचलन नहीं दिखाई देता है । लेकिन भारतीय परंपरा में अनुवाद का एक अन्य रूप बहुत संपन्न ढंग से विकसित हुआ । यह रूप है अंतरभाषायी अनुवाद या अंतर भाषायी अनुवाद का आंतर भाषायी अनुवाद । सामान्यतः अनुवाद कहने से एक भाषा से दूसरी भाषा में किया जाता है । लेकिन भाषाविदों ने अनुवाद के तीन प्रकार बताए हैं -

1. अंतर्भाषायी अनुवाद - यानी एक भाषा से दूसरी भाषा में अनुवाद ।
2. आंतर भाषायी अनुवाद - यानी एक भाषा में प्रस्तुत पाठ का उसी भाषा में अनुवाद । इसे अंतः-भाषिक अनुवाद भी कहा जाता है ।

3. भाषिक प्रतीकों का अन्य प्रतीकों में अनुवाद - इसमें भाषिक प्रतीकों का अन्य संप्रेषण प्रतीकों में रूपांतर किया जाता है ।

हिन्दी में संस्कृत साहित्य का बहुत बड़ी तादाद में अनुवाद हुआ । मध्यकाल में हुए अनुवादों में कुछ तो संस्कृत , प्राकृत आदि की रचनाओं और सूक्तियों का आधार लेकर लिखी गई रजनाएँ आती हैं । ज्योतिष, वैद्यक, धर्म, राजनीति आदि ग्रंथों का प्रचुर मात्रा में अनुवाद इस काल में हुआ ।

हिन्दी का आधुनिक काल अनुवाद की दृष्टि से अत्यधिक संपन्न काल रहा है । प्राचीन संस्कृत रचनाओं के अनुवाद भारतेन्दु से पहले ही शुरू हो गए थे । भारतेन्दु युग और उसके बाद तो यह क्रम बड़े सिलसिलेवार ढंग से चला । राजा लक्ष्मण सिंह द्वारा 'अभिज्ञान शाकुंतलम्' का 'शकुंतला नाटक' नाम से अनुवाद तो अत्यधिक लोकप्रिय हुआ । अन्य अनुवादों में भारतेन्दु द्वारा विशाखदत्त के 'मुद्राराक्षस' का, लाला सीताराम द्वारा 'मेघदूत', मृच्छकटिक 'उत्तर रामचरित', बालमुकुंद गुप्त द्वारा रत्नावली का, पं. सत्यनारायण कविरत्न द्वारा 'उत्तर रामचरित' और 'मालती माधव' का अनुवाद विशेष रूप में हुआ ।

अनुवाद शब्द को आज अलग अर्थ में प्रयोग किया जाता है । लेकिन शब्दकल्पद्रुम कोश में अनुवाद शब्द का अर्थ अवधारित को फिर कहना चाहे वह उसी भाषा में ही क्यों न हो जिसमें मूल पाठ है । इस दृष्टि से भाष्य तथा टीका को भी 'अनुवाद' कहा जा सकता है । इन दोनों का रूप समान होता है, पर वेदों की व्याख्या को 'टीका' कहते हैं । इन दोनों क्लासिकल संस्कृत के ग्रंथों की व्याख्या को 'टीका' कहते हैं । इन दोनों का मूल स्रोत हम पद-पाठ और निरुक्ति-पद्धति को मान सकते हैं ।

किसी भाषा के प्रत्येक वाक्य को उसके प्रायः सभी पदों का अर्थ देते हुए अन्य भाषा में प्रस्तुत करना 'अनुवाद' का व्यापक अर्थ है - आज भी व्यापक रूप से यह इसी रूप में प्रचलित होता है, किन्तु प्राचीन भारतीय साहित्य के अंतर्गत संस्कृत, पालि, प्राकृत और आगे चल कर अपभ्रंश आदि भाषाओं की सामग्री को इनमें से किसी अन्य भाषा में प्रस्तुत करने अर्थात् अनूदित करने का बहुत अधिक प्रचलन नहीं रहा । लेकिन काव्यशास्त्रीय तथा नाट्यशास्त्रीय ग्रंथों में गाहासत्तसई, वृहत्कथा, सेतुबंध, गौडवहो, कर्पूरमंजरी आदि प्राकृत - ग्रंथों से गृहीत यथेष्ट स्थलों का संस्कृत अनुवाद प्रस्तुत किया गया है । प्राचीन भारतीय साहित्य में अनुवाद की क्रमबद्ध परंपरा भले ही न हो लेकिन भारतीय साहित्य के विश्व की अन्य भाषाओं में अनुवाद और रूपांतरण होते रहे हैं । मुगल काल में अकबर ने प्राचीन ग्रंथों के अरबी -फारसी में अनुवाद के लिए एक स्वतंत्र विभाग स्थापित कराया । इसमें रामायण, महाभारत, गीता आदि के फारसी में अनुवाद कराए गए । अनुवाद की दृष्टि से पंचतंत्र का वशिष्ट स्थान है ।

आधुनिक युग में लगभग संपूर्ण वैदिक साहित्य, पुराण, महाभारत, रामायण, प्रबंधकाव्य,

गद्यकाव्य, नाट्य-साहित्य के अतिरिक्त स्मृति - ग्रंथ, चिकित्सा, विधि आदि से संबंधित संस्कृत ग्रंथों के अनुवाद अनेक विदेशी भाषाओं जर्मन, फ्रेंच, अंग्रेजी, फारसी, चीनी, सिंहली आदि में प्रस्तुत किये गये हैं ।

वैदिक साहित्य में वेदों का अन्य भाषाओं में अनुवाद होते देखा गया है । इतना ही नहीं उपनिषद में ईशोपनिषद का जोकि यजुर्वेद का चालीसवां अध्याय ही है, का अनुवाद सर्वाधिक हुआ है । वैदिक साहित्य के उपरांत रामायण, महाभारत और पुराणों का युग आया है । अंग्रेजी में वाल्मीकि रामायण का पद्यबद्ध अनुवाद किया । महाभारत का अंग्रेजी गद्य में अनुवाद प्रतापचंद्र राय ने ग्यारह भागों में प्रस्तुत किया । इस महान ग्रंथ के अनेक अंशों के अनुवाद विभिन्न भाषाओं में किए गए । पुराणों में से श्रीमद् भागवत् का अंग्रेजी में गद्यानुवाद जे. एम. सान्याल ने किया ।

इन तीन महान अख्यान - काव्यों के उपरांत संस्कृत में अनेक और बहुविध महाकाव्यों, नाटकों, गीतिकाव्यों के अतिरिक्त गद्य काव्य की रचना होती रही । प्रायः इन सब के अनुवाद अंग्रेजी तथा अन्य अनेक विदेशी भाषाओं में हो चुके हैं । 'मेघदूत' का भारत की लगभग सभी प्रमुख भाषाओं में अनुवाद हो चुका है । 'मेघदूत' की ही तरह 'अभिज्ञान शकुन्तलम' के भारत और विदेशों की अनेक भाषाओं में अनुवाद हुए हैं । संस्कृत के लगभग सभी प्रख्यात महाकाव्य, मुक्तक काव्य, नाटक, गद्यकाव्य आदि का अनुवाद विदेशी भाषाओं में हो चुका है । कुछ रचनाओं के अनुवाद तो बार-बार होते रहे हैं । इनमें 'श्रीमद्भगवत गीता' और 'अभिज्ञान शाकुन्तलम' का नाम विशेष रूप से लिया जा सकता है ।

अठारहवीं - उन्नीसवीं शताब्दी में भारत का पश्चिमी भाषाओं और ज्ञान -विज्ञान से परिचय हुआ । जिस तरह पश्चिमी विद्वानों ने प्राचीन भारतीय क्लासिक साहित्य का अपनी भाषाओं में अनुवाद कर उसे हृदयंगम करने का प्रयास किया उसी तरह भारतीय जन भी पश्चिमी ज्ञान को भारतीय भाषाओं में लाने के लिए उत्सुक हुए । परिणाम स्वरूप भारतीय भाषाओं में पश्चिमी, विशेष रूप से अंग्रेजी रचनाओं के अनुवादों का दौर चल पड़ा । बाइबिल के बाद शेक्सपीयर के नाटकों के अनुवाद भारतेन्दु के समय से शुरू हुए और आज तक होते आ रहे हैं ।

विभिन्न भारतीय भाषाओं के बीच अनुवाद का दौर आधुनिक भारतीय नवजागरण की विशिष्ट घटना है । हिन्दी में इसकी प्रक्रिया भी भारतेन्दु से ही शुरू हो गई थी । बाद में भी बंकिम, रवीन्द्रनाथ, शरत आदि के अनुवादों का विपुल भंडार हिन्दी में उपलब्ध हुआ । बंगला के अतिरिक्त ओड़िया, असमिया, मराठी, गुजराती, तमिल, तेलुगू, कन्नड आदि भाषाओं से निरंतर अनूदित रजनाएँ हिन्दी में आती रही हैं और आ रही हैं । विभिन्न संस्थाएँ भी इस पर आग्रह प्रकाश कर रहे हैं । जैसे साहित्य अकादमी, भारतीय -ज्ञानपीठ, नेशनल बुक ट्रस्ट, भारतीय भाषा परिषद आदि इस कार्य में संलग्न हैं ।

आज सारे विश्व में अनुवाद की आवश्यकता का अनुभव किसी न किसी रूप में अवश्य किया जाता है । विभिन्न भाषा-भाषी समुदायों के बीच संप्रेषण प्रक्रिया का महत्वपूर्ण घटक बन कर अनुवाद हमारे सामने आता है । आज संसार के किसी भी देश में कोई नई खोज होती है, कोई नया विचार सामने आता है कोई नई विशिष्ट कृति चर्चित होती है तो हर व्यक्ति यही चाहता है कि उसकी सूचना जल्दी से जल्दी वह अपनी भाषा के माध्यम से अपने देशवासियों को दे सके । जिस प्रकार प्रत्येक भाषा संरचना अपने में विशिष्ट होती है उसी तरह से उस भाषा का सामाजिक - सांस्कृतिक संदर्भ भी विशिष्ट होता है । अनुवाद दो भाषाओं के साथ-साथ दो संस्कृतियों को भी निकट ले आता है ।

अनुवाद के जरिये हम विश्व साहित्य का परिचय प्राप्त कर सकते हैं । जैसे पंचतंत्र की कहानियों का अनुवाद विश्व की अनेक भाषाओं में हुआ तथा इन कहानियों ने आगे चल कर एशिया तथा यूरोप के कथा साहित्य को प्रभावित किया । पर आज तो अनुवाद हमारी अनिवार्यता ही बन गया है । विभिन्न राष्ट्रों के बीच नित्य नई -नई तरह के राजनैतिक, आर्थिक, सांस्कृतिक संबंध स्थापित हो रहे हैं और नित्य विभिन्न प्रकार के दस्तावेज संबंध-पत्र दोनों देशों की भाषाओं में तैयार किये जाते हैं । यह अनुवाद द्वारा सहज, सरल तथा सुलभ हो जाता है । यू.एन. में जो भी वक्तव्य पढ़ा जाता है, उसका अनुवाद तुरंत ही विश्व की अनेक (सात)भाषाओं में उपलब्ध कराया जाता है । कहने का तात्पर्य यह है कि आज विश्व मंच पर अनुवाद की कितनी महत्ता है हम स्वयं अनुभव कर सकते हैं ।

भारत तो बहुभाषा- भाषी देश है । अनेक भाषाएँ यहाँ बोली जाती हैं । इन भाषा-भाषी लोगों के बीच एकता, तथा भावात्मकता बनाए रखने के लिए अनुवाद की महत्वपूर्ण भूमिका है । इतना ही नहीं शिक्षा, कानून, प्रशासन, चिकित्सा, वाणिज्य एवं व्यवसाय, कृषि, पर्यटन, दूरसंचार आदि के क्षेत्रों में भी सभी भारतीयों को एक सूत्र में बांधे रखने के कार्य में अनुवाद की भूमिका महत्वपूर्ण है । प्रो. गोपीनाथन के शब्दों में “अनुवाद एक ऐसा सेतु बंधन का कार्य है जिसके बिना विश्व संस्कृति का विकास संभव नहीं है । अनुवाद के द्वारा हम मानव के इस विश्व कुटुंब में संपूर्ण एकता एवं समझदारी की भावना विकसित कर सकते हैं, मैत्री एवं भाईचारे को विकसित कर सकते हैं और गुटबंदी, संकुचित प्रान्तीयतावाद आदि से मुक्त होकर मानवीय एकता के मूल बिन्दु तक पहुँच सकते हैं ।” आधुनिक युग में तो अनुवाद की आवश्यकता वैयक्तिक रूचि पर आधारित न होकर सामाजिक, राजनैतिक, आर्थिक आवश्यकताओं पर आधारित है । इन्हीं आवश्यकताओं के कारण अब अनुवाद व्यक्ति परिधि से निकल कर समष्टि की परिधि में आ गया है । आज के समाज में अनुवाद की आवश्यकता इतनी अधिक बढ़ गई है कि अनुवाद का कार्य अब संगठित रूप में संस्था बना कर किया जाने लगा है अतः निष्कर्ष रूप में यह कहा जा रहा है कि अनुवाद का कार्य भी आज अन्य व्यवसायों की ही भांति एक व्यवसाय बन गया है ।

भारतीय साहित्य का इतिहास सभी भाषा के साहित्येतिहास से प्राचीन एवं कलामय है । भारत में प्राचीन काल से अब तक भारत की विभिन्न भाषाओं और बोलियों में सृजन होता रहा है । भारतीय साहित्य केवल विभिन्न भाषाओं की रचना से संबंध नहीं रखता बल्कि भारतीय साहित्य इस बहुभाषी और वैविध्यपूर्ण देश की सामासिक संस्कृति के समेकन का प्रयास भी है । अकेले सूरदास की चर्चा अब साहित्य में नहीं होगी, बल्कि सूरदास के साथ गुजराती के नरसी मेहता, तेलुगु के पोतना, ओड़िया के जगन्नाथ दास, असमिया के शंकरदेव, कन्नड के पुरंदर दास और बंगला के चंडी दास आदि कवियों की प्रासंगिक चर्चा होगी । यह अपरिहार्य बन गया है । जब हिन्दी में छायावादी कविताएँ लिखी जा रही थीं, ठीक उसी समय बंगला, मलयालम, पंजाबी, सिंधी, उर्दू, गुजराती, तेलुगु, मराठी आदि तमाम भारतीय भाषाओं में भाव और सौंदर्य पर आधारित स्वच्छंदतावादी काव्य रचा जा रहा था । लेकिन मलयालम से अपरिचित काव्यरसिक के लिए कठिन है कि वह कुमार आसन की भाववादी कविताओं से जुड़े । जो मराठी नहीं जानता वह विजय तेंदुलकर के नाटकों और कुसुमाग्रज की कविताओं का रसास्वादन नहीं कर सकता । जो हिन्दी नहीं जानता, वह प्रेमचंद की कहानियों और परसाई के व्यंगों से अनभिज्ञ ही रह जाएगा । भाषा ज्ञान के बिना भारत की विभिन्न भाषाओं में शताब्दियों में रचित साहित्य की उपलब्धियों से परिचित होना असंभव है । इसी असंभव को अनुवाद संभव बनाता है । अनुवाद के ही कारण तुलसी और कंबन, प्रेमचंद और शरतचंद्र, कबीर और वेमना, अंडाल, कालिदास और वाल्मीकि, भारतेन्दु, दिनकर, इकबाल, वृंदावनलाल वर्मा, हरिनारायण आप्टे, उमाशंकर जोशी, अज्ञेय और गोपीनाथ आदि भारतीय रचनाकारों से सारा हिन्दुस्तान परिचित है । रवीन्द्र नाथ ठाकुर, कबीर, गालिब आदि अनुवाद के कारण सिर्फ बंगाल, हिन्दी या उर्दू के पाठकों को मुग्ध नहीं करते, बल्कि विश्व के पाठकों के चहेते बन गये हैं । भारतीय साहित्य की अनमोल उपलब्धियाँ अनुवाद के कारण भाषा और देशकाल की सीमा में बंधी हुई नहीं हैं । स्वभावतः भारतीय साहित्य के अध्ययन और आस्वादन में अनुवाद की भूमिका को नकारा नहीं जा सकता ।

अनुवाद सिर्फ एक साहित्यिक कार्य नहीं है । उसकी पहचान जीवन के हर क्षेत्र में सक्रिय साधन के रूप में उभरी है । प्रशासन, चिकित्सा, कला, संस्कृति, विज्ञान, प्रतिरक्षा, विधि, प्रौद्योगिकी, तकनीकी, अनुसंधान, व्यवसाय, पत्रकारिता, जनसंचार आदि विभिन्न क्षेत्रों में अब अनुवाद के बिना कुछ नहीं हो सकता । भारत जैसे बहुभाषी और विविधताओं से भरपूर देश में राष्ट्रीय एकता के सूत्रों को समेटने में भी अनुवाद की अपनी विशिष्ट भूमिका है । भारतीय एवं अंतर्राष्ट्रीय साहित्य के अध्ययन - अध्यापन में अनुवाद की उपादेयता असंदिग्ध है । इसी तरह साहित्य के तुलनात्मक अध्ययन और अनुसंधान की विभिन्न दिशाएँ अनुवाद से ही नियंत्रित और विस्तृत होती हैं । क्रमशः अनुवाद एक स्वतंत्र व्यवसाय एवं आजीविका का साधन बन गया है । असंख्य लोगों की रोजी-रोटी अनुवाद से सम्मानजनक

तरीके से चल रही है । ज्ञान - विज्ञान, औद्योगिक विकास और वाणिज्य-व्यवसाय के विभिन्न क्षेत्रों में अनुवाद के व्यापक उपयोग ने इसे अधिकाधिक लोकप्रिय बनाया है । बहुभाषी देश भारत में बहुभाषी शिक्षा - प्रणाली की संभावनाओं के साथ भी अनुवाद का संबंध है । जीवन की हर दिशा में अनुवाद की प्रासंगिकता प्रमाणित हो चुकी है । आगे राष्ट्रीय और अंतर्राष्ट्रीय स्तर पर अनुवाद के महत्व की उत्तरोत्तर प्रगति होगी । अब वैश्वीकरण का दौर चल रहा है । हिन्दी भी भारत से बढ़ कर अंतर्राष्ट्रीय स्तर पर फैल रही है । यह अंग्रेजी की तरह क्रमशः विश्व भाषा का रूप ले रही है । अब क्षितिज बहुत विस्तृत हो रहा है । इसलिए अनुवादकों को भी बढ़चढ़ कर आगे आना चाहिए । जो दायित्व समय ने उन पर दिया है उसके लिए प्रस्तुत होकर उसे पूरा करना चाहिए ।

### 3.4 कार्यालयी तथा वैज्ञानिक एवं तकनीकी अनुवाद

#### \* भूमिका :

भाषा का प्रयोग भावों को शब्द रूप देने में ही नहीं होता । वह विषयवस्तु, विभिन्न विषयों की सामग्री को व्यक्त करने में भी प्रयुक्त होता है । इनमें तकनीकी -वैज्ञानिक विषय (जैसे फिजिक्स, इंजीनियरिंग, एरोनाटिक्स, वाणिज्य, प्रबंधन आदि ) अनेक विषय आते हैं । इसके अलावा विभिन्न काम आने वाले विषय भी हैं । इनमें कार्यालय का काम है, उसी प्रकार पत्रकारिता में प्रयोग होता है । तो फिर विज्ञापन में भी और मीडिया के रूप में । भाषा जीवन के सब क्षेत्रों में व्यक्त होने के लिए व्यवहृत होती है । इसीलिए इसे भाषा का प्रयोजनमूलक रूप कहते हैं । जीवन के हर क्षेत्र की जरूरत इस में आ जाती है । इस प्रकार भावना से इतर सारे कार्य व्यापारों को इसमें रखा जाता है -

हिंदी का प्रयोग अब तक बहुत सीमित क्षेत्र में होता रहा है । उभय भौगोलिक एवं विषय की दृष्टि से गांधीजी ने इसे अंग्रेजी छोड़ अपने देश की भाषा के रूप में हथियार बनाया था । सारे देश का यह राजनीतिक और एक करने का सांस्कृतिक काम हिंदी द्वारा संभव था । स्वतः लोग इस सीमित हिंदी को बड़ी सरलता से अपना सके, प्रयोग भी कर सके थे । इसके लिए गांधीजी ने एक बड़ा राष्ट्रव्यापी आंदोलन चलाया था ।

‘राष्ट्रभाषा प्रचार सभा’ - इसमें स्वयंसेवी दलों के संगठन देशभर में खड़े हुए । पुरुषोत्तम दासजी टंडन ने राष्ट्रभाषा द्वारा हिंदी साहित्य सम्मेलन इलाहाबाद में आरंभ किया । उधर राष्ट्रभाषा प्रचार सभा वर्धा में और दक्षिण भारत हिंदी प्रचार सभा चेन्नई में खड़ा हुआ । इसके बाद प्रचारक निकले । जो गांव-गांव, शहर-शहर जाकर हिंदी का प्रचार करते । हिंदी की वर्णमाला सिखाते । यह काम अंग्रेजों के लिए देशद्रोह जैसा था । लोग पकड़कर जेल में भी डाले गए । तब हिंदी सीखना-सिखाना जेल का काम था । आज हिंदी सीखना -सिखाना पुरस्कार और मान-सम्मान का काम बन गया । वह फर्क आया है आजादी के पहले और उसके बाद की हिंदी गतिविधि में ।

धीरे-धीरे हिंदी के पक्ष में वातावरण बन गया बिना किसी प्रतिवाद और बिना सरकारी नीति की परवाह किये काम होने लगा । कन्याकुमारी केरल, बंगला, महाराष्ट्र सब जगह जय हिंद ... जय हिंद गूंज उठा ।

परंतु आजादी के बाद संविधान सभा बनी । वहाँ कामकाज का सवाल उठा । अंग्रेज गए, अब अंग्रेजी को भी जाना होगा । तो फिर काम काज कैसे होगा ? संविधान निर्माता सभा ने आदेश दिया कि पंद्रह साल तो हिंदी -अंग्रेजी दोनों में काम हो । इतना ट्रांजीशन पीरियड काफी है ।

सारी संवैधानिक व्यवस्था के बावजूद प्रयोग में वैसा हो न सका । हर क्षेत्र और हर अंचल अपनी-अपनी अस्मिता के प्रति सचेत हो गया । अतः राष्ट्रभाषा और राष्ट्रीय एकता का मुद्दा पीछे रह गया । पंद्रह वर्ष में हिंदी प्रयोग को लेकर कोई प्रगति नहीं हुई । सरकारी काम वैसे ही अंग्रेजी में चलता रहा । १९६५ के बाद संविधान में संशोधन कर आगे भी सहयोगी भाषा के अनुवाद की प्रक्रिया में तेजी आने लगी । अंग्रेजी के साथ-साथ हिंदी भी समांतर रूप में प्रवेश पाने लगी । सरकारी कार्यालय द्विभाषी रूप में उभर कर आने लगे । यहाँ पर लोगों ने पहले बातचीत करना शुरू किया । हर सरकारी आदमी हिंदी में बात करने लगा । यह मानसिकता का परिचायक था । जो हिंदी बाजार और सड़कों पर बोली जाती । अब बैंक, रेलवे, सेना और विविध कार्यालयों में देश भर में बोली जाने लगी । अनुवाद के जरिये धीरे-धीरे देश से बाहर भी प्रचार होने लगा और आज देश के बाहर भी हिंदी का महत्व होने लगा है । इसके लिए सरकारी आधार भूमि (जैसे टाइपराइटर, देश की हर भाषा से अनुवाद व, हिंदी अधिकारी एवं हिंदी शब्दावली वाले द्विभाषी कोश) सब जगह उपलब्ध करायी गई । तरह-तरह के प्रोत्साहन रखे गए । कुल मिला कर वह आपसी समझ- बूझ, सहमति, भाईचारे एवं सौहार्द के बल पर आगे बढ़ने लगी । किसी तरह का बल प्रयोग, दंड या बाध्य-बाधाकता अथवा भय का कोई भाव या भावना नहीं रखी गई । लोगों में संशय की वह रात छंटने लगी । आपसी समझ बूझ बढ़ने लगी । अंग्रेजी के साथ-साथ हिंदी पढ़कर कार्यालयों में आने वालों की संख्या में खूब बढ़ोतरी हुई, हिंदी से करना जरूरी हो गया । अनुवाद के जरिये हिंदी भी हापुड़ मेरठ, गाजियाबाद से चल कर एमष्टर्डम, पारामारिबो, , फीजी, टोक्यो, न्यूयार्क अमेरिका चारों ओर वैश्विक स्तर पर फैली । इसका स्वरूप (Local) के बाद ग्लोबल अथवा वैश्विक बनने लगा । बहुत कुछ अनुवाद और नया समायोजन कर हिंदी का रूप नई चुनौतियों के लिए सजने -संवरने लगा । इसमें कलकारखानों, लेबारेटरियों, बैंकों और सेनाओं, रेलों और हवाई जहाजों में हिंदी को अनुवाद के पहिये लगा कर दौड़ने का अवसर मिला ।

नीतिगत तौर पर सबने माना कि अपने-अपने राज्य में अपनी क्षेत्रीय भाषा का प्रयोग करेंगे । राष्ट्रीय स्तर पर और अंतरराष्ट्रीय पहचान के लिए हिंदी को बढ़ावा देंगे । लगभग सारे देश-विदेश के भारतीयों ने इसे स्वीकार किया । इसमें हिंदी के लिए बारह लाख तकनीकी -वैज्ञानिक शब्दों का भंडार निर्मित हुआ । हजारों किताबें टेस्टबूरो ने और ग्रंथ अकादेमियों ने अनुवाद करायी, प्रस्तुत कर हिंदी

प्रसारित की गई । प्रोत्साहन वाली योजनाएँ अपनी जगह थी । हर दृष्टि से प्रयोजन के लिए हिंदी के पांव मजबूत किये गए । इस पर निगरानी करने हेतु संसदीय राजभाषा समितियाँ बनी । उन्होंने देश भर के विभिन्न कार्यालयों, कारखानों प्रयोगशालाओं एवं अन्य क्षेत्रों का दौरा कर स्थिति का जायजा लिया । मार्गदर्शन किया । सीधे अपनी रिपोर्ट राष्ट्रपति को सौंपी । उस आधार पर बीच-बीच में राष्ट्रपतिजी के आदेश निकले । हिंदी अनुवाद एवं प्रयोग के लिए नियम -विनियम, अध्यादेश ... निकले । तब जाकर हिंदी में कामकाज का स्तर बदला । अधिकारियों और कर्मचारियों सबने अदम्य उत्साह दिखाया ।

दर असल यहाँ दो -तीन बातें ध्यान में रखनी पड़ती हैं । नई हिंदी का प्रयोग सारे देश में नये सिरे से शुरू करना था । एक ओर पुरानी आदत के अनुसार अंग्रेजी का विशाल भंडार, दूसरी ओर एक नये क्षेत्र का नया भाषाई संसार । उसमें सहम कर कदम रखना पड़ता । मनोविज्ञान कहता है नई आदतें आने में समय लगता है । और जड़ता से छुटकारा पाने में पीढ़ियों तक प्रयास करना पड़ता है । तीसरी हमारी विशाल आबादी को तैयार करना इतना सहज न था । भावुकता के साथ-साथ यह जनसमूह बौद्धिक रूप में भी काफी प्रखर है । अतः इससे नया काम लेना बहुत सावधानी की मांग करता है । एक तो भाषा निर्माण फिर उसे सिखाना और तब काम में लगाना । तीन स्तर पर काम होना था । अतः समय लगाना स्वाभाविक था । इस बीच हमारी आर्थिक स्थिति भी बीच-बीच में बिगड़ी । राजनैतिक अस्थिरता आयी । सर्वोपरि विदेशी आक्रमणों ने भी हमारे ताने -बाने पर दबाव डाला । इस प्रकार हिंदी को लागू करने के प्रयास वाधाविघ्नों से होकर गुजरे हैं । संशोधनों को झेला है । तब जाकर हम इस स्थिति पर पहुँचे हैं । फिर भी कार्यालय हिंदी या प्रयोजनी हिंदी ज्यादातर अनुवादों के सहारे चल रही है । अतः उस पर चर्चा की जा रही है ।

### ✽ प्रयोजनमूलक हिंदी में अनुवाद :

क्योंकि स्वतंत्रता से पूर्व इसमें अंग्रेजी ही एक मात्र कज़ामकाज में व्यवहृत भाषा थी । परंतु 1949 के बाद क्रमशः भारतीय भाषा, विशेष रूप में हिंदी का प्रयोग बढ़ने लगा । जहाँ सामग्री नहीं मिलती अंग्रेजी से अनुवाद कर लेते । अतः हम शुरू में बहुत अधिक अनुवाद पर निर्भर करते । क्रमशः हम अपनी भाषा में समृद्ध होते रहे । भारतीय भाषाओं समेत हिंदी में प्रचुर अनुवाद हुआ । अतः इस साहित्य की मांग बढ़ने लगी । तेजी से वैज्ञानिक तकनीकी ही नहीं कार्यालयी सामग्री के अनुवाद की भी जरूरत बढ़ने लगी । इस कार्य को व्यापक रूप में किया गया है ।

## \* साहित्यिक बनाम वैज्ञानिक अनुवाद :

पीछे हमने देखा कि साहित्यिक अनुवाद बहु स्तरीय होता है । भाषा का विशेष प्रयोग होने के कारण सिर्फ शब्दकोषी भाषा उसके लिए यथेष्ट नहीं होती है । शब्दों को संदर्भ के साथ देखना पड़ता है और उनका प्रयोग अनुवादक जांच-परख करता है । आधुनिक साहित्य में तो शब्दों का व्यक्तिगत प्रयोग बढ़ गया । फलस्वरूप शब्द संकेत व्यक्ति के आधार पर अर्थ देते हैं । ऐसे में उसका उसी स्तर पर अर्थग्रहण करना होता है । वहाँ पर तथ्य से अक तत्व और दर्शन समाहित होता है । सृजनात्मक साहित्य में भावों का समाहार है जो कि प्रायः अमूर्त होते हैं । शब्दों के माध्यम से उन्हें मूर्त रूप देने का प्रयास करता है । साहित्य अपने युग की अभिव्यक्ति होता है । अतः अनुवादक को उस युग से परिचित होना जरूरी है । एक साहित्यकार ही साहित्यिक सामग्री का अनुवाद करे तो उसमें अधिक सफल होता है । लक्ष्य भाषा में नयी इमारत वही खड़ी कर सकता है । लक्ष्य भाषा में सृजन की सारी जटिलता सारी समस्या और सारी व्यवस्था मूल को हृदयंगम कर के चलता है ।

जब कि वैज्ञानिक -तकनीकी में शब्द की समस्या एक भिन्न स्तर पर रहती है । वह तथ्य परक संदर्भों की समस्या है । यहाँ पर मूर्त रूपों का नई भाषा में मूर्त रूपांतरण होता है । सूचना प्रधान होने के कारण समानार्थी शब्दों को कोश में ढूँढा जा सकता है । सब भाषाओं में अपनी -अपनी वैज्ञानिक तकनीकी शब्दावली बनी होती है । संदर्भानुसार उन शब्दों को ढूँढ कर वह नई सामग्री का निर्माण कर लेता है । वह शब्दों का अभिधा के आधार पर अर्थ निकाल लेता है । बस यही देखना है कि किस संदर्भ में वह शब्द प्रयुक्त हुआ है । एक ही शब्द का संदर्भ बदलने पर अर्थ बदल जाता है । अतः उस संदर्भ के आशयवाला शब्द व्यवहार कर सकता है । यहाँ एक संदर्भ में शब्द एकार्थी होता है । वैज्ञानिक तकनीकी शब्दावली की यह सबसे बड़ी सहूलियत है । यहाँ हम 'पारिभाषिक शब्दावली' का इस्तेमाल कर एक आसान राह पर चल सकते हैं । यह भाषा विषय को विवरण, विश्लेषण, विवेचन करती है । देश -काल या सांस्कृतिक -ऐतिहासिक कारक प्रभाव नहीं डालते । दूसरे शब्दों में वैज्ञानिक तथ्य लगभग सार्वभौमिक होते हैं । यह सूचना भर भाषानुवाद में रूपांतरित करते हैं । इनका विवरण लक्ष्य भाषा में प्रस्तुत करना होता है । यहाँ शब्द लक्ष्य भाषा में न होने पर मूल का शब्द भी रख देते हैं । क्योंकि वैज्ञानिक शब्दावली अपने-अपने देश के लोगों, वहाँ के अनुभवों एवं अनुसंधानादि से जन्म लेती है । अतः वह शब्दावली स्थानीय शब्द निर्माण शैली, परंपरा एवं व्यक्ति -स्थल विशेष को महत्व दे कर बनती है । उसका अनुवाद हर आदमी हर देश में अपने-अपने ढंग से नहीं कर सकता । विधि निर्मित व्यवस्था और लक्ष्य भाषा में स्वीकार्य समतुल्य शब्दों से बनती है । अतः उसकी अपनी सीमायें होती हैं । अनुवादक के लिए यहाँ यह बंधन मानना जरूरी है । अतः इस भाषा की सामग्री का अनुवाद चार अनुवादक चार तरह से नहीं कर सकते । वह पारिभाषिक शब्दावली के अनुशासन में रह कर करता है ।

बहुत ज्यादा स्वतंत्रता नहीं रहती (वाक्य निर्माण संबंधी शैली गत थोड़ी छूट जरूरी रहती है ) वैज्ञानिक नियमों में और क्रिया -प्रक्रियाओं में बहुत छूट नहीं होती । वैविध्य की संभावना लगभग नहीं होती । विषय विवेचना के लिए विषय का ज्ञान जरूरी है । लक्ष्य भाषा में उस संदर्भ में प्रयुक्त शब्दावली से परिचय जरूरी है । मूल अर्थ को लेकर लक्ष्य भाषा में उसे उचित ढंग से प्रस्तुत न करने पर वह अनुवाद बोझिल हो जाता है । अटपटा लगने लगता है । संप्रेषण में कठिनाई पैदा कर सकता है । शब्द के बाद प्रतिशब्द एक-एक कर रखते जाना काफी नहीं होता । वैज्ञानिक एवं तकनीकी भाषा में जीवन के विशेष अनुभव ही ज्ञान कहलाते हैं । यह ज्ञान -विज्ञान उस धरती के जीवन, वहाँ की जलवायु, परंपरा आवश्यकता, भौतिक जीवन की समस्या से जन्म लेता है । अनायास नहीं । सप्रयास और प्रयोगशाला से जन्म लेकर नूतन तथ्य संबलित साहित्य निर्मित होता है । कल्पना कर उन्हें विशेष परीक्षण निरीक्षण कर सत्य रूप में लाते हैं । वह साहित्य अनुवाद के लिए जब प्रस्तुत होता है वहाँ वे आवश्यकताएँ हो सकती हैं, पर उन अनुभवों की देन न होने के कारण वह शब्दावली प्रायः नहीं होती । उस समय या तो मूल को ग्रहण कर लेते हैं, या उसकी तरह गढ़ लेते हैं या फिर अपने (लक्ष्य में) कुछ शब्दों को उसके समकक्ष वह अर्थ वहन करने वाला मान लेते हैं । तब उसका प्रयोग कर अनुवाद कर लेते हैं । यहाँ पर भाषा की पारदर्शी और एकाकी होना उसका सबसे बड़ा गुण होगा । इसीलिए सटीकता पर बल दिया जाता है । अभिधा के सहारे अनुवाद करने में दिक्कत नहीं रहती । जबकि साहित्यानुवाद में स्थिति पहले ही स्पष्ट की जा चुकी है ।

अतः साहित्य और विज्ञान अनुवादों का लक्ष्य एक है, प्रक्रिया -प्रविधि भी एक है । परंतु उसकी समस्याएँ भिन्न-भिन्न हैं, औजार भिन्न हैं और स्तर भिन्न -भिन्न हैं । प्रतीक दोनों में हैं, पर प्रतीकार्थ भिन्न हैं ।

यही कारण है कि इक्कीसवीं सदी में तकनीकी -वैज्ञानिक अनुवाद को इतना महत्व दिया जा रहा है । देश में 'राष्ट्रीय अनुवाद मिशन' पर अरबों रुपये खर्च हो रहे हैं । देश में केंद्रीय सरकार ने अनुवाद बूरो बना कर देश भर में उसके प्रशिक्षण की व्यवस्था कर रखी है । विश्वविद्यालय स्तर पर चारों ओर प्रयोजन मूलक हिंदी और प्रयोजनी अनुवाद के पाठ्य क्रमों की सुचिंतित प्रणाली विकसित हो चुकी है । शब्दावली निर्माण हेतु विशाल एक केंद्रीय आयोग वर्षों से कार्यरत है जिसने अब तक बारह लाख शब्द निर्मित कर लिए हैं । सैकड़ों ग्रंथ निर्मित हुए हैं । भारतीय भाषाओं में अनुवाद का यह कार्य व्यापक स्तर पर चल रहा है । भारतीय भाषाओं में आधुनिक तकनीकी वैज्ञानिक सामग्री का अभाव नहीं रहेगा । प्रोत्साहन का अभाव नहीं है । आज इस दिशा में कर्मठ कार्यकर्ताओं का अभाव अभिलक्षित हो रहा है ।

दर असल

i) विषयगत प्रामाणिकता

ii) यथा तथ्यता

iii) सुपाठ्यता

तीन प्रमुख गुण इस अनुवाद के लिए जरूरी हैं। इसके अलावा शैली को आगे चलकर समाहित करें तो सोने में सुगंध होती है। यह बात मुहावरे आने पर उठती है। तब भाषा सजाने का, अधिक सुन्दर करने का प्रयास संभव है। यहाँ पर संकेत अपने अपने संदर्भ में एकदम विशिष्ट अर्थ वहन करते हैं। चिन्हों का उपयोग भी उसी प्रकार विशिष्ट होता है। ये वैज्ञानिक-तकनीकी प्रतीक सामान्य भाषा में नहीं चलते। उन्हें विशेष जानकार ही समझ पाता है। हाँ कुछ चिन्ह सार्वदेशिक हो जाते हैं और सारे विश्व में उनका प्रयोग समरूप में होता है। अतः कह सकते हैं कि यह भाषा भी विशेषीकृत है। वैज्ञानिक-तकनीकी भाषा को वैसे ही वैज्ञानिक-तकनीकी रूप में लक्ष्य भाषा में रखना होता है। यहाँ भी पहले से प्रयुक्त क्षेत्र नहीं होता। शुरू में अटपटा लग सकता है।

### 3.5 पारिभाषिक शब्दावली और उसका महत्व :

यह वैसे ही जैसे डालर को रुपयों में बदलना अथवा रुबल या दीनार या येन को रुपयों में करेंसी के स्तर पर परिवर्तन करना होता है। फर्क यही है कि करेंसी में भाव घटते-बढ़ते हैं। परंतु तकनीकी प्रयोग हेतु प्रयुक्त पारिभाषिक शब्दावली का मूल्य स्थिर होता है। इसीलिए पारिभाषिक शब्दावली को वैज्ञानिक साहित्य की आधारशिला कहा जाता है। यहाँ शब्द की (अर्थगत) सीमा बांध कर सुनिश्चित कर दी गई होती है। इसकी तीन विशेषताएँ होती हैं।

i) ये सीमित अर्थ की सूचना देते हैं।

ii) उस अर्थ को वहन करने हेतु एक ही शब्द प्रयुक्त होता है। विकल्प नहीं।

iii) यहाँ अर्थ विशिष्ट होता है। एक संदर्भ में प्रयुक्त शब्द सामान्य अर्थ नहीं, वह संदर्भ का अर्थ प्रदान करता है।

जब प्रयोग बढ़ जाता है तो वही शब्द सामान्य जैसा लगने लगता है। प्रयोक्ता भूल जाता है कि इसका निर्माण विशेष अर्थ में हुआ। यह भी ध्यान में रखना जरूरी है कि हम भाषा विकास के दौर से गुजर रहे हैं। हिंदी में तकनीकी-वैज्ञानिक प्रयोग की भाषा और शब्दावली बन रही है। साथ-साथ देश इस क्षेत्र में द्रुतगति से आगे बढ़ रहा है। रिसर्च के जरिये नये क्षेत्र जुड़ रहे हैं। जो लोग स्थिर **मानक शब्दावली** की बात करते हैं उन्हें इस बात को भी ध्यान में रखना होगा। हम अभी स्थिर एवं जड़

पारिभाषिक शब्दावली के स्तर तक नहीं पहुँचे । विकास के दौर में रघुवीर द्वारा निर्मित शब्दावली तक को पीछे छोड़ चुके हैं । आज उनका महान कार्य हमारे लिए ऐतिहासिक महत्व का जरूर है । परंतु प्रयोग के स्तर पर तकनीकी एवं वैज्ञानिक शब्दावली आयोग द्वारा स्वीकृत एवं निर्मित शब्दावली ही विशेष महत्व रखती है ।

फिर भी यूनेस्को द्वारा प्रकाशित प्रो.ए. सेवोदिन के ग्रंथ 'साइंटिफिक एंड टेक्निकल ट्रांसलेशन एंड अदर एस्पेक्ट आफ लैंग्वेज प्रॉब्लम' के अनुसार पारिभाषिक शब्दों की प्रमुख विशेषता निम्न हैं -

i) **उच्चारण में सरलता** - पारिभाषिक शब्द का उच्चारण प्रयोग करने वाले के लिए सरल हो । तभी वह उसे ज्यादा से ज्यादा व्यवहार करने में समर्थ होगा । यहाँ पराई भाषा से ग्रहण किये शब्द को अपने अनुकूल बनाने की प्रक्रिया खूब चल रही है -

Under -	अंदर
Lantern -	लालटेन
Interim -	अंतरिम
Academy -	अकादेमि
Tragedy -	त्रासदी
Comedy -	कामेदी
Glucose -	ग्लूकोस

ii) **पारिभाषिक शब्द का अर्थ** - स्पष्ट, सुबोध और सुनिश्चित होना चाहिए । अर्थ संकोच या अर्थ विस्तार से फिर वह पारिभाषिक न रह कर सामान्य शब्द बन जाता है ।

iii) **विषयबद्ध** - पारिभाषिक एक विषय संदर्भ में अर्थ प्रदान करता है । दूसरे संदर्भ में या दूसरे विषय क्षेत्र में वही अर्थ नहीं देगा । यहाँ पर उस विषय की सूचना वही शब्द देगा । जैसे Government शब्द का अर्थ सरकार और शासन दोनों हैं । हमारे देश में हिंदी का रूप संस्कृतनिष्ठ और उर्दूनिष्ठ दोनों स्वीकार्य होने के कारण बहुत बार दो शब्द पारिभाषिक रूप में स्वीकार्य होते हैं । जैसे कार्यालय, दफ्तर; नौकर - चपरासी अफसर, अधिकारी ।

i<sub>v</sub>) **संक्षिप्तता** - शब्द संक्षिप्त हो तो बार-बार प्रयोग में सुविधा रहती है । जैसे कर, आय, बैंक, ऋण, तार, इनका प्रयोग खूब होने लगा है क्योंकि ये शब्द संक्षिप्त और आसान हैं ।

v) **उर्वरता** - पारिभाषिक शब्द में प्रत्यय, उपसर्ग लगा कर अनेक शब्द बनाने की क्षमता होनी चाहिए जैसे - उत्पादक -उत्पादकीय, विद्युत - विद्युतीकरण, कर - कराधान, राज्य- राजकीय ।

इस प्रकार प्रयोक्ता का कार्य आसान हो जाता है ।

vi) **मूलनिष्ठता** - पारिभाषिक शब्द जिस मूल से बना, उस अर्थ के निकट हो । तभी वह अर्थ सही ढंग से स्पष्ट होगा । जैसे - प्रेषण - संप्रेषण, निकट - निकटता, सन्निकट ।

vii) **स्वतंत्रता एवं स्वायत्तता** - ये अर्थ प्रदान में स्वायत्त होते हैं और विशिष्ट होते हैं । इससे कोई संदेह या दुविधा नहीं होती - नियम - अधिनियम, नियमावली ।

viii) **सांकेतिकता** - इसमें शब्द संक्षिप्तिकरण करते हैं । विज्ञान में इसका विशेष महत्व है ।

जैसे - H<sub>2</sub>O का प्रयोग पानी के लिए होता है , उ.नि. - उपनिदेशक

इन विशेष व्यवस्थाओं के बीच अनुवाद उन संकल्पनात्मक शब्दों का रूपांतरण होता है । मूल तो आविष्कर्ता अपनी भाषा में उन्हें जन्म देता या ढालता है । अनुवाद के समय उस संकल्पना पर जोर देकर ढालना पड़ता है । यहाँ पर्याय चुनते समय कुछ कम या कुछ अधिक हो जाता है । उसे बोध के स्तर पर मूल जैसा प्रभावी होना चाहिए । यह हमेशा संभव नहीं होता । कोई शब्द ग्रहणीयता का प्रश्न बना रहता है । कोई शब्द ग्रहण हो जाता है , चल पड़ता है । कोई छूट जाता है । इसमें लोकमानस महत्वपूर्ण होता है । राजनीति और सामाजिक चलन ज्यादा भूमिका निभाते हैं । आज AIR का हिंदी 'आकाशवाणी' खूब चलता है । TV का वैसे ही दूरदर्शन चल पड़ा है । प्रो. सूरज भानसिंह ने इस पर गौर कर स्वीकारा है । वे कहते हैं -

“हर नया ज्ञान भाषा से शब्दावली और अभिव्यक्ति की मांग करता है । जो अन्वेषक नया आविष्कार देता है, वही उसे नाम देता है ।” इस प्रकार शब्दों का जन्म मूल रूप में भिन्न है तो अनुवाद में उसे समझ उसी प्रकार उत्पन्न करना या अनुकूलन करना पड़ता है । जब कोई संकल्पना विशिष्ट है, तो उसे व्यक्त करने वाला शब्द भी विशिष्ट होता है । यह सामान्य भाषा में हो भी सकता है , या अर्थ विशिष्ट व्यक्त करेगा । अतः सामान्य हिंदी जानकार इनके विशेष संदर्भ को लेकर विशेष अर्थ में उसे जाने तब बात बनती है ।

यहाँ स्मरण की बात है कि पारिभाषिक शब्दावली की चर्चा सामान्यजन के लिए नहीं है । इसका प्रयोग विशिष्टजन के लिए है जो उस क्षेत्र से संबद्ध हैं या उसमें किसी न किसी रूप में कार्यरत हैं । औरों का उससे काम कम पड़ता है ।

यह वास्तव में ध्यान देने की बात है कि तकनीकी एवं वैज्ञानिक शब्दावली एक-एक विषय विशेष के लिए रूढ़ हुआ करती है । उसका सामान्य प्रयोग अन्य संदर्भ में संभव नहीं । अतः हिंदी में तकनीकी शब्दावली के संदर्भ में जो 'दुरुहता', अबोधता और 'अप्रचलित' शब्दावली का आरोप लगाया जाता है । यह अनावश्यक और दुर्भावना प्रेरित भी हो सकता है । जो उसका प्रयोग नहीं चाहते,

वे कुछ विशेष उद्देश्य रखकर ऐसा आक्षेप कर देते हैं। उदाहरण के लिए मेडिकल में प्रयुक्त पूरी शब्दावली जर्मन, जापान अथवा फ्रेंच आधार पर बनी है। हमारा उस प्रणाली, दवा अथवा प्रक्रिया में कहीं कोई योगदान नहीं है। हम कृतज्ञता पूर्वक उसे ग्रहण कर रहे हैं, मानवीय उपकार को ध्यान में रख कर। इसे साधारण दृष्टि से देखें तो यह एकदम अटपटी, दुरुह और अपरिचित लगेगी। परंतु इनका संबंध उत्पादन, अनुसंधान, प्रयोग एवं अन्य दृष्टि से अंतराष्ट्रीय अविच्छेद्य संबंध है। अतः इसमें (जैसा नामावली) संशोधन, परिवर्तन, समीकरण या भारतीयकरण संभव नहीं होगा। इससे हम एक वृत्तहर कार्यक्रम से कट कर स्थानीय बन कर रह जायेंगे। उससे जुड़ी वैश्विक प्रगति से नये संधानों से हमारा संबंध छूट जायेगा। यह तकनीक में ज्यादा महत्व रखती है क्योंकि बहुत तेजी से परिवर्तन आ रहे हैं। इस शब्दावली से छेड़छाड़ हमारे हित में नहीं होगी। जो इन क्षेत्रों (जैसे डाक्टर, इंजीनियर, टेक्नोक्रेट आदि) जुड़े हैं, इन शब्दों का उन्हीं से संबंध है। वे इसके साथ अभ्यस्त हो जाते हैं। क्योंकि उनकी मेधा ही वैसी बन जाती है। इस प्रकार तकनीकी शब्दावली के अंतराष्ट्रीय अंश पर टिप्पणी करते समय हमें विशेष सावधान होना पड़ेगा। उसमें नाम सूचक शब्दों के अलावा भाषा के अन्य अंगों (Components) विचार कर सकते हैं। वहाँ जटिलता से उनका कार्य कठिन होगा। उन्हें कोई सुविधा नहीं मिलेगी। इस बात को ध्यान में रख कर हम हिंदी के भाषागत प्रयोग पर चर्चा करेंगे। लंबे अर्से तक केंद्रीय शब्दावली आयोग सिर्फ हिंदी शब्दावली निर्माण पर ध्यान केंद्रित किये रहा। परंतु अब सांविधिक मेंडेट के कारण यह राष्ट्रीय जिम्मेदारी का केन्द्र बन गया। क्षेत्रीय भाषा शब्दावली का कार्य तेजी से करने में तत्पर हो गया है। यहाँ तक कि बोडो जैसी सद्यस्वीकृत भाषा पर भी अनुवाद के सहारे उल्लेखनीय प्रगति करने में सफल हुआ है।

परंतु हिंदी में निर्मित पारिभाषिक शब्दावली ज्यादातर अंग्रेजी से बनी है। भारत की अन्य भाषायें भी इसे आदर्श मान कर चलती हैं। हिंदी अनुवाद में सतर्क रहने की विशेष जरूरत है। इसी कारण संस्कृत की ओर झुकाव अधिक है। वैसे संविधान बहुविध सामासिक संस्कृति की बात कहता है। विकास सारे देश में चल रहा है। नैसर्गिक विकास प्रक्रिया में शब्द निर्माण एवं भाषा परिवर्तन का क्रम साथ-साथ जारी है। अनुवाद प्रक्रिया को सहज और सरल बनाने हेतु हिंदी में अनुवाद को मानक रूप प्रदान करना होगा। अतः हिंदी में प्रयुक्त शब्दावली को भारतीय सर्वोच्च न्यायालय द्वारा प्रदत्त दिशा निर्देशानुसार बनाना होगा। इसमें आयोग की बनाई शब्दावली का प्रयोग करना होगा। इसमें किसी संशोधन का भी दायित्व इसी का है। प्रयोग करते-करते जहाँ समस्या हो वहाँ सुधार कर सकते हैं। ऐसे में सारे देश के लिए समस्तर पर अनुवाद कार्य संभव होगा। प्रो. केशरीलाल वर्मा, आयोग के अध्यक्ष कहते हैं - आयोग तकनीकी शब्दावली एवं भाषा की प्रगति भारत की सभी बाईस भाषाओं में करने के लिए प्रतिबद्ध है। उदाहरणार्थ केंद्रीयहिंदी निदेशालय ने 'महाकोश' निर्मित किया। इसमें

भारत की मान्य सभी भाषाओं के मानक शब्दों के समान रूप उपलब्ध हैं । इससे तकनीकी व वैज्ञानिक भाषा ही नहीं प्रशासन की भाषा भी एक स्तर पर स्थिर हो सकेगी । हमारे विकास का भाषाई रोड़ा हट सकेगा और सामंजस्य स्थापित होना संभव होगा । फिर अनुवाद (वैज्ञानिक एवं तकनीकी) की भाषा को मानक रूप मिलेगा और देश भर में स्वीकार्य हो सकेगी । गांव-कस्बे देहात से शहर -नगर और राजधानी तक सर्वत्र सम भाषा बनेगी । यह हमारे विकास को त्वरा प्रदान कर सकेगी । ऐसे समाज में वैज्ञानिक विकास की धारा सार्वजनिक जीवन को स्पर्श करते हुए गुजरेगी ।

### \* वैज्ञानिक -तकनीकी अनुवाद की समस्यायें :

ऐसे साहित्य के अनुवाद की कुछ समस्याओं पर चर्चा पीछे हो चुकी है । मुख्य चर्चा तकनीकी या पारिभाषिक शब्दावली पर हुई है । क्योंकि प्रामाणिक शब्द पाना ही यहाँ प्रमुख समस्या होती है ।

शब्दों में तो विशेष संकल्पना भरी होती है । वे ही उसके बीज होते हैं । परंतु लक्ष्य भाषा में तनुरूप अनुषंगिक व्याकरणिक इकाइयाँ भी होती हैं । संप्रेषण लाने हेतु वाक्य गठन पर भी ध्यान देना जरूरी है । जैसे कि हम परिचित हैं, अंग्रेजी में वाक्य बहुत लंबे रखने की परंपरा है । हिंदी में ऐसा नहीं । अतः एक अंग्रेजी वाक्य को हिंदी में वैज्ञानिक तथ्य व्यक्त करने के लिए प्रस्तुत करते समय सर्वनाम, विशेषण एवं असमापिका समापिका क्रियाओं का प्रयोग एकाधिक बार करना होता है । हिंदी में लिंग निर्धारण एक ओर समस्या है । तकनीकी -वैज्ञानिक विषय तो क्लीव होते हैं या अप्राणिवाचक । उनको हिंदी की बाइनरी लिंग प्रणाली में ढालना होता है । हाल ही में उद्भावित स्पुटनिक, कंप्यूटर, माउस, इंटरनेट, फेसबुक, इन शब्दों का यादृच्छिक लिंग निर्धारण करना बड़ी समस्या है । वह लोक प्रचलन से भिन्न नहीं हो सकती । मूल का भी वचन/लिंग अनुकरण अनुवाद में संभव नहीं । अतः अनुवादक को स्वविवेक से मार्ग निकालना होता है । उसी प्रकार अनुवाद में शैली का चुनाव करते समय समान शैली लें या रुढ़ शब्द व्यवहार करें । संस्कृत के अनुसार चलें या उर्दू या देशज प्रयोग करें । इस तरह की व्याकरणिक समस्याओं को लांघ कर चलना पड़ता है ।

gÖr§/H\$A m m \_|Vra ZdwXHS^ rfmHSEHS\_nz al Vmh;Og (Theory of species) अथवा (Analysis of dreams) ऐसे ग्रंथों का अनुवाद बड़ी चुनौती प्रस्तुत करता है । यह ललित साहित्य के अनुवाद से भी बढ़ कर कलात्मक भाषा में किया गया कार्य है । अनुवाद में वह स्तर बनाना बहुत बड़ी चुनौती है । यहाँ अनुवादक विषय की गहनता के साथ-साथ भाषा के लावण्य से भी रू-ब-रू होता है । यहाँ बोधगम्यता से आगे बढ़कर साहित्यिक स्तर तक पहुँचना पड़ता है । यह अनुवाद की सीमा नहीं, शक्ति निर्धारित करता है ।

विज्ञान सामग्री प्रकाशन की सुविधा होती जा रही है । एक ओर भारतीय भाषाओं में अपने

अनुसंधान लब्ध परिणामों अथवा कार्यक्रम संबंधी सूचनाओं या सेमिनार पेपर को हिंदी में लिखने का प्रोत्साहन नहीं पाते । अभी भी यथेष्ट प्रयोगजनित अभ्यास न होने के कारण वे लोग हिंदी व्यवहार नहीं करते । संकोचवश वे अंग्रेजी में लिखते हैं । अनुवाद में विज्ञान के जानकार कहाँ हैं जो दक्ष अनुवाद कर सकें । अतः अनुवाद में श्रेष्ठ वैज्ञानिक साहित्य नहीं आ पाता है । बहुत औसत दर्जे का काम हिंदी पाठकों को मिल पाता है । जो होता भी है उसे वृहत्तर पाठक वर्ग नहीं मिलता । सीमित रहने को वैज्ञानिक आज भी मन नहीं बना पाता । वह विश्व की प्रसिद्ध पत्र-पत्रिकाओं, प्रकाशन हाउसों तक अपना काम भेज देता है । कहीं रोड़ा, कहीं कांटा, कहीं ऊंचा-नीचा (ऊबड़-खाबड़) ... हर तरह की जमीन मिलती है । सर.जे.सी बोस जैसी राष्ट्रीय स्वाभिमानी मेधा ही भाषा में काम करने का मन बना पाती है । वहाँ पर पीढ़ी दर पीढ़ी वह परंपरा भी मजबूत हो रही है ।

### 3.6 मशीनी अनुवाद :

कंप्यूटर आने के बाद आदमी उससे बहुत आशा और आकांक्षा करने लगा है । उसकी क्षमता तो सीमित लगती है, परंतु संभावनाएँ असीम हैं । टंकण का कार्य आदमी बोल कर करने लगा है । आवाज पकड़ता है तो उससे आगे भाषा भी पकड़ेगा । इसी सिद्धांत पर कंप्यूटर का उपयोग अनुवाद में करने की बात आयी । यह सच है कि वैज्ञानिक नियम कंप्यूटर में डाल कर शब्दावली के नियमानुरूप अनुवाद स्वतः कंप्यूटर कर सकता है । मनुष्य कुछ डेटा उसमें डालता है । अर्थ के लिए कुछ प्रोग्रामिंग किया जाता है । ज्यों-ज्यों सामग्री आ जाती है । यह स्वचालित कंप्यूटर रूपांतरण कर देता है । यहाँ मनुष्य डेटा भरने का काम करता है । बाकी प्रक्रिया स्वतः होने लगती है । मनुष्य को अनुवाद कार्य में कुछ नहीं करना ।

मानव नियंत्रित मशीनी अनुवाद में तीन सोपान हैं :

- ए) पाठ का विश्लेषण (Analysis of text)
- बी) अंतरवर्ती प्रक्रिया (Intirmettent process)
- सी) प्रजनन (Generation )

इस प्रकार अनुवादक मशीन में पाठ को फीड किया जाता है । विविध व्यापक स्तरों पर उसे विभाजित करते हैं । इसके बाद प्रक्रिया में इकाइयों में विभक्त करते हैं । लक्ष्य भाषा को बराबर उत्पन्न कर पाठ निर्माण करते हैं । यह (Output ) कहलाता है । यह काम पहले जर्मन, फ्रेंच, रूसी आदि भाषाओं में शुरू हुआ है । मशीनी अनुवाद के सोपान हैं :

स्रोत भाषा पाठ, स्रोत भाषा पाठ विश्लेषण , लक्ष्य भाषा पाठ प्रजनन संश्लेषण,  
लक्ष्य भाषा पाठ

भारत में मशीनी अनुवाद के लिए भारतीय प्रौद्योगिक संस्थान, कानपुर में 'अक्षरा भारती' के अंतर्गत काम शुरू हुआ। भारतीय भाषाओं में पार्सर (पद व्याख्या) और प्रजनन (Generator) का विकास कर विभिन्न भाषाओं के बीच अनुवाद करने का प्रयास हुआ। 'पाणिनीय के कारण पार्सर' का विकास हुआ। इस प्रकार भारतीय भाषाओं में परस्पर मशीनी अनुवाद के संदर्भ में सैद्धांतिक पृष्ठभूमि तैयार हुई। 1995 ई. में हैदराबाद युनिवर्सिटी के सहयोग से तेलुगु -हिंदी, कन्नड -हिंदी, पंजाबी -हिंदी, बंगला -हिंदी, मराठी -हिंदी का विकास हुआ। ये अनुसारक LINUX प्लेटफार्म पर तैयार किये गए।

भारत में अनुवाद का क्षेत्र अधिक है। सक्रिय राजभाषा में जरूरत महसूस हो रही है। अतः मशीनी अनुवाद का विशेष विकास CDAC, पुणे में चल रहा है। कार्यालयी कामकाज को विशेष ध्यान में रखकर मंत्रा (Machine Assisted Translation) का विकास हुआ है। इसी प्रकार 'आंग्लभारती' के अंतर्गत भारतीय भाषाओं में साफ्टवेयरों पर सीडक, पुणे एवं अन्य अनेक प्रौद्योगिक संस्थानों में तेजी से विकास कार्य चल रहा है! इसमें यूएनएल (Universal Networking Language) के माध्यम से हिंदी को राष्ट्रसंघ की भाषाओं से जोड़ने का काम चल रहा है। हिंदी से (UNL) में परिवर्तन के लिए और (UNI) से हिंदी में परिवर्तन के लिए (Enconverter) तैयार हो रहे हैं।

जापान ने इस क्षेत्र में प्रगति कर मशीन पर मौखिक अनुवाद की ओर कदम बढ़ाये हैं। जापानी से हिंदी, अंग्रेजी, चीनी आदि सात भाषाओं में बोलते -बोलते अनुवाद की पद्धति पर्यटन क्षेत्र में विकसित हो रही है। इसका फिलहाल प्रयोग पर्यटन कार्यक्षेत्र में होगा। इसमें वाक् अभिज्ञान (Speech recognition) प्रमुख है। यह कार्य सीडक पुणे में भी प्रगति पर है। उच्चारित पाठ को मशीन लेकर टाइप कर लेती है। हिंदी में यह 80-85% तक सफलता प्राप्त कर चुका है। यह साफ्टवेयर बजार में उतारने का प्रयास हो रहा है। कंप्यूटर टाइपिंग में इस सफलता के बाद 'युनिकोड' की तरह फॉट खोलने की समस्या का समाधान होने की दिशा में बढ़ रहे हैं।

इस प्रकार देख रहे हैं कि कंप्यूटर के आगमन से अनुवाद के क्षेत्र में काफी गति की संभावना बढ़ रही है। इससे ज्ञान-विज्ञान के साथ ललित साहित्य के अनुवाद को अगली पीढ़ी के संधान में सफलता पायी जा सकेगी। सांस्कृतिक जटिल पाठ की समस्या सुलझा लेने की संभावना है। पहले लगा कि हम पिछड़ रहे हैं। परंतु विश्व के साफ्टवेयर बजार में महत्वपूर्ण उपस्थिति दर्ज कराने के बाद हमें विश्वास हो गया कि इस आधुनिकतम प्रणाली के जरिये अनुवाद के विविध क्षेत्रों में सफलता पाना कठिन नहीं होगा। समस्या समाधान और सुविधा प्रदान तो अनुसंधान के प्रमुख कार्य हैं। मशीनी क्षेत्र का तकनोक्रेट नित नये आविष्कार करने में जुटा है। आशा है वह दिन दूर नहीं होगा जब विश्व में भारतीय मशीनी अनुवाद अपनी धाक जमा सकेगा।

वैश्वीकरण के दौर में ये मशीनी कार्य हमें सागर लांघने में मदद करेगा । अब सागर यात्रा से माल ही जाता है । बुद्धि और चेतना की यात्रा तो कंप्यूटर इंटरनेट ट्विटर पर हो रही हैं । अतः व्यावसायिक वैश्वीकरण से बढ़ कर मानव का सांस्कृतिक एवं चेतना के स्तर पर सौहार्द पूर्ण बंधुताभावापन्न मेलजोल संभव हो सकेगा । मशीनी अनुवाद की महत्वपूर्ण भूमिका दिन पर दिन बढ़ती जा रही है ।

### 3.7 कार्यालयीन अनुवाद :

आजादी के बाद हमने अपने कामकाज (Office Business) के लिए हिंदी को राजभाषा और (अब) 22 भाषाओं को आठवीं सूची बना कर राज्यभाषा के रूप में स्वीकारा है । जब तक सब स्वीकार न कर लें तब तक अंग्रेजी भी कामकाजी भाषा के रूप में चलती रहेगी । मगर शुरू में तो हिंदी में कामकाज का किसी को कोई अनुभव न था । अतः अंग्रेजी ही चलती रही । पर हिंदी को अंग्रेजी का सहारा देकर कार्यालयी कामकाज की भाषा बनाने का प्रयास चला । अतः अनुवाद पर बल दिया गया । एक ओर अनुवाद प्रशिक्षण चला दूसरी ओर शब्दावली आयोग बना । इन दोनों के सहयोग, तालमेल एवं उद्यम से देश भर में अनूदित सामग्री तथा प्रशिक्षित अनुवादकों का प्रयोग होने लगा । हिंदी भाषी प्रदेशों तक में यह कार्य पूरे एक आंदोलनात्मक ढंग से करना पड़ा है । तब जाकर स्थिति सुधरी । अहिंदी भाषी क्षेत्रों में तमिलनाडु में कार्यालयीन हिंदी को कदम -कदम पर कठिनाई का सामना करना पड़ा । जम्मू-कश्मीर में तो संविधान तक का हवाला देकर बचा जा रहा है ।

यहाँ स्मरण रखना होगा कि भाषागत यह संशोधन केंद्रीय सरकार के कार्यालयों, संघ के मंत्रालयों, रेल, रक्षा, वित्तीय संस्थान(बैंक) आयोग, विभागों आदि में सर्वत्र अपेक्षित है । इसके अलावा न्यायपालिका, संसद, हर प्रकार के प्रशासनिक विधिक एवं अन्य सरकारी कामकाज के लिए हिंदी में कार्य जरूरी हो गया है । अतः क्रमशः इसे लागू करने हेतु अधिक से अधिक अनुवाद करने जाने लगा । पिछले दिनों संसदीय राजभाषा समिति के संयोजक सांसद डा. प्रसन्न पाटशाणी ने कहा है - हमारे देश में राजभाषा के रूप में हिंदी और राज्यों में राजभाषा दोनों की प्रगति और उपयोग जरूरी है । पिछले आधी सदी में बारह लाख शब्दों का अनुवाद बड़ी उपलब्धि है । सरकारी स्तर पर अनुवाद कर हर क्षेत्र में द्विभाषिक स्थिति संभव हो गई है ।

सरकारी कार्यालयों में तकनीकी एवं गैर तकनीकी दोनों तरह का अनुवाद होता है । कुछ में तकनीकी काम अधिक होता है - रक्षा, पेट्रोलियम, रसायन, कृषि, विधि, ऊर्जा आदि के कार्यालय दो तरह का कार्य करते हैं ।

1) प्रशासनिक - इनमें ज्यादातर फाइल बनाना, प्रशासन संबंधी कागजी काम करना आदि प्रमुख होता है । इसमें अधिकारी और कर्मचारी एक दूसरे हेतु पत्र प्रस्तुत करते हैं, इनमें मुख्यतः पत्र,

अर्धसरकारी पत्र, पृष्ठांकन, ज्ञापन या कार्यालय ज्ञापन, अधिसूचना, संकल्प, आदेश, कार्यालय आदेश, अंतर्विभागीय टिप्पणी, (तार भेजना अब बंद हो गया है) निविदा, करार, विज्ञापन आदि आते हैं ।

प्रशासनिक भाषा में पर्याय नहीं होते । प्रत्येक शब्द का प्रयोग विशेष प्रयोजन से होता है । जैसे -Order, Instruction, Direction तीनों भिन्न भाव रखते हैं । अतः इनके अनुवाद में -

‘आदेश’ (किसी अधिकार या शक्तिवश देते हैं ‘आदेश, निर्देश’ (यह औपचारिक स्थिति में कार्य पूरा करने के लिए देते हैं)

‘मार्ग दर्शन’ - काम पूरा करने हेतु दिशा संकेत इनमें भिन्न -भिन्न लक्ष्य स्पष्ट है । उसी प्रकार हम देखते हैं -

A) Sanction

B) Approval

C) Permission

तीनों का भिन्न आशय होता है । इनके लिए क्रमशः ए) मंजूरी । बी) अनुमोदन । सी) अनुमति ।

अनुवाद में प्रयोग करते हैं । सूक्ष्म अंतर अनुवाद में परिलक्षित हो रहा है । उसी प्रकार -

(Dismissal, Removal, Termination, Discharge) के अनुवाद में सूक्ष्म अंतर है । वह क्रमशः बरखास्तगी, निष्कासन, समाप्ति और सेवा-मुक्ति में देख सकते हैं । इन चारों को एक दूसरे में अदल-बदल नहीं कर सकते । ये अपना विशेष अर्थ व्यक्त करते हैं और उचित संदर्भ में इनका व्यवहार किया जाता है ।

अंग्रेजी के शब्दों का अनुवाद संदर्भ ले कर किये बिना उलट फेर हो जाता है । मंत्रालय के एक भाग को Section कहते समय हिंदी में ‘अनुभाग’ लिखते हैं । जब कि रेलवे में ‘सेक्शन’ शब्द का प्रयोग उपखंड होगा । (Division) शब्द - प्रभाग/ अनुभाग

इस प्रकार अनुवाद में विशेष कर कार्यालयी अनुवाद में तीन-चार विशेष ध्यान देने की बातें होती हैं ।

1) सबसे प्रमुख तो यह है कि सर्जनात्मक साहित्य भिन्न होता है । यह भावना प्रधान नहीं होता ।

2) यह औपचारिक होता है । इसमें व्यक्तिगत अभिरुचि या अभियोग अथवा अनुयोग को स्थान नहीं रहता । अनुवाद में यह दृष्टि जरूरी होती है ।

3) बकरी के बच्चे का **क्लोन** बना कर हम दूसरे पदार्थ से बकरी का बच्चा पैदा करते हैं । इसमें बकरी के सारे गुण होते हैं । कार्यालयीन सामग्री के अनुवाद में वही पूर्णता होती है । स्वतंत्रता नहीं मिलती । गुण-विभाग सब मूल के अनुसार है ।

4) कार्यालयीन भाषा के अंग्रेजी रूपों का हिंदी अनुवाद करते समय हिंदी की सांस्कृतिक विशेषताओं पर ध्यान रखा जाना जरूरी है ।

(उदाहरणार्थ - You - आप । कार्यालय में कभी **तुम** का प्रयोग नहीं किया जाता ) उसी तरह He आदरार्थ में 'वे' अनुवाद कर वाक्य बहुवचन में होगा ।

5) भावुकता रहित भाषा मिलेगी । अनुवाद में इसका ध्यान रहे । अपनत्व या आत्मीय भाववाली भाषा न ले कर निरपेक्ष और निष्पक्ष भाषा में अनुवाद करना जरूरी है ।

6) कार्यालय में प्रशासनिक काम-काज होता है । इसके लिए भारत सरकार के तकनीकी एवं वैज्ञानिक आयोग ने निश्चित शब्दावली प्रस्तुत कर उस शब्दावली का प्रयोग करना बाध्यतामूलक हो गया है । इस प्रकार अनुवाद कार्य सारे देश में एक स्तर पर होगा । संप्रेषण में कोई संदेह या भिन्नता नहीं रहेगी ।

आज देश भर में गृहमंत्रालय द्वारा सरकारी कर्मचारियों के लिए कार्यालयी अनुवाद सिखाने की व्यापक व्यवस्था हो चुकी है । देश भर के विश्वविद्यालयों, कालेजों में विभाग खुले हैं, हिंदी विभाग के अंतर्गत कार्यालयीन हिंदी पढ़ाने की सुविधा हुई है । पत्राचार पाठ्यक्रम हैं । इस प्रकार कार्यालयीन अनुवाद आज समस्या प्रधान नहीं रह गया । अब तो बस मानसिकता की कमी है । सरकारी प्रोत्साहन भी भरपूर है । वैश्वीकरण के दौर में हमें हिंदी के वैश्विक रूप की चिंता करते समय इस आंतरिक दुर्बलता को शीघ्र दूर कर लेना होगा । बहुत देर करने पर विश्व हमें पीछे छोड़ आगे निकल जायेगा और हम या तो एक किनारे हो जायेंगे या अन्य लोगों की जेब में चले जायेंगे । अतः कार्यालयीन कामकाज की हिंदी अनुवाद के माध्यम से हो या जैसे हो पूरी तरह अपना लेना देश हित में है ।

चाहे इस कार्यालयीन अनुवाद को कृत्रिम सेतु कहें, पर इसने हमारी बहुत बड़ी सांवैधानिक जरूरत को पूरा किया है । भाषाई असमंजस की घड़ी में हमें कामकाज को आगे बढ़ाने में पूरी मदद की है । इन पचास वर्षों में हम हाथ से और साठी कलम से लेखन कार्य के दौर से आज 'स्पीच रीडर' के दौर तक गुजर चुके हैं । कार्यालयों को तेजी से बदलते दौर में काफी कुछ तनाव झेलना पड़ा है । आजादी के बाद हिंदी का कोई कार्यालयीन ताना-बाना न होने से यह नया रास्ता निर्माण करना पड़ा । उसमें फिर आधारभूमि हमेशा परिवर्तित होती रही । उसमें पुनः संशोधित करते रहे । इस प्रकार के बदलावों को सहते हुए कार्यालयों की क्षमता पर प्रभाव न पड़े । हाँ, कभी-कभी झुंझलाहट होती है - "क्या ये स्टील मील बंद कर राजभाषा का शिक्षण-प्रशिक्षण किया जाय ?" फिर धीरज से काम लेकर अंग्रेजी से हिंदी की पटरी पर आने का काम आगे बढ़ने लगा । कुछ लोग समझते हैं आज भी यह अनुवाद ढीला है । पर हमारी गणतांत्रिक परंपरा, हिंदी की समावेशी प्रकृति एवं 'लाठी से नहीं प्रेम से' नियम के बल पर यह अनुवाद कार्य देश की एकता -संहति दृढ़ करते हुए चलता रहेगा ।

## (क) भावानुवाद

### 3.8 भावानुवाद :

अनुवाद के स्वरूप एवं उसकी व्यावहारिकता पर बहुत पहले से चर्चा होती रही है । आधुनिक युग में इसे स्रोत भाषा (एसएल) के संदेश को पहले अर्थ और फिर संदेश का (टीएल) भाषा में निकटतम, स्वाभाविक तथा तुलनात्मक उपादान प्रस्तुत करते हैं । भावानुवाद के समय मूल की शब्दावली, वाक्य संचरना एवं कुल मिला कर वह प्रोक्ति एक इमाई रूप में सामने रहती है । पूरे की लक्ष्य भाषा में नये रूप में संकल्पना कर ली जाती है और लक्ष्य भाषा में नया रूप दिया जाता है ।

इसमें मूल के शब्दों और मुहावरों, कहवातों आदि की समतुल्य शब्दावली, पदावली अथवा मुहावरों, कहावतों डालने की समस्या बहुत कम हो जाती है । लक्ष्य भाषा का वह रूप उसमें उपलब्ध शब्द, पद, मुहावरे लेकर प्रस्तुत कर देते हैं ।

गद्य एवं काव्य दोनों में ही यह प्रयोग संभव है । काव्य में तो वह भाषा ही सामान्य से कुछ हट कर होती है । अतः लक्ष्य में वह वैसी काव्यभाषा बना कर प्रस्तुत करता है । इसमें मूल के छंद, अलंकार, बिम्ब विधान आदि पूरी तरह बदल जाते हैं । लेकिन मूल का भाव अथवा आशय अक्षुण्ण रखना जरूरी है । इसमें परिवर्तन कर देने पर वह एकदम नई कविता बन जाती है । अनुवाद नहीं रह जाती ।

यहाँ पर अनुवादक की क्षमता का पता चल जाता है । स्रोत भाषा के भावों, आशय को समझ कर, उसमें व्यक्त विचारों की सीमाओं को समझ कर लक्ष्य भाषा की भाषाई प्रकृति के अनुरूप सुसंगत और तर्क संगत ढंग से लक्ष्य भाषा में प्रस्तुत करता है । यह कार्य शब्दस अनुवाद अथवा सतही अनुवाद से एकदम भिन्न स्तर पर होता है । यहाँ चिंतन जरूरी है । उसे वह दृष्टि प्राप्त करनी होती है । और लक्ष्य भाषा में मूल के भाव को सृजन करने की क्षमता भी होनी चाहिए । अतः यह अत्यंत कठिन, श्रमसाध्य और गहन स्तर पर समझ बूझ से ही संभव हो पाता है । केवल भाषान्तर शब्दांतर से यह कार्य भिन्न स्तर पर संपन्न होता है । रचना के गूढार्थ तक पहुँचे बिना भाव ग्रहण नहीं कर पाता फिर भावानुवाद भी संभव नहीं होता । इस प्रकार भावानुवाद में मूल के जीवंत विचार या अनुभव अथवा दोनों को लक्ष्य में संप्रेषणीय ढंग से व्यक्त करना होता है । यहाँ शब्द, भाषा का भिन्न रूप उतना महत्व नहीं रखते जितना विचार अथवा भाव का ।

भावानुवाद: संक्षेपतः हम इसे इस प्रकार कह सकते हैं -

1) मूल भाषा पाठ को समग्र इकाई मानें फिर अंशों का किस प्रकार ग्रहण कर समुचित ढंग से प्रतिस्थापन करे ।

2) मूल पाठ में संरचित विचार, अनुभव, जीवन प्रकार्य, मूल्यों से संबंधित लोकोक्ति, मुहावरे, अभिव्यक्ति के रूपांतरण की चुनौती स्वीकारे ।

3) मूल पाठ के स्थानीय रंग और संस्कारों की व्याख्या अनुवाद की चुनौती । यहाँ विदेशी भाषा की मूल संस्कृति से परिचित कराना है ।

4) मूल पाठ के अभिप्रेत को उस स्तर पर लक्ष्य में प्रस्तुत करना है ।

5) मूल पाठ की संवेदना को ग्रहण कर लक्ष्य भाषा में प्रक्षेपित करना है ।

6) लक्ष्य भाषा में पाठ को नया रूप देने की चुनौती है मूल का सौन्दर्य उसकी प्रकृति और वह सृजनात्मकता हृदयंगम कर लक्ष्य में प्रेक्षित करना बड़ी चुनौती है । उदाहरणार्थ वक्रोक्ति, सांकेतिक, प्रतीक, बिम्ब विधान आदि लक्ष्य भाषा के संस्कारों में संयोजित कर पाना बड़ी चुनौती है ।

यहाँ पर हम उदाहरण प्रस्तुत कर रहे हैं जो भावानुवाद की दृष्टि, शैली और समस्या का संकेत करते हैं :

1) मूल : “जिसमें दया और विवेक है, वही मेरी रानी है ।”

लक्ष्य : . woman with compassion and intellect is true Rani

यहाँ अनुवादक ने मेरी रानी true rani और ‘विवेक’ - compassion

2) मुख कांतिहीन हो गया

his face went cold

3) जी कैसा है तुम्हारा

how are you feeling

4) कितने छिछोरे हो -

how shameful

इन उदाहरणों में शब्दानुवाद के बदले भावों को लक्ष्य भाषा में महत्व दिया है ।

### **शब्दांतरण :**

दरजनों - scores

खेत-खलिहान - field

पांव छूना pay - respect

जीता न छोड़ना -to kill

क्रिया करम - cremation

बैठिए, तकल्लुफ न कीजिए -sit down

### **वाक्य -**

अब तुम से बहस कौन करे

it is no use arguing with you

इस प्रकार हम देखते है कि भावानुवाद में मूलभाषा -लक्ष्य भाषा की संरचनात्मक, सामाजिक प्रकार्यता, संस्कृतिक वैशिष्ट्य, संप्रेषणीयता को ध्यान में रख करना होता है । यहाँ मूलके संदर्भ, परिस्थिति और भाव पर ध्यान रखना होता है । समाज सांस्कृतिक संप्रेषणीय घटकों पर भी ध्यान रखना होता है ।

### 3.9 अनुवाद की प्रासंगिकता और सार्थकता :

#### 3.10 समकालीन युग में अनुवाद :

इतिहास में अनुवाद का प्रयोग विभिन्न कारणों से हुआ है। ज्ञान और विज्ञान दोनों को समकालीन भाषा में प्रस्तुत करना प्रमुख था। क्योंकि लिपि आविष्कार से जो भाषा बनी वह द्रुत परिवर्तन के दौर से गुजरी। अतः इस परिवर्तित/संशोधित अथवा समुन्नत भाषा में पूर्व संचित ज्ञान, भाव, विज्ञान की संपदा को अंतरण करना पड़ा। तब यह सबसे बड़ी जरूरत पूरी की गई। बाद में जनसंख्या विस्तार और आबादी दूर-दूर तक फैलने के कारण प्रयुक्त भाषा में भेद होता गया। वे अलग समुदाय अलग राष्ट्र बन गए। भाषा के अलग क्षेत्र हो गए। उनके आपसी संबंध, संपर्क और देन-लेन के लिए अनुवाद को महत्व दिया गया। दूसरे शब्दों में अनुवाद जैसा साधन आविष्कार किया गया। यह कुछ अदल-बदल के साथ आज भी चल रहा है। यह अपने रिश्तों की पहचान अथवा रिश्ते बनाने दोनों लक्ष्य से अनुवाद का प्रयोग चल रहा है। तीसरे वर्ग के साहित्य को पास रख कर तुलना करना चाहते हैं। उनके अपने-अपने भाषाई दुर्ग में रहते समय यह तुलना संभव नहीं। एकदम अपरिचित की भूमि पर संवाद तक स्थापित नहीं हो सकता। अनजान बने रहेंगे। ऐसे समय दोनों को एक सामान्य धरातल पर लाना होता है। तब जाकर दोनों पारदर्शी बनते हैं। तीसरा आदमी इन दोनों को समझ, हृदयंगम कर सकता है। तब ठीक ढंग से तुलना संभव है। तभी दोनों साहित्यों का आनन्द एक तुलना के स्तर पर उठा सकते हैं। दूसरे शब्दों में तुलनात्मक साहित्य का विकास अनुवाद की आधारभूमि पर ही संभव है। भाषा के अवगुंठन से मुक्त कर साहित्य को पारदर्शी सौन्दर्य का जामा पहनाया जा सकता है। इसे पूरा व्यवस्थित एवं त्रुटिपूर्ण रूप प्रदान कर सकते हैं। विभिन्न-विभिन्न क्षेत्रों के विचार, संस्कार, संवेदना और सौन्दर्यबोध का अनुभव किया जा सकता है। इससे हम साहित्यिक आदान-प्रदान का राजमार्ग प्रस्तुत कर देते हैं। अगर किसी कृति का अध्ययन उसके साहित्यिक सौन्दर्य पर करते हैं, वह आकलन आधा-अधूरा लग सकता है। परंतु अन्य एक अनूदित सम कृति के संदर्भ में करते हैं तो साहित्य के विकासशील अथवा पिछड़े स्वरूप और प्रभाव का अध्ययन सुगम होता है।

इसके अतिरिक्त विज्ञान और ज्ञान के साथ तकनीकी के एक भाषाक्षेत्र से निकल उसकी वैश्विक पहुँच अनुवाद से बनती है। यह सत्य है कि चीन, जापानी या रूसी जर्मन-फ्रेंच उद्भावनों को अंग्रेजी प्लेटफार्म पर आने के बाद वैश्विक बाजार, वैश्विक मान्यता और वैश्विक प्रचार मिल सका है।

### 3.11 ग्लोबल संदर्भ और अनुवाद :

आज मूल रूप में बाजार और व्यवसाय के उदारीकरण से एक नयी चिंतनधारा का विकास हुआ है । सब देश अपने वाधक तत्व हटा कर वैदेशिक सामान के आने-जाने का मार्ग साफ कर रहे हैं । आगे सांस्कृतिक क्षेत्र में इसे लागू कर वैश्वीकरण का सांस्कृतिक रूप कहते हैं । एक क्षेत्र से दूसरे क्षेत्र में अबाध आवागमन अनुवाद के बिना संभव नहीं । अतः अगर हमें ग्लोबल बनना है तो अनुवाद का महत्व असंदिग्ध भाव से स्वीकरना होगा । भारत में तो **विश्वबंधुत्व** की चेतना युगों से है । परंतु अब उसे साकार रूप देने, उन चेतना वहन कारी पदार्थों, कृतियों को नया रूप देना होगा । कुछ विद्वान इसे 'अवतार' कह रहे हैं । यह धार्मिक शब्दावली कुछ भिन्न संकेत न दे । अतः हम चाहेंगे यह पुनरुत्पादित विषय वैश्विक रूप ले और अपनी स्थानीय पहचान से आगे बढ़ कर वैश्विक पहचान बनाये । यह कैसे संभव होगा ! अनुवाद की मात्रा, उसका स्तर और विषय तीनों का चयन तेजी से करना होगा । वैश्विक स्तर पर गति प्रदान करनी होगी । सूचना क्रांति और इंटरनेट के युग में विश्व के विभिन्न भागों के बीच संपर्क कुछ क्षणों में संभव हो जाता है । इसके साथ-साथ उनके इस संबंध में उनकी सांस्कृतिक धरोहर का भी आदान-प्रदान होता है । संवाद के इस प्रवाह में अनुवाद अत्यंत महत्वपूर्ण भूमिका निभाता है । अर्थात् विकार और भावना अनुवाद के माध्यम से नये सांस्कृतिक वातावरण में शीघ्र पहुँच जाती है । अनुवाद से वह नई साहित्यिक संस्कृति में जाकर नई प्रेरणा, नये कलात्मक विचार, नई शैली और शिल्प को जन्म देती है अथवा प्रसार देती है । वैश्वीकरण का यही तो रोडमैप है ।

इसमें दो बातें प्रमुख हैं । अनुवादक मूल पाठ का चयन करता है । यह व्यक्तिनिष्ठ और वस्तुगत कारणों से होता है । इसमें सामाजिक, सांस्कृतिक, राजनैतिक, साहित्यिक, वस्तुगत कारण प्रमुख होते हैं । अनुवादक अपने अनुवाद को पाठकों की रुचि देख शैलीगत संशोधन कर देता है । कभी -कभी मूल पाठ के प्रति पूरी वफादारी दिखाते हुए लक्ष्य भाषा के पाठक और साहित्यिक -सांस्कृति परंपरा को उपेक्षित कर देती है । इस प्रकार वह अनुवाद कृतियों की संख्या बढ़ा तो लेता है । परंतु दोनों के बीच सार्थक संवाद पैदा नहीं कर पाता । यही नहीं आकर्षण न पैदा करने से पानी पर तेलकी बूंद पड़ने की तरह अलग-थलग पड़ा रहता है । दूध-पानी की तरह अंतरंग नहीं हो पाता । अनुवाद कार्य तो हो गया, उसकी सार्थकता संदिग्ध रहती है । वैश्विक संदर्भ में ऐसा कार्य निरर्थक होने पर दूसरे लोग अपनी पहचान बना कर अपनी सुपीरियरिटी स्थापित करने लगते हैं । कहावत है 'सोइला पुओ र भाग नाहिं' । वैश्विक दौर में अनुवाद की जागरूकता बिना आपकी पहचान नहीं हो सकती । आपकी नई

पीढ़ी भी नई चकाचौंध देख लेती है । (इंटरनेट और टीवी चैनलों पर कोई रुकावट तो है नहीं ) अतः फिर कहने लगते हैं - “हमारी भाषा मर रही है .... हमारी संस्कृति पर आक्रमण हो रहा है .... हमारी जीवनधारा और मूल्यों का शोषण, दमन और विघटन किया जा रहा है ....” इस सारे खतरों का सामना सशक्त सार्थक और सही वस्तु के अनुवाद से संभव है । इसलिए ग्लोबल युग में अनुवादक के सामने सबसे बड़ी चुनौती है अपनी अस्मिता को अक्षुण्ण रखने की । राजनीति और अर्थनीति अपने-अपने मोर्चे पर इस समस्या का सामना करते हैं । परंतु परोक्ष संकट का सामना तो अनुवादक करता है । यह मोर्चा तब दिखाई देता है जब तक सब कुछ चूरमार हो चुका होता है । दलित और उपेक्षित होकर पिछड़ जाता है और उस मैदान में एकाकी हारे-थके सैनिक की तरह चारों ओर देखता है । सामने दूर बढ़ गई आंधी है उसके आगे रोशनी में बढ़ रहा जुलूस या उसमें शामिल होने का कोई हथियार, साधन, उपाय बचा नहीं हैं । आज यही दशा अफ्रीका की अनेक भाषायें भोग चुकी हैं । मर गई या मौत के कगार पर हैं । उनकी गिनती रखने वाले भी कोई नहीं । भारत में ऐसी स्थिति हो रही है । इसे विनष्ट होने से पहले पहचान कर अंगुली निर्देश करना कठिन है । परंतु नष्ट हो रही, पिछड़ रही भाषा और संस्कृति स्वयं अनुभव कर पाती है ।

हालांकि अंग्रेजी के प्रभाव से बढ़ कर ओड़िया भाषा के बारे में ऐसी आशंका जता रहे हैं । यह व्यर्थ का शोर है । ओड़िया जाति भारत की अनेक भाषा संस्कृतियों से अधिक जागरूक है, सचेतन हैं । एक ओर संवेदनशील समाहारशील है तो दूसरी ओर चेतनापूर्ण और जागरूक है । जब जरूरत पड़ी तो अपने को प्रमाणित करने में देर नहीं लगाई । भारत की क्लासिकल भाषा होने के बारे में ठोस सबूत जुटा कर भारतीय मानपट पर रखा गया । देश को मानना पड़ा । कमिटी ने संस्तुति की और सरकार तथा संसद ने इस मुद्दे पर मुहर लगा दी कि ओड़िया एक क्लासिकल भाषा है ।

परंतु इससे एक बड़ी जिम्मेदारी आ जाती है । राष्ट्रीय स्तर से बढ़कर अंतर्राष्ट्रीय स्तर पर इसे अपने को प्रमाणित करना होगा । नई पीढ़ी सचेतन है । पर उसे बाहर पहुँचाने का काम अंग्रेजी सीमित स्तर पर कर सकती है । हिंदी की राष्ट्रीय परिसीमा बढ़ कर अंतर्राष्ट्रीय क्षेत्र में महता स्वीकृत है । अतः ओड़िया का हिंदी में मानक एवं स्तरीय अनुवाद इस दिशा में काफी सहायक प्रमाणिक होगा ।

### 3.12 व्यावसायिक अनुवाद और अनुवाद का व्यवसाय :

आज से साठ वर्ष पहले तक अनुवाद से कोई पेट नहीं भर सकता था । यह शुद्धतः स्वांतःसुखाय अथवा ऐसे ही किसी नैतिक मूल्य से जुड़ा कार्य था । आज अनुवाद बड़ा व्यवसाय बन चुका है । शब्द या अक्षर गिन कर लोग अनुवाद का मोल चुकाते हैं । यहाँ तक कि इंग्लैंड में प्रकाशकों-लेखकों ने कविता की एक पंक्ति अनुवाद पर दो-तीन पौंड की दर की तख्तियां लगा रखी हैं । पहले सिर्फ रूस,

अमेरिका, जर्मनी, फ्रांस आदि अंबासियों से थोक भाव में अनुवाद हुआ करते । वह उनके प्रचार-प्रसार का माध्यम था । बाद में संस्थायें (प्रकाशन, पुस्तक व्यवसायी, अकादेमियां) अक्षर-शब्द गिन कर मेहनताना चुकाने लगी हैं । राजभाषा के कार्य में लंबे अर्से तक अंग्रेजी अनुवादों की दरें चलती रही । अनुवादक को नौकरी दी जाती और अनुवाद की सीमा तय होती, वरना वेतन पूरा नहीं होगा ।

साहित्यिक कृतियों का अनुवाद अमेरिका एवं यूरोप में 'पापूलर सीरीज' कह कर खूब हुआ । भारत में भी अच्छी सफलता मिली है । एक साथ कई भाषाओं में अनुवाद कर, विभिन्न प्रकार के संस्करण बना कर अथवा संक्षिप्त कर अनुवाद संस्करण सामने आये । अखिल भारतीय स्तर प्रचारित करने में एनबीटी, साहित्य अकादेमी, ज्ञानपीठ, भारतीय भाषा परिषद, यूपी हिंदी संस्थान आदि ने प्रमुख भूमिका निभायी है । दक्षिण में तो ऐसी अनेक संस्थायें हैं जो तमिल, मलयालम, कन्नड़, तेलुगु से हिंदी अनुवाद कर पाठ्यपुस्तक एवं अन्य रूप में प्रचारित करने में सफल रही हैं । भारत सरकार के प्रकाशन विभाग, सूचना विभाग आदि ने इस क्षेत्र में काफी काम किया । पारिश्रमिक देकर अनुवाद कराया, उसे प्रकाशित किया । भारत का संविधान, गांधी, नेहरू साहित्य आदि प्रमुख राष्ट्रहित की सामग्री हिंदी में सस्ते में उपलब्ध है । उसी तरह गीता प्रेस ने धार्मिक साहित्य एवं सांस्कृतिक ग्रंथमालाओं को बहुत कम मूल्य में लाखों पाठकों तक अनुवाद के जरिये पहुँचाया । दयानन्द साहित्य, रामकृष्ण एवं विवेकानन्द साहित्य, श्रीराम शर्मा साहित्य, इस्कान साहित्य ... आदि विविध प्रकार का साहित्य अनुवाद व्यावसायिक स्तर पर हुआ । परंतु इन का मूल्यायन, पारिश्रमिक, विक्रय, प्रचार-प्रसार बाजार भाव पर नहीं हुआ । अतः यह धार्मिक, सांस्कृतिक एवं प्राचीन -अर्वाचीन साहित्य मरने से बचा । इतना ही नहीं 'राम चरित मानस' और उसके अनुवादों से अधिक बिक्री किसी की संभव नहीं हुई । इसके जितने अनुवाद हुए, बिके, प्रसारित हुए, उतने भारत में किसी के नहीं हुए । रवीन्द्रनाथ, शरतचन्द्र, बंकिम, विमल मित्र आदि ने अनुवाद में एक से बढ़कर एक नये लोकप्रियता के मानदंड स्थापित किये हैं ।

पत्रकारिता में 'चंदामामा' तो अनुवाद के बल पर चल रहा है । उसी प्रकार बाल साहित्य, जागरण, नवभारत टाइम्स, नव भारत, सन्मार्ग ... दैनिक पत्रों में अनुवाद ने खूब सहयोग दिया है । फलस्वरूप ये अंग्रेजी टीओआई स्टेट्समेन आदि को बहुत पीछे छोड़ चुके हैं । पत्रकारिता ने व्यावसायिक रूप में अनुवाद को प्रश्रय दिया । भाषा में सुधार किया । सामग्री निर्माण के नये मानदंड स्थापित किये । राइटर आदि वैश्विक संस्थाओं से सामग्री ले कर द्रुत अनुवाद या आशु अनुवाद कर उसका पिछड़ापन दूर किया । हिंदी पत्रकारिता आज भारत में गौरवपूर्ण स्थान पाने में सफल हुई है ।

टीवी चैनलों में अंग्रेजी की भरमार थी । पर देखते -देखते एक-एक कर सब हिंदी होते गए । बच्चों के CN, Discovery, Animal world आदि सब चैनल हिंदी अनुवाद में बदल गए । क्योंकि इनको दर्शकों से भरपूर समर्थन मिला । अनुवादकों ने लगन से कार्य किया । अतः पूरा टीवी विश्व एक -दो-

चार चैनल छोड़ हिंदी अनुवादों से छा गया है ।

फिल्मों ने भी हिंदी अनुवाद को काफी समृद्ध किया । 'गांधी' फिल्म भारत में अंग्रेजी से अधिक हिंदी में चली । नियमित रूप से भारत सरकार का फिल्म डिविजन न्यूजरील और डाकूमेंटरी बना कर अनुवाद करता है । सब -टाइल से देश भर की भाषाओं में प्रसारित करता है । पहले हम एक फिल्म हिंदी में बनाते फिर अन्य भाषाओं में पुनर्निर्मित करते । हाल ही में Light of Asia (स्वामी विवेकानन्द के जीवन पर जगदीश मिश्र द्वारा निर्मित वृत्त चित्र)का निर्माण बंगला में किया । उसे फिर हिंदी, मराठी, ओड़िया आदि भिन्न-भिन्न भाषाओं में पुनर्गठित कर विवेकानन्द की 150वीं जयंती पर प्रचारित किया । इस प्रकार 'सब- टाइटल' का अनुवाद कार्य काफी महत्व रखने लगा है । परंतु रामायण, जय हनुमान, शक्तिमान जैसे सीरियल डबिंग के जरिये सर्व भारतीय स्तर प्रचारित हो रही हैं । यहाँ अनुवाद कर आकर्षक भाषा का जामा पहनाना महत्वपूर्ण है । बाकी निदेशन, फिल्मांकन संपादन तो अपने महत्व के कारण प्रसिद्ध हैं । हिंदी या अन्य भाषा अनुवाद उनको अतिरिक्त शक्ति या लोकप्रियता प्रदान करता है । यहाँ पर गोवा का फिल्मफेस्टिवल, दिल्ली समारोह आदि में सैकड़ों फिल्म प्रदर्शित होती हैं । विश्व की विविध भाषाओं की श्रेष्ठ कृतियां आती हैं । यह सबटाइटल के कारण सहज और संप्रेषणीय संभव हो रहा है । बाजार भी अंतर्राष्ट्रीय बनना संभव होता है ।

हमने संचार में पत्रकारिता, इंटरनेट और सिनेमा की चर्चा की है । परंतु अब सर्वाधिक व्यापक क्षेत्र इंटरनेट, कंप्यूटर और ई मेल ने दखल कर लिया है । तरह-तरह की सूचनाएँ, यातायात संकेत सब इसमें हैं । अभिव्यक्तिपरक रूप व्यापक हो रहे हैं । यहाँ सारा अनुवाद कार्य भाषांतरण है । सूचनापरक है । इसमें खूब संक्षिप्त, विषयनिष्ठ, समझ आने लायक संकेत युक्त होता है । कोड मिश्रण ऐसा कि भाषा सामान्य जन की समझ सीमा के अंदर हो । सिर्फ सांकेतिक नहीं, संप्रेषण परक विशेषता और विविधता पर ध्यान देना होगा । इस प्रकार अनुवाद व्यवसाय में और व्यावसायिक अनुवाद दोनों में हिंदी अग्रगति कर रही है ।

### \* अनुवादक और अनुवाद :

अनुवाद कार्य को आज भी कुछ लोग ठाले बैठे का कार्य कहते हैं । अथवा किसी के अनुरोध पर किया द्विभाषिक कार्य मानते हैं । दरअसल हमारे यहाँ एक बार पूछा गया - यशोदा जिस पूत को पाल-पोस बड़ा कर उसका मुँह खोल कर देखती है, वह सब क्या किसी को बोलकर बता सकती है ? कहेगी तो कौन मानेगा कि इसके अंदर कितना कुछ समाया है । अतः वह सजा कर उसे मथुरा भेज देती है और वह वहाँ देखते ही कंस को मंच से गिरा देता और फिर द्वारका यात्रा तथा महाभारत में योगेश्वर का रूप दिखाता है। अनुवादक के कार्य, उसकी क्षमता और निस्पृहता का एक मानदंड बना दिया है

यशोदा ने इस पंक्तियों में -

हौं तो धाय-तिहारे सुत की  
मैया करती रहियो ।”

जन्म न देकर भी कृष्ण को ‘यशोदानन्दन’ कहा गया है ! लेकिन यशोदा कृष्ण के सारे गुणावगुणों से भलीभांति परिचित है, उसकी सारी आदतें जानती हैं । जेल में जन्मे कृष्ण का रूपांतर यशोदा करती है, देवकी नहीं ।

जब अनुवादक और अनुवाद के रिश्ते को टटोलते हैं तो ये स्तरी बातें सार्थक लगती हैं । इनका संकेतार्थ बहुत कुछ कह देता है । अनुवादक के प्रमुख गुण यहाँ संकेतित हो रहे हैं जिनको इस प्रकार भाषित कर सकते हैं ।

कहते हैं अनुवादक मूल की आत्मा में प्रवेश करता है ! यह असंभव है ? इसे कहें कि अपने बाह्य या अपनी आत्मा में मूल को धरण करता है, वहाँ उसके साथ एकाकार हो कर वह ‘नवकलेवर’ प्रदान करता है । अब वह नया रूप लेकर जगन्नाथ (सारे जगत का मंगलकर्ता स्वामी) श्रीगुंडिचा मंदिर की ओर प्रस्थान करता है, वहाँ सबको दर्शन देते, सबका अपना बनने वहाँ निवास कर फिर लौटता है । हमने पीछे बताया उनकी यह ‘यात्रा’ ही अनुवाद यात्रा है । अनुवादक सारथी बना रथ हांकता है, दिशा संकेत करता रहता है । उसे फिर से उन्हें रत्नसिंहासन पर बिठाना है । अनुवाद और अनुवादक का यह रिश्ता कुछ हद तक सही व्याख्या कर रहा है । शत प्रतिशत व्याख्या देनेवाली परिभाषा अब तक नहीं बनी है ।

1) अतः अनुवादक को कृति और कृतिकार के साथ अंतरंग होना सबसे बड़ी बात है ।

2) सहमत हो या न हो, हर कृति उसी की रुचि एवं विचारधारा में लिखी नहीं होती । यह मूल का अपना क्षेत्र (डोमेन) है । अनुवादक उसे धारण कर ईमानदारी से उसे व्यक्त करता है । अगर संशोधन चाहता है तो मूल लेखक के पास चल कर अनुरोध करे और फिर इसकी संभावना बनती है । अगर मूल न हो तो वह फुटनोट में इस तरह की दृष्टि दे सकता है ।

3) मूल से अपनी तुलना कभी न करे । उसे धैर्यशील होना है । बहुत कुछ उठा न पाये, स्थानान्तर न कर सके, पुनर्निर्माण न कर सके अथवा पुनःव्याख्यायित न कर सके । धैर्य से मूल के संकेत देकर आगे बढ़े । अपने को वहाँ उलझा न ले । भाषास्तर और विषयस्तर दोनों पर उसे अनूदित पाठ संप्रेषणीय बनाना है । इसीलिए कहते हैं कि पुनर्गठन के वक्त वह (अनुवादक) **लेखक** की भूमिका निभाता है । यह एक प्रकार का ‘सहपाठ’ प्रस्तुत कर रहा है ।

4) जब मूल से जूझता है, उसे आत्मा में ग्रहण करता है । तब वह ‘**श्रद्धेय पाठक**’ की

भूमिका में होता है। इस श्रद्धा बिना पाठक नहीं हो सकता। इससे पाठ को सही परिप्रेक्ष्य में वह अपना लेता है। अब वह पाठ उसका अपना बन जाता है। उस विषय वस्तु को अपना मान कर व्यक्त करता है। अनुवादक में यह गुण न हो तो वह कभी सफल अनुवादक नहीं बन सकता।

5) बन जाने के बाद अलग हट कर निर्मम रूप में उसे फिर देखता है। यह **पुनरीक्षण** स्वयं न कर वैसे ही संवेदनशील, वैसे ही ममतापूर्ण व्यक्तित्व को अनुवाद सौंपता है। जो उस नये रूप को आत्मीयता पूर्वक पठन योग्य प्रस्तुत करता है। इन संशोधनों से डरना नहीं। इन पर आक्रोश नहीं। ये तो पुनरीक्षक का दिया Golden Touch होता है। जो लोहे को सोना तक बना देता है। यह पुनरीक्षण के लिए प्रस्तुत रहना अनुवादक की सहनशीलता एवं दूसरे की दृष्टि को स्वीकार करने जैसा कार्य है। सब के लिए संभव नहीं होता।

6) अब आता है **टंकण** ! हमारे देश में अनुवादक प्रायः टंकण नहीं कर पाता। चाहे 'कंप्यूटर' हो या टाइपराइटर अथवा स्पीचरीडर। अनुवादक को टंकण की त्रुटियाँ देखना, प्रूफ रीडिंग करना और जगह-जगह प्रमादवश छूटे अंशों को पुनः स्थापित करना पड़ता है। यह पुनर्गठन अत्यंत महत्वपूर्ण स्तर है। यहाँ अनूदित पाठ को अंतिम रूप मिलता है। यहाँ होने वाली गलतियाँ अनुवाद किये पाठ पर शंका, संदेह, अविश्वसनीयता पैदा कर देती हैं। यहाँ स्वयं अनुवादक को ही आगे बढ़कर समूची अनूदित कृति से हो कर फिर एक बार गुजरना पड़ता है।

7) अब नवाधान में नवकलेवर में कृति प्रस्तुत है। अनुवादक को सरसरी तौर पर पूरी को उलटना होता है। कई बातें छूट जाती हैं। इस स्तर पर उनकी तरफ ध्यान देकर कृति को अंतिम रूप देता है।

8) अनुवादक का अपना दृष्टिकोण देखना है। पाठक रूप में देखते हैं कि वह किस उद्देश्य से यह कार्य हाथ में ले रहा है। यहाँ पर उसका अभिप्रेरक Motivation देख लें। अनुवादक को बड़े राष्ट्रीय मुद्दे से जुड़ कर अनुवाद करना है या वह कुछ पन्ने शब्द गिन कर पैसे कमाने अनुवाद कर रहा है अथवा कोई छोटा-मोटा अनुवाद पुरस्कार बटोरने अनुवाद कर रहा है अथवा वह किसी और की इसमें मदद कर रहा है। आज के युग में यह बहुत धुंधली दृष्टि साफ-सुथरी और स्पष्ट होनी चाहिए। वरना वह एक बड़े पाप,, अन्याय का सहभागी बन जाता है। आजकल अनुवाद पुरस्कारों की कमी नहीं रही। अनुवाद की सीढ़ी से पुरस्कारों तक पहुँचना आसान हो गया है।

कभी-कभी अनुवादक को अपने प्रचार-प्रसार (राजनीति, धार्मिक, सांप्रदायिक, वैचारिक) के लिए विशेष धारा से जोड़ लेते हैं। ऐसे अनुबंधित अनुवादक जान ही नहीं पाते कि उनके कर्म का फल कितना दूर प्रसारी होगा। दक्षिण अमेरिका में आगन्तुकों ने वहाँ की भाषा सीखी। उसे अनुवाद के माध्यम से अपना कर वहाँ के मूल निवासियों की निरीहता पर करारे प्रहार कर अपनी धाक जमा ली।

यहाँ तक कि वह जाति ही अनुवाद के हथियार हाथ में आने के बाद निपोत कर दी गई । ओड़िशा में धर्म प्रचारकों ने अपने धर्म ग्रंथों का अनुवाद कराया । बौध- कंधमाल, संबलपुर, बलांगीर, कालाहांडी, कोरापुट जिलों में संप्रदाय प्रचार चला । उस अंधे भीमभोई ने अपने महिमा गोसांई की बात उठाई । उसने वेद-उपनिषद आदि का रूपांतरण किया । उसी क्षेत्र को शिक्षित किया । प्रचार और विदेशी प्रभाव के सामने वह अकेली आवाज दीवार बन कर खड़ी हो गई । अब अनुवाद का अनुवाद से सामना था । मुकाबला था । एक ओर निहत्था, अनपढ़ और निस्संबल बनवासी कंध । दूसरी ओर अत्याधुनिक साधनों, मशीनों, क्षमता एवं शासन समर्थन पर प्रचार चला । गांव-गांव भटका । फिर भी भीम के महिमा गोसांई उस क्षेत्र की जबान पर ऐसे चढ़े कि सारे संसार ने माना

“ मो जीवन पछे नर्के पड़ि थाउ

**जगत उद्धार होउ ।”**

अनुवादक अंधे की यह दृष्टि सारे संसार की आज जगतीकरण’ के रूप में आँख बनी हुई है । अनुवाद की क्षमता और उसकी दृष्टि कितनी दूर जा सकती है, भीम भोई से कोई अनुवादक सीख सकता है । अनुवादक का धर्म, उसका संप्रदाय, उसका लक्ष्य प्राप्त सब भीम भोई में मिल जाता है । अतः अनुवादक की अकिंचनता, उसकी दुर्बलता न समझें । वह समाज के उस छोर पर होता है जहाँ से नया साहित्य, नयी दिशा और नई दृष्टि जन्म लेती है । वाल्मीकि के बाद तुलसीदास, सारलादास, जगन्नाथदास, सूरदास इसीलिए देदीप्यमान ज्योतिष्क बन सके । अनुवादक को अपनी अस्मिता पहचान कर इस पवित्र कार्य में अजातशत्रु की तरह काम करना है और

कीरति भनिति भूति भलि होई ।

सुरसरि सम सब कैह हितहोई ।”

सर्वमंगलकारी अनुवाद की उससे समाज अपेक्षा करता है ।

\*\*\*

### 3.13 अभ्यास प्रश्न

#### दीर्घ प्रश्न :

निम्न के उत्तर दीजिए

- 1) भारत में धार्मिक अनुवादों की परंपरा स्पष्ट कीजिए ।
- 2) साहित्यिक अनुवाद की विशेषताओं पर प्रकाश डालिए ।
- 3) साहित्यिक अनुवाद की जरूरत पर विचार कीजिए ।
4. हिंदी में वैज्ञानिक साहित्य पर चर्चा कीजिए ।
- 5) अनुवाद में पारिभाषिक शब्दावली पर विचार कीजिए
- 6) पारिभाषिक शब्दों की प्रमुख विशेषता पर प्रकाश डालिए ।
- 7) वैज्ञानिक - तकनीकी अनुवाद की विशेषता बताइए ।

निम्न पर संक्षिप्त टिप्पणियाँ लिखिए :

- क) मशीनी अनुवाद
- ख) कार्यालयी अनुवाद
- ग) ग्लोबल संदर्भ में अनुवाद
- घ) अनुवाद का व्यावसायिक पक्ष
- ङ) अनुवादक के गुण ।
- च) अनुवाद के खतरे ।

### 3.14 सहायक ग्रंथ :

1. अनुवाद विज्ञान - डा.भोलनाथ तिवारी
2. अनुवाद विज्ञान की भूमिका - डा.के. के. गोस्वामी , राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली
3. अनुवाद की व्यापक संकल्पना- डा. दिलीप सिंह, वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली
4. अनुवाद विज्ञान - डा. सुरेश कुमार
5. अनुवाद की प्रक्रिया : तकनीकी और समस्याएँ-डा. श्रीनारायण समीर,  
लोकभारती प्रकाशन, नई दिल्ली ।
6. सृजनात्मक साहित्य और अनुवाद - सं. सुरेश सिंहल और पूरनचंद टंडन
7. अनुवाद बोध - डा. गार्गी गुप्त, पूरनचंद टंडन, भारतीय अनुवाद परिषद, नई दिल्ली
8. Theory and practice of translation , Naida